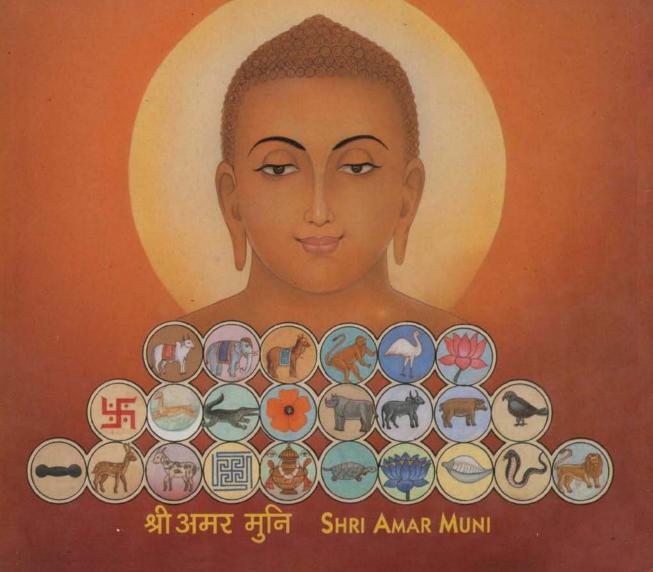
सचित्र तथिकर चरित्र

ILLUSTRATED

The Contact of the Co



प्रस्तुत कृति

तीर्थंकर/अरिहंत जैन परम्परा के परम पूज्य परमाराध्य महापुरुष हैं। उनका पावन जीवन चरित्र त्याग, वैराग्य, संयम, तप, ध्यान और वीतराग साधना का दिव्य आलोक पुँज होता है, जिससे निकलती हुई प्रेरणा और प्रकाश की निर्मल किरणें हमारे सम्पूर्ण जीवन को आलोकित कर देती हैं।

प्रस्तुत पुस्तक में भगवान महावीर से भगवान ऋषभदेव तक चौबीस तीर्थंकरों का प्रामाणिक जीवन वृत्त, हिन्दी तथा अंग्रेजी भाषा में प्रस्तुत किया गया है।

इसके साथ जुड़े 9३ परिशिष्टों में तीर्थंकरों के जीवन से सम्बन्धित बहुत-सी महत्त्वपूर्ण, रोचक और ज्ञानवर्खक सामग्री एवं तालिकाएँ भी संलग्न हैं।

तीर्थंकरों के जीवन से सम्बन्धित अनेक महत्त्वपूर्ण घटनाएँ/प्रसंगों को बहुरंगी भावपूर्ण चित्रों के माध्यम से जीवन्तता प्रदान करने का प्रयत्न किया गया है, जिससे तत्कालीन संस्कृति, इतिहास, परम्परा और लोक-वातावरण का साक्षात् परिचय भी मिलता है।

इस पुस्तक के प्रधान सम्पादक हैं-विद्वान् मनीषी ओजस्वी वक्ता श्री अमर मुनि जी। सम्पादन किया है-सुप्रसिद्ध जैन विद्वान् श्री श्रीचन्द सुराना 'सरस' ने। अंग्रेजी अनुवादकर्ता हैं-श्री सुरेन्द्र बोथरा।

ABOUT THIS BOOK

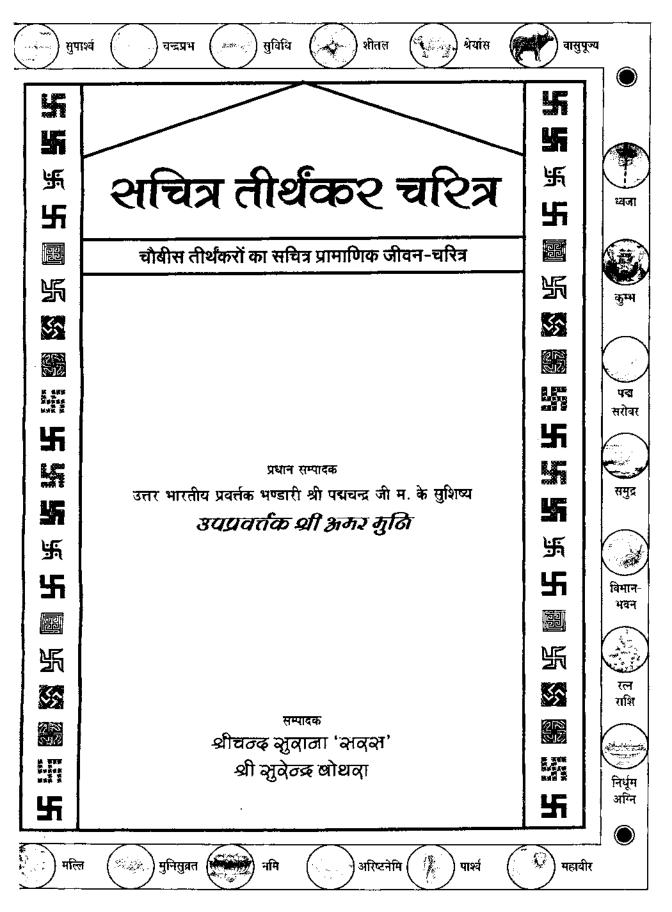
Tirthankars are the most revered and worshipped great men in the Jain tradition. Their pious biographies are the brilliant sources of the divine light of sacrifice, detachment, discipline, penance, meditation, and spiritual pursuits. The rays of inspiration emerating out of this source fills our lives with spiritual light.

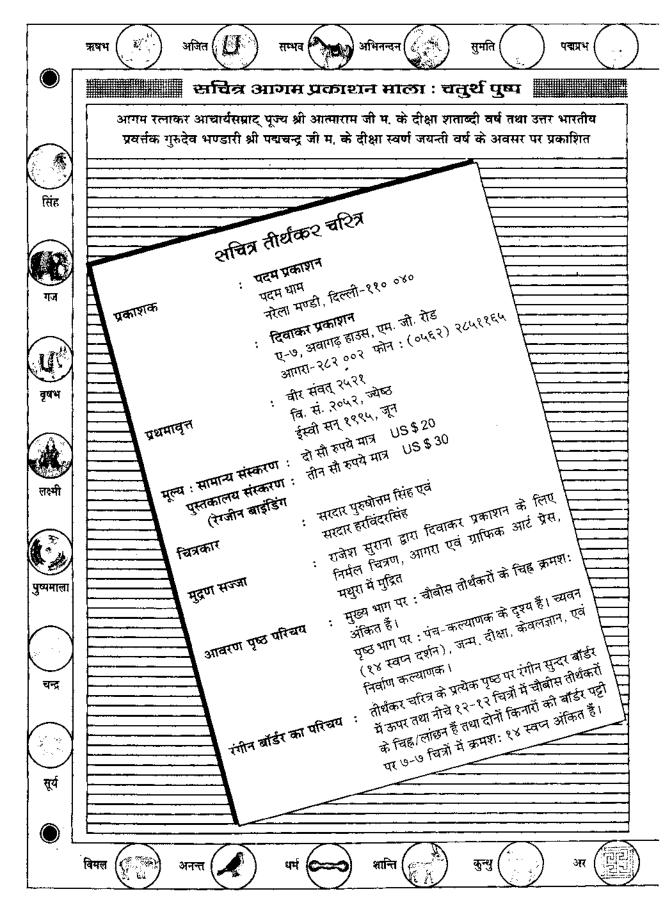
This book presents authentic life-sketches of twenty four Tirthankars from Rishabhdev to Mahavir in Hindi and English.

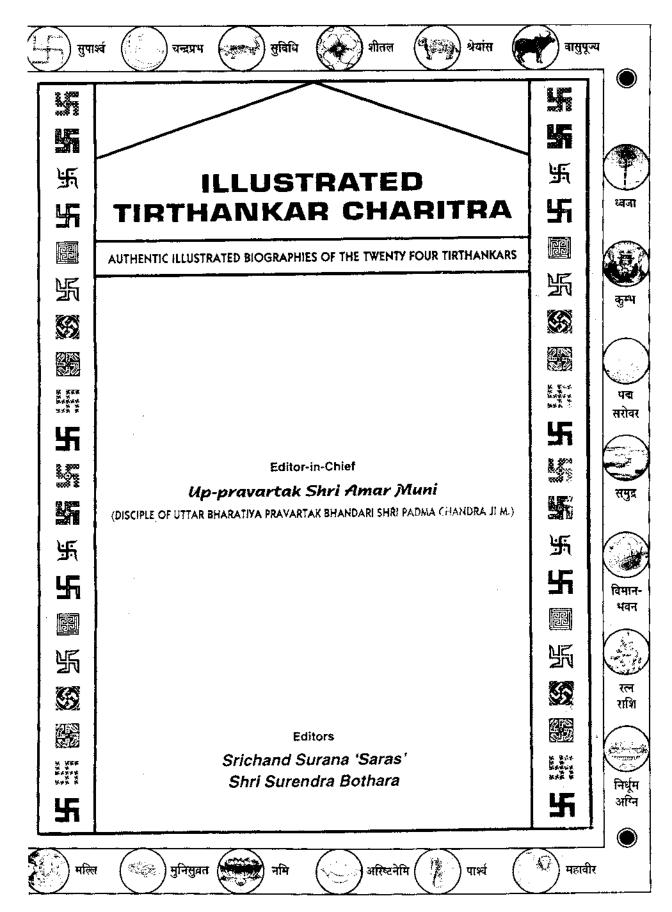
It also contains 13 useful appendices containing important, interesting and informative data collected with the lives of these Tirthankars.

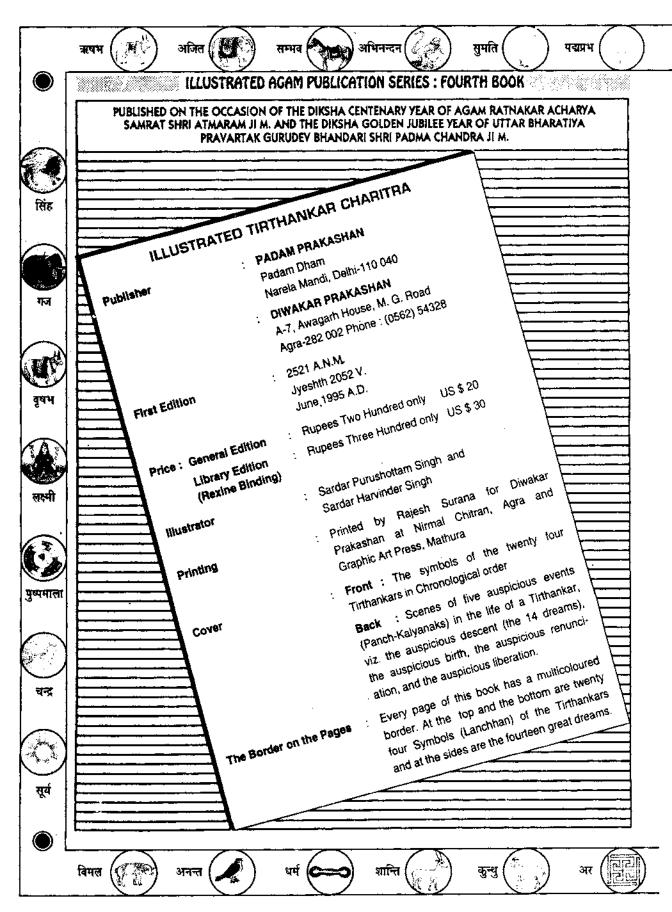
An attempt has been made to make the narrative lively by including colourful and, attractive illustrations about important events. These illustrations also show the culture, history, tradition and folk-life of different periods.

The Editor-in-chief of this work is the eloquent orator and scholarly thinker Shri Amar Muni ji. Editor is the famous Jain-scholar Shri Srichand Surana 'Saras'. English version is by Shri Surendra Bothara.











सुपार्श्व



यन्द्रप्रभ 🕼 🐃



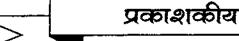


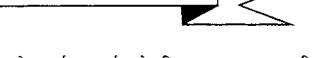




वासुपूज्य







सचित्र आगम प्रकाशन की योजना के अन्तर्गत इस वर्ष हमने सचित्र कल्पसूत्र का प्रकाशन किया है। इसी के साथ सचित्र तीर्थंकर चरित्र का सुन्दर मनोहारी प्रकाशन भी पाठकों के लिए विशेष आकर्षण का केन्द्र वनेगा।

हमारी संस्था का मुख्य उद्देश्य है—जन-कल्याणकारी, उपयोगी और महत्त्वपूर्ण साहित्य का प्रकाशन। प्रकाशन की कड़ी में सचित्र उत्तराध्ययन सूत्र, सचित्र अन्तकृद्दशा सूत्र अपने आप में अनूठे हैं और सर्वत्र प्रशंसित हुए हैं। अन्य भी अनेक उपयोगी प्रकाशन संस्था के द्वारा किये जा रहे हैं। साथ ही जन-सेवा, सन्त-सेवा आदि के कार्यों में भी संस्था सिक्रय है।

हम पूज्य गुरुदेव उ. भा. प्रवर्तक भण्डारी श्री पद्मचन्द्र जी म. तथा उपप्रवर्तक, प्रवचन केशरी गुरुदेव श्री अमर मुनि जी म. के विशेष कृतज्ञ हैं, जिनकी प्रेरणा, प्रोत्साहन और मार्गदर्शन से हम संस्था के माध्यम से अनेक लोकोपकारी कार्य कर रहे हैं।

सचित्र तीर्थंकर चरित्र के सम्पादक श्री श्रीचन्द जी सुराना 'सरस' धन्यवाद के पात्र हैं, जिन्होंने गुरुदेव श्री अमर मुनि जी के निर्देशन में वहुत ही सुन्दर और श्रम-पूर्ण सम्पादन किया है तथा श्री सुरेन्द्र जी बोथरा ने अंग्रेजी अनुवाद कर इसकी उपयोगिता की व्यापक बना दिया है।

शास्त्र प्रकाशन के इस बहुत ही व्यय साध्य कार्य में गुरुजनों की कृपा के साथ ही उनकी प्रेरणा से भी अनेक कार्य सम्पन्न हो जाते हैं। उपप्रवर्तिनी महासती आज्ञावती जी, उपप्रवर्तिनी महासती स्वर्णकान्ता जी, उपप्रवर्तिनी महासती पवनकुमारी जी, तथा उपप्रवर्तिनी महासती डॉ. सरिता जीत्म. की विशेष प्रेरणा से जन-सहयोग प्राप्त हुआ है। हम पूज्यजनों के प्रति कृतज्ञ भाव से आशा करते हैं कि उनकी प्रेरणा का सम्बल इसी प्रकार हमें प्राप्त होता रहेगा।

गुरुदेव श्री अमर मुनि जी के होनहार शिष्य उदीयमान सन्त बालयोगी श्री तरुण मुनि जी तथा दीक्षा लेते ही १६ वर्ष की अवस्था में ३५ दिन का तप करने वाले तपस्वी श्री मनोज मुनि जी के दीक्षा समारोह पर प्राप्त सहयोग से भी इस प्रकाशन को सुलभ बनाया गया है। इसी के साथ गुरुदेवश्री के प्रति आस्था, भिक्त रखने वाले अनेक उदारमना सज्जनों ने शास्त्र-सेवा हेतु अपना योगदान दिया है, हम उन सबके प्रति हार्दिक धन्यवाद ज्ञापित करते हैं।

-महेन्द्रकुमार जैन अध्यक्ष



ध्वजा



कुम्भ



पदा सरोवर



समुद्र



विमान-भवन



स्त्न संशि



निर्धूम अग्नि







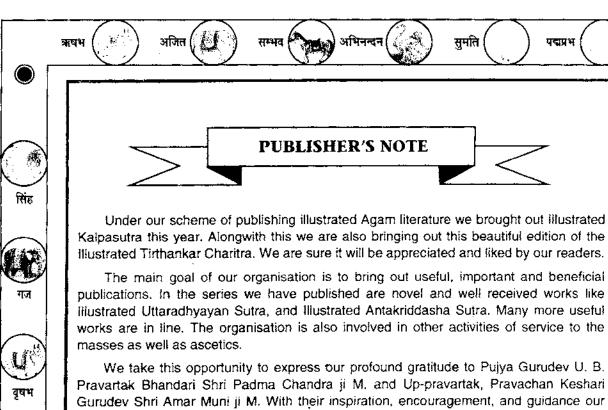












We take this opportunity to express our profound gratitude to Pujya Gurudev U. B. Pravartak Bhandari Shri Padma Chandra ii M. and Up-pravartak, Pravachan Keshari Gurudev Shri Amar Muni ji M. With their inspiration, encouragement, and guidance our organisation is doing many works of public service.

Our thanks to Shri Srichand ji Surana 'Saras', the editor, who has accomplished the aesthetic but tough job of editing under the guidance of Gurudev Shri Amar Muni ji; and to Shri Surendra ji Bothara who has added to its scope of readership by providing the English version, besides sharing the editing.

Many hurdles are tackled with the blessings and inspiration from the religious leaders even in this highly cost effective work of publication of scriptures. We got considerable contribution and assistance from masses with the inspiring help of Uppravartini Mahasati Ajnavati ji, Up-pravartini Mahasati Swarnakanta ji, Up-pravartini Mahasati Pavan Kumari ji, and Up-pravartini Mahasati Dr. Sarita ji M. We express our deep gratitude to all these revered teachers and hope that we shall continue to be blessed with their inspiring help.

The upcoming and able disciples of Gurudev Shri Amar Muni ji---Balyogi---Tarun Muni ji and the 16 years old great penancer Shri Manoi Muni ji, who observed a 35 days fast immediately after his initiation, need a special mention here. The contributions received during their initiation, ceremony have reduced the financial burden of this publication. Besides this many other charitable devotees of Gurudev Shri have contributed with open heart. We express our thanks to them all.

> -Mahendra Kumai Jain President

विमल

लक्ष्मी

पुष्पमाला

चन्द्र

सूर्य



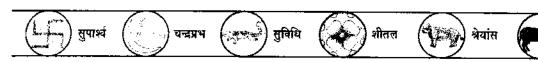








अर





आस्तिक जगत् में सर्वोच्च सत्ता है–ईश्वर !

परमात्मा, भगवान, सिद्ध, बुद्ध, तीर्थंकर, गॉड (God) आदि हजारों नाम हैं उसके। जैन परम्परा में ईश्वर के दो रूप हैं-

(१) देहमुक्त ईश्वर-सिद्ध

(२) सदेह ईश्वर-तीर्थंकर/अरिहंत

तीर्थंकर/अरिहंत मनुष्य जाति के ही क्या, जीव मात्र के परम हितैषी, कल्याण-इच्छुक और उनके कल्याण हेतु धर्म मार्ग का प्रवर्तन/प्रवचन करने वाले वीतराग पुरुष होते हैं। उनकी जन-कल्याणकारी वाणी जीवमात्र के सुख, शान्ति एवं अनन्त आनन्द का मार्ग प्रशस्त करती है।

जैन परम्परा में इस अवसर्पिणी काल में चौबीस तीर्थंकर हुए हैं, जिनमें प्रथम तीर्थंकर हुए भगवान ऋषभदेव और अन्तिम तीर्थंकर हुए भगवान महावीर।

जैन मात्र के लिए ये तीर्थंकर परम आराध्य/उपास्य और पूजनीय हैं। उनके द्वारा बताये हुए मार्ग पर चलकर आत्मा की अनन्त शक्तियाँ/विभूतियाँ प्राप्त करने का प्रयत्न करना—यही जैन धर्म का लक्ष्य है।

चौबीस तीर्थंकरों में भगवान ऋषभदेव तथा भगवान महावीर के जीवन चरित्र पर अनेक लेखकों ने लिखा है, किन्तु चौबीसों तीर्थंकरों के विषय में समग्र रूप में प्रामाणिक जानकारी देने वाला साहित्य बहुत कम लिखा गया है और बहुत ही कठिनाई से प्राप्त होता है।

हमने सचित्र कल्पसूत्र का सम्पादन किया तब संक्षेप में तीर्थंकर चरित्र भी लिखा गया। क्योंकि वह सूत्र काफी विशाल है, इसलिए उसमें अधिक विस्तार कर पाना सम्भव नहीं था। तब भावना जागी कि चौबीस तीर्थंकरों का पावन/प्रेरक जीवन चरित्र रोचक शैली में, कुछ विस्तार के साथ स्वतंत्र रूप में लिखा जाये, तो सभी के लिए उपयोगी होगा। प्रारम्भ में सिर्फ ५० पृष्ठ में ही जीवन चरित्र देने की कल्पना थी, किन्तु संक्षिप्त करते-करते भी यह जीवन चरित्र काफी विस्तृत हो गया है। तीर्थंकरों के पूर्व जीवन की प्रेरक घटनाएँ तो बहुत कुछ छोड़नी पड़ी हैं। भगवान ऋषभदेव, भगवान अरिष्टनेमि तथा भगवान महावीर के जीवन चरित्र को भी बहुत संक्षिप्त करके ही दिया गया है। किन्तु फिर भी जो लिखा गया है, वह पाठकों के लिए पर्याप्त, ज्ञानवर्द्धक, रुचिकर और प्रेरणादायी सिद्ध होगा, ऐसा विश्वास है।

भगवती सूत्र, आचारांग, जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति, समवायांग आदि सूत्रों में तीर्थंकरों के जीवन की घटनाएँ, बिखरी हुई मी मिलती हैं। कल्पसूत्र में चौबीस तीर्थंकरों के नाम तथा युगों की सूची मात्र है; केवल ऋषभदेव, पार्श्वनाथ, अरिष्टनेमि, तथा महावीर के अति संक्षिप्त जीवन-वृत्त हैं। सर्वप्रथम आचार्य भद्रबाहु ने आवश्यक निर्युक्ति-चूर्णि में तीर्थंकरों का पावन जीवन-वृत्त संक्षिप्त शैली में गुम्फित करने का सुन्दर व ऐतिहासिक प्रयत्न किया है। उसके पश्चात प्रवचनसारोद्धार तथा शीलांकाचार्य रचित चउप्पन्न महापुरिस चरियं, त्रिषष्टिशलांका पुरुष चरित्र (हमचन्द्राचार्य) आदि में तीर्थंकरों का जीवन-वृत्त बहुत ही विस्तारपूर्वक सुन्दर शैली में प्रस्तुत हुआ है। आचार्य जिनमेन रचित आदिपुराण, गुणभद्र रचित उत्तरपुराण, यतिवृषभाचार्य रचित तिलोयपण्णती आदि ग्रन्थों में भी तीर्थंकरों व चक्रवर्ती, वासुदेव, बलदेव आदि शलाका पुरुषों का जीवन-वृत्त प्राप्त होता है। प्राकृत-संस्कृत-अपभ्रंश भाषा में तीर्थंकरों के जीवन पर काफी ग्रन्थ व सामग्री मिल जाती हैं।

(9)



मुनिसुव्रत









ध्वजा



कुम्भ









विमान-भवन



रत्न राशि



निर्धूम अग्नि







श्री रतनलाल दोशी ने त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र के आधार पर तीर्थंकर चरित्र को तीन भागों में हिन्दी भाषा में सम्पादित किया है। जैन इतिहास के मर्मज्ञ आचार्य श्री हस्तीमल जी महाराज ने जैन धर्म का मौलिक इतिहास के प्रथम भाग में चौबीस तीर्थंकरों का जीवन चरित्र बड़े प्रामाणिक तथ्यों एवं समीक्षा के साथ लिखा है,

Rife

जो अपने आप में एक विशिष्ट प्रयास है। आचार्य श्री देवेन्द्र मुनि जी द्वारा लिखित चार तीर्यंकरों पर चार शोध ग्रन्थ तथा उपाध्याय श्री केवल मुनि

जी द्वारा लिखित ''भगवान महावीर'' भी इस विषय में पठनीय ग्रन्थ है। इन्हीं सब उपलब्ध ग्रन्थों का अनुसंधान/परिशीलन करते हुए हमने संक्षेप में, किन्तू रुचिकर शैली में तीर्थंकर

इन्हीं सब उपलब्ध ग्रन्थों का अनुसंधान/परिशीलन करते हुए हमने संक्षेप में, किन्तु रुचिकर शैली में तीर्थंकर चरित्र लिखा है।

परिशिष्ट में भी तीर्थंकरों सम्बन्धी अनेक दुर्लभ ज्ञातव्य तथ्य संकलित कर प्रस्तुत किये गये हैं। परिशिष्ट लेखन में उक्त ग्रन्थों के अतिरिक्त 'वीतराग यन्दना' विशेषांक भी सहयोगी बना है।

मैं उक्त सभी विद्वान् लेखकों, सम्पादकों तथा प्रकाशकों के प्रति कृतज्ञ हूँ जिनके परिश्रम, ज्ञान, अनुभव का लाभ सहज ही प्राप्त हुआ है।

प्रस्तुत संस्करण की विशेषता

प्राचीन ग्रन्थों को आधार बनाकर लिखा गया यह तीर्यंकर चरित्र अपने आप में कुछ खास विशेषताएँ भी रखता है--

- 9. सबसे मुख्य विशेषता है—तीर्थंकरों के जीवन प्रंसगों से सम्बन्धित सुन्दर बहुरंगे मावपूर्ण ५२ चित्र। आचार्य श्री विजय यशोदेवसूरि द्वारा भगवान महावीर का चित्र संपुट प्रकाशित किया गया था जो अत्यधिक लोकप्रिय हुआ है तथा कुछ अन्य सचित्र प्रकाशन भी हुए हैं। परन्तु इस प्रकार का सुव्यवस्थित सचित्र तीर्थंकर चरित्र, चित्र एवं वृत्त दोनों का सामंजस्य करने वाला, यह प्रथम प्रयास कहा जा सकता है जो अपने आप में एक विशेषता है।
- २. तीर्थंकर चरित्र लेखन में हमने श्वेताम्बर-दिगम्बर दोनों परम्पराओं के चरित्र ग्रन्थों का अनुशीलन किया है तथा जहाँ से उपयोगी, प्रेरक और निर्विवाद प्रसंग लगा उसे लिया भी है।
- ३. तीर्थंकरों के जीवन सम्बन्धी अनेक ज्ञातव्य रोचक तथ्यों के विषय में जन-साधारण की जिज्ञासा समाधान खोजती रहती है, परन्तु कभी समाधान मिलता है और कभी नहीं मिलता। हमने उक्त ग्रन्थों के आधार पर संकलित कर समाधान की दृष्टि से परिशिष्ट दिये हैं जो अपने आप में ज्ञानवर्द्धक तो हैं ही, काफी रोचक भी हैं।
- ४. हिन्दी के साथ ही इसका अंग्रेजी अनुवाद हजारों हिन्दीतर भाषी जिज्ञासुओं के लिए उपयोगी होगा और सुदूर विदेशों में बसे हजारों जैन अपने आराध्य देवों के पावन चरित्र से परिचित होंगे।

इस प्रकार प्रस्तुत तीर्थंकर चरित्र अपने आप में अनेक विशेषताएँ सँजोये सभी के लिए उपयोगी होगा ऐसा दृढ़ विश्वास है।

तीर्थंकर चरित्र के सम्पादन में, आधारमूत ग्रन्थों के साथ ही उ. मां. प्रवर्त्तक गुरुदेव श्री मण्डारी श्री पदाचन्द्र जी म. की विशेष प्रेरणा तथा उपप्रवर्त्तक श्री अमर भुनि जी म. का मार्गदर्शन एवं उनके महत्त्वपूर्ण विभिन्न आलेख एवं संग्रह भी उपयोगी बने हैं। मेरे निकट सहयोगी बन्धु श्री सुरेन्द्र जी बोथरा ने अंग्रेजी संस्करण तैयार करके इसकी उपयोगिता में चार चाँद लगा दिये हैं। मैं सभी के प्रति हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ। पाठकों से आशा करता हूँ कि वे इसका अधिकाधिक उपयोग कर संकेंगे।

-श्रीचन्द सुराना 'सरस'

गुज



वृषभ



लक्ष्मी



पुष्पमाला

चन्द्र

ू सूर्य

विमल

अनन्त 🎺







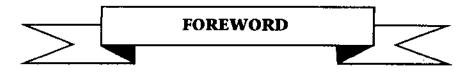


3



(4)





In the theist world the loftiest entity is The God!

It has thousands of names like—Paramatma (the ultimate soul), Bhagavan (the most glorious one), Siddha (the liberated), Buddha (the enlightened). The God, etc.

In the Jain tradition there are two forms of this entity-

- (1) The formless God or Siddha (the liberated)
- (2) The God with a form or Tirthankar/Arihant

The Tirthankar is a detached individual who is the ultimate altruist and benefactor of not only mankind but every living being. He propagates the religious path and preaches about it for their benefit. His benevolent voice promotes happiness, peace, and infinite bliss for every being.

In the Jain tradition their have been twenty four Tirthankars during the current descending cycle of time, Bhagavan Rishabhdev being the first and Bhagavan Mahavir the last.

For every Jain these Tirthankars are the entities to be worshipped and revered. The ultimate goal of Jainism is to tred the path shown by them and acquire infinite powers and virtues.

Out of these twenty four Tirthankars, many authors have written the biographies of Bhagavan Rishabhdev and Bhagavan Mahavir. But very little has been done about authentic and complete biographical sketch of all the twenty four Tirthankars. And it is even harder to get this material.

When we edited the Illustrated Kalpasutra we compiled brief life-sketches of all Tirthankars. As it is already a large volume we had to be selective in any further additions. It was at that time that we thought to compile life-sketches of all the Tirthankars in an independent book; it would be useful for all. The original plan was to include these brief biographical sketches within a 50 page book, but as the work progressed it became impossible to follow the plan. Although most of the inspiring incidents from earlier incarnations of the Tirthankars had to be left, the book became much larger than what we originally thought of. However, whatever has been included will hopefully prove to be adequately useful, educative, interesting and inspiring for our readers.

Scriptures like Bhagavati Sutra, Acharanga, Jambudvipa Prajnapti, Samvayang and others contain stray incidents from lives of Tirthankars. Kalpasutra just lists all the Tirthankars and their periods besides giving brief details about Rishabhdev, Parshvanath, Arishtanemi, and Mahavir. It was Acharya Bhadrabahu who first of all attempted to compile biographical sketches of all Tirthankars in brief. Later others worked on providing more detailed biographies in a variety of styles both, interesting as well as informative. Some of these later works are—Pravachansaroddhar, Chauppanna Mahapuris Chariyam (Shilankacharya), Trishashtishalaka Purush Charitra (Hemchandracharya), Adipurana (Acharya Jinasen), Uttarpurana (Gunabhadra), Tiloyapannatti (Yativrishabhacharya), etc. Considerable material is available about the lives of Tirthankars from various works in Prakrit, Sanskrat and Apabhramsha languages.

(9)





मुनिसुद्रत



नमि







महावीर

ध्वजा



कुम्भ



पद्म सरोवर



समुद्र



विमान-भवन



रत्न राशि



निर्धूम अग्नि



अभिनन्दन सुमति अजित ऋषभ सम्भव 🗗 पदाप्रभ Shri Ratan Lai Doshi has compiled and edited the biographies of Tirthankars, based on Trishashtishalaka Purush Charitra, in Hindi in three volumes. Acharya Shri Hastimal ii M., a recognised Jain historian himself, has compiled these biographies with authentic references and

his comments, in the first volume of the voluminous Jain Dharma ka Maulik Itihas. It is a unique

In this context other important reference works are "Bhagavan Mahavir" by Upadhyaya Shri Kewal Muni ji and four research works on four Tirthankars by Acharya Shri Devendra Muni ji.

With the help of all these works we have selected and compiled this book; a brief but attractive presentation.

A useful and informative part of the book is its Appendix. All these datas are rarely available at one place, 'Vitaraga Vandana' has been very useful in compiling the appendices.

I am grateful to all those authors, editors and publishers whose knowledge, hard work, and experience has been conveniently available through their works listed above.

This Edition

effort.

Although it is based on information available in ancient scriptures, this book has some unique features—

- 1. The most important feature of this book are 52 multicoloured illustrations on incidents from the lives of Tirthankars made in attractive style. Acharya Shri Vijay Yashodev Suri had published a set of illustrations based on Bhagavan Mahavir's life, it become very popular. There have been some other illustrated publications also, but this is the first attempt to present a neat and organized compilation of text and illustrations.
- 2. The biographical sketches have been compiled after a study of relevant literature from Digambar and Shyetambar traditions. Care has been taken to select only the incidents that are useful and inspiring and without any sectarian controversy.
- 3. Common man looks for a variety of specific data about Tirthankars and fails to find it in some commonly available book. This work attempts to fulfil that want with its functionally compiled appendices.
- 4. The combination of Hindi and English versions makes it useful for non-Hindi speaking readers, thus expanding its scope from Hindi speaking belt to the whole world.

We are sure, with these unique features, this Tirthankar Charitra will prove to be very useful for all and sundry.

The inspiration from U. B. Pravartak Gurudev Shri Bhandari Shri Padma Chandra ji M., and quidance from Up-prayartak Shri Amar Muni ji and the collection of his articles and books have been vitally useful in compiling this work. My close friend and associate Shri Surendra ji Bothara has added to the importance and usefulness of this work by preparing the English version besides sharing the editing work. I convey my heart felt regards to all these. I hope that the readers will like this work and that this will be frequently used it as a reference book.

-Srichand Surana 'Saras

(80)

सिंह

वृषभ



लक्ष्मी



पृष्पमाला

चन्द्र

सूर्य

विमल







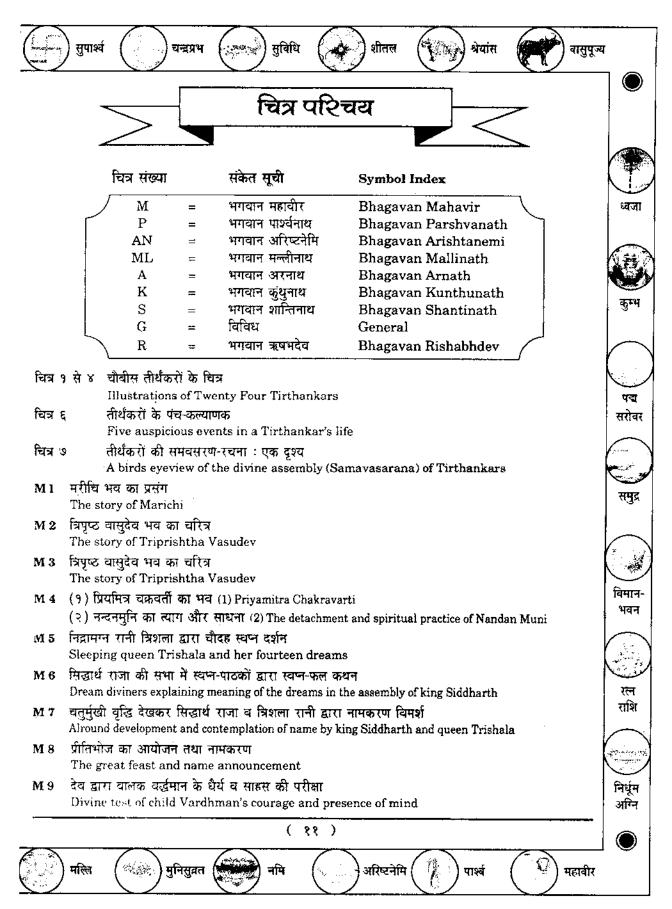


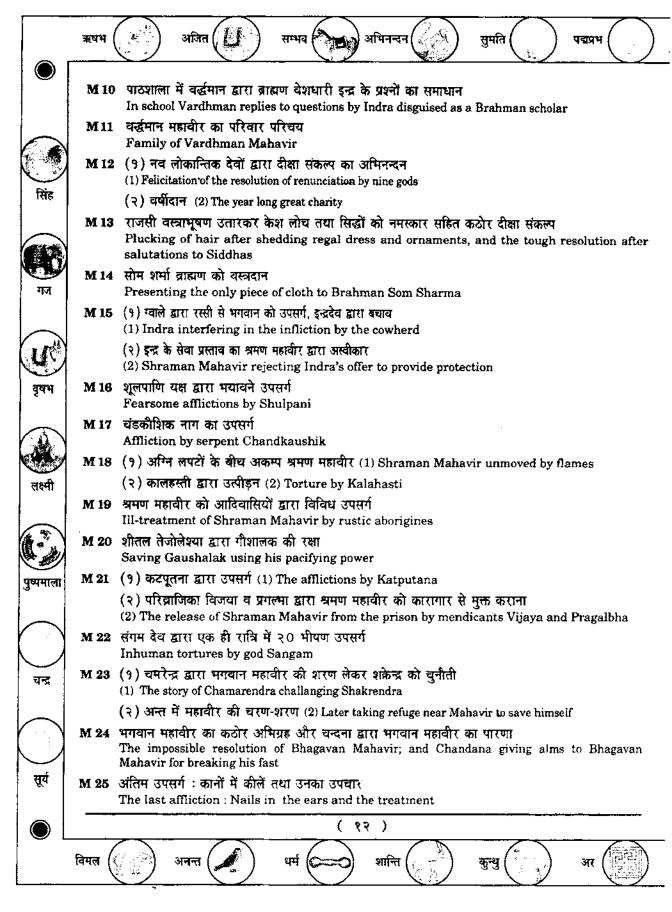




















सुविधि :

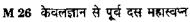








वासुपूज्य



Ten great dreams before omniscience

M 27 (9) ऋजुबालुका नदी के तट पर भगवान महावीर को कैवल्य प्राप्ति

- (1) Bhagavan Mahavir attains omniscience on the bank of the river Rijubaluka
- (२) भगवान महावीर की देवों की उपस्थिति में प्रथम देशना
- (2) The first discourse in presence of gods

M 28 इन्द्रभूति का आगमन और महावीर के चरणों में सर्वात्मना समर्पण Indrabhuti's arrival and total submission before Mahavir

- P1 (१) क्षमा माँगते मरुभूति पर कमठ द्वारा पत्थर भारना (1) Kamath hitting bowing Marubhuti with stone
 - (२) कुर्कुट सर्प द्वारा यूथपित हस्ती के मस्तक पर दंश
 - (2) Kurkut serpent biting the king elephant on its head
- P 2 पार्श्वकुमार द्वारा यवनराज विजय Victory over Yavan by Parshva Kumar
- P 3 "कमठ के अग्नि-कुण्ड से सर्प-युगल की रक्षा और उनका धरणेन्द्र-पद्मावती बनना Saving the pair of serpents from the fire of Kamath and their reincarnation as Dharnendra-Padmavati
- P 4 मेघमाली (कमठासुर) द्वारा उपसर्ग और धरणेन्द्र-पद्मावती का प्रकट होना
 The afflictions by Meghmali (Kamathasur) and appearance of Dharnendra-Padmavati
- AN 1 तीर्थंकर नेमिनाय का जन्म-कल्याणक (सूतिका कर्म) मनाते हुए ५६ दिशा कुमारियाँ
 Assembly of 56 goddesses of directions performing birth-celebrations (Janma-Kalyanak) of
 Tirthankar Neminath after post birth cleaning
- AN 2 (अ) श्रीकृष्ण की व्यायामशाला में नेमिकुमार की बल-परीक्षा
 - (a) Trial of strength between Shrikrishna and Nemikumar in his gymnasium
 - (ब) जल-क्रीड़ा के समय श्रीकृष्ण की रानियों द्वारा नेमिकुमार को विवाह के लिए सहमत करना
 - (b) Shrikrishna's queens persuading Nemikumar for marriage while playing water games
- AN 3 नेमिकुमार की बारात, वध के निमित्त बंद निरीह पशुओं की मुक्ति तथा वैराग्य लेने का निर्णय
 The marriage procession of Nemikumar, liberation of mute animals meant to be butchered,
 and decision to become ascetic
- AN 4 (अ) नेमिकुमार के वैराग्य की सूचना से दुःखित राजीमती का मूर्च्छित होना
 - (a) Rajimati becomes unconscious hearing the shocking news of Nemikumar's renunciation
 - (ब) नेमिकुमार का केश लोच कर अणगार बनना (b) Plucking his hair Nemikumar turns ascetic
- ML 1 (अ) चोक्षा परिव्राजिका का मल्लीकुमारी के सामने उपदेश
 - (a) Mendicant Choksha preaching before Malli Kumari
 - (ब) क्रुद्ध चोक्षा का राजा जितशत्रु के समक्ष मल्लीकुमारी का सौन्दर्य वर्णन
 - (b) Annoyed Choksha describing the beauty of Malli Kumari before king Jitshatru
 - (स) छह राजाओं द्वारा मल्लीकुमारी की मूर्ति को निहारना
 - (c) The six kings admiring the statue of Malli Kumari

(१३)



ध्वजा



कुम्भ



यद्म सरोवर



समुद्र



विमान-भवन



रत्न राशि



निर्धूम अग्नि







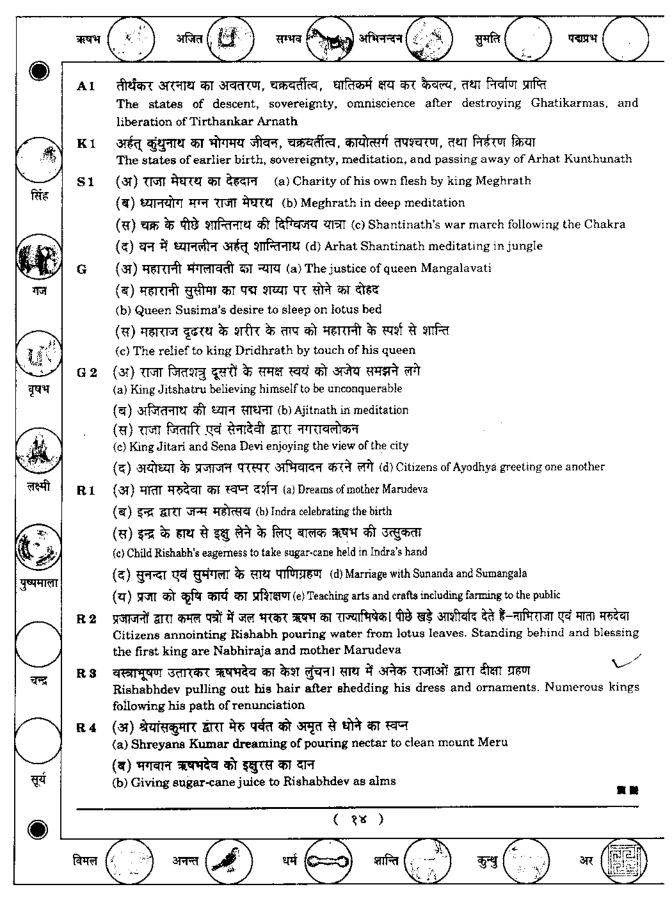
















चन्द्रप्रभ



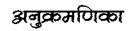








वासुयूज्य



CONTENTS

क्या	?	कहाँ ?	WHAT?	WHERE ?
तीर्थ	करकौन ?	99	Who is a Tirthankar?	21
9.	प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव	२३	1. Bhagavan Rishabhdev	, The First
			Tirthankar	29
₹.	भगवान अजितनाथ	३७	2. Bhagavan Ajitnath	39
₹.	भगवान संभवनाथ	४९	3. Bhagavan Sambhavna	th 42
ሄ.	भगवान अभिनन्दन	४३	4. Bhagavan Abhinandan	44
٩.	भगवान सुमतिनाथ	४५	5. Bhagavan Sumatinath	46
ξ.	भगवान पद्मप्रभ	४८	6. Bhagavan Padmaprabh	49
٠9.	भगवान सुपार्श्वनाथ	४९	7. Bhagavan Suparshvana	th 50
۷.	भगवान चन्द्रप्रभ	40	8. Bhagavan Chandrapra	bh 51
۶.	भगवान सुविधिनाथ	५१	9. Bhagavan Suvidhinath	52
90.	भगवान शीतलनाथ	५३	10. Bhagavan Sheetalnath	54
99.	भगवान श्रेयासनाय	५४	11. Bhagavan Shreyansnat	th 55
9२.	36	५५	12. Bhagavan Vasupujya	56
93.	भगवान विमलनाथ	५७	13. Bhagavan Vimalnath	57
98.	भगवान अनन्तनाथ	46	14. Bhagavan Anantnath	59
9 4 .	भगवान धर्मनाथ	५९	15. Bhagavan Dharmnath	60
9٤.	भगवान शान्तिनाध	६७	16. Bhagavan Shantinath	63
919.	भगवान कुंथुनाथ	६६	17. Bhagavan Kunthunath	67
	भगवान अरनाथ	६८	18. Bhagavan Arnath	68
୨ ९.	भगवान मल्लीनाथ	६९	19. Bhagavan Mallinath	74
₹0.	भगवान मुनिसुव्रत	७९	20. Bhagavan Munisuvrat	79
२१.	भगवान निमनाथ	۵۵ ا	21. Bhagavan Naminath	81
	भगवान अरिष्टनेमि	८२	22. Bhagavan Arishtanemi	86
•	भगवान पार्श्वनाथ	९०	23. Bhagavan Parshvanath	95
	भगवान महावीर :		24. Bhagavan Mahavir:	
	पूर्व-भव	909	Past-Incarnation	106
	गृहस्थ-जीवन	999	Life as Householder	118
	श्रमण-जीवन	१२६	The Life as an Ascetic	140
	केवली चर्या	१५७	Kewali Charya	162

(१५)



















महावीर















विमान-भवन

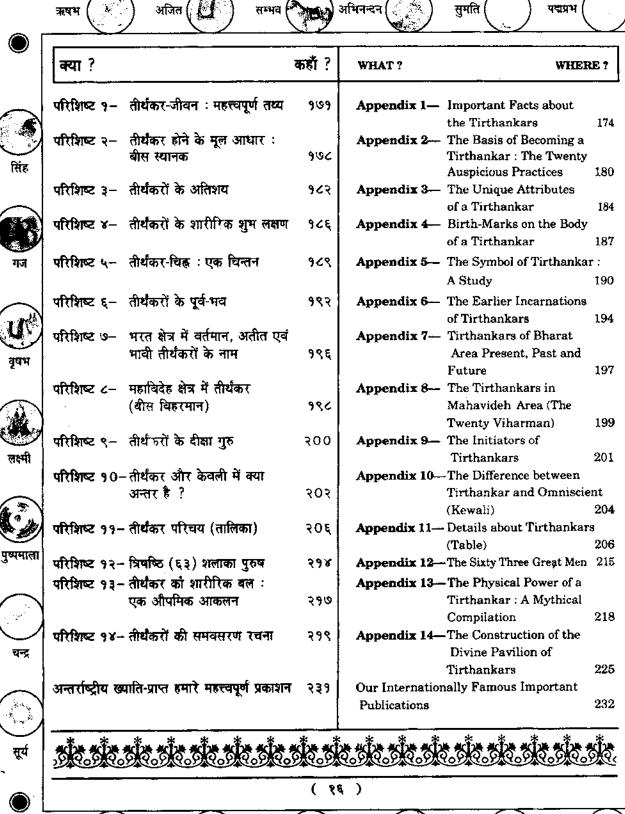












सिंह

गज

वृषभ

लक्ष्मी

चन्द्र

सूर्य

विमल





राग द्वेष विजेतारं ज्ञातारं विश्व वस्तुनः। शक्र पूज्यं गिरामीशं तीर्थेशं स्मृतिमानये॥

–आचार्य श्री वादिदेव सूरि

राग द्वेष को जीतने वाले, सकल वस्तु तत्त्व के ज्ञाता, देव-देवेन्द्र द्वारा पूज्य, वाणी के स्वामी तीर्थपति (तीर्थंकर भगवान) को अपनी स्मृतियों में स्थापित कर वन्दना करता हूँ।

Installing him in my memory I do Vandana (bow and pay homage) to the conqueror of attachment and aversion, the knower of all universe, the revered one for Indra (the king of gods), the lord of the word, the lord of the religious ford, the Tirthankar.

—Acharya Shri Vadidev Suri

तीर्थंकरों का शाश्वत सन्देश

जे <mark>अईया, जे य पडुप्पन्ना, जे य</mark> आगमेस्सा अरहंता भगवंतो ते सव्वे एवमाइक्खंति, एवं भासंति, एवं पण्णवेंति, एवं परूवेंति—

सब्वे पाणा सब्वे भूता सब्वे जीवा सब्वे सत्ता, ण हंतव्वा, ण अज्जावेयव्वा, ण परिघेतव्वा, ण परितावेयव्वा, ण उद्दवेयव्वा।

एस धम्मे सुद्धे णिइए सासए सिमच्च लोयं खेयण्णेहिं पवेइए।

जो अर्हत् भगवान अतीत में हुए हैं, वर्तमान में हैं और भविष्य में होंगे वे सब ऐसा आख्यान करते हैं, ऐसा भाषण करते हैं, ऐसा प्रज्ञापन करते हैं और ऐसा प्ररूपण करते हैं—

"किसी भी प्राणी, भूत, जीव और सत्त्व का हनन नहीं करना चाहिए; उन पर शासन नहीं करना चाहिए; उन्हें दास नहीं बनना चाहिए; उन्हें परिताप—कष्ट नहीं देना चाहिए; उनका प्राण-वियोजन नहीं करना चाहिए।"

यह धर्म, जिसका आत्मज्ञ अर्हतों ने, समस्त लोक को जानकर, प्रतिपादन किया है, शुद्ध है, नित्य है, तथा शाश्वत सत्य है।

-आचारांग सूत्र (४/१/१-२)

All omniscients of all times explain, speak, propagate, and proclaim that nothing which breathes, which exists, which lives, and which has any essence or potential of life, should be destroyed, or ruled over, or subjugated, or harmed, or denied its essence or potential. This truth, propagated by self-knowing Arhats, after comprehending all there is in the universe, is pure undefilable, and eternal.

—Acharang Sutra (4/1/1-2)











लक्ष्मी



पुष्पमाला













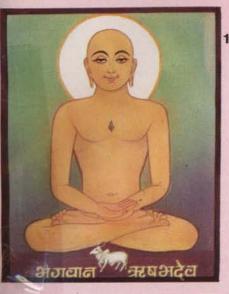




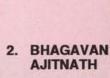


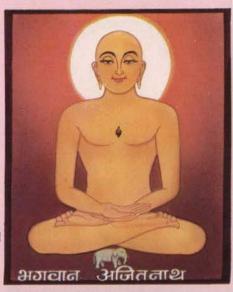




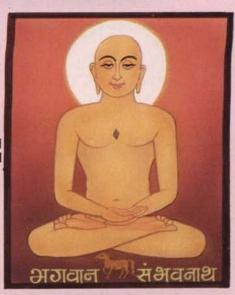


BHAGAVAN RISHABHDEV



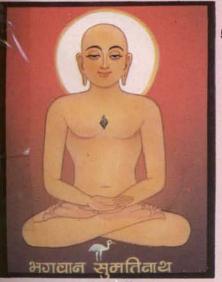


3. BHAGAVAN SAMBHAVNATH



अभिनन्दन

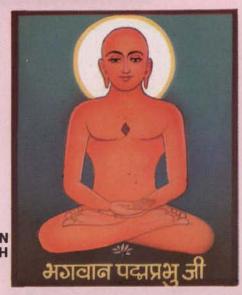
4. BHAGAVAN **ABHINANDAN**



5. BHAGAVAN SUMATINATH

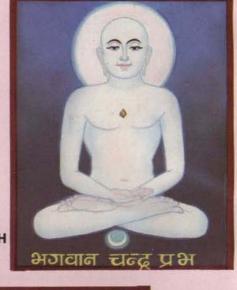


6. BHAGAVAN **PADMAPRABH**

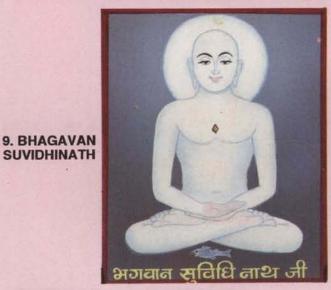




7. BHAGAVAN SUPARSHVANATH

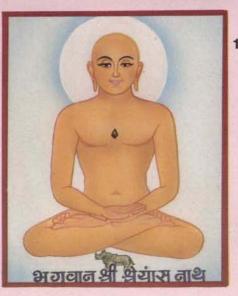


8. BHAGAVAN CHANDRAPRABH

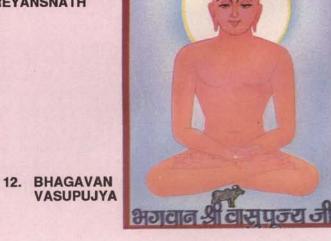


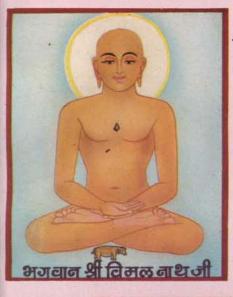
भगवान शीतल नाथ

10. BHAGAVAN SHITALNATH

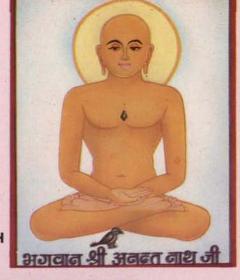


11. BHAGAVAN SHREYANSNATH

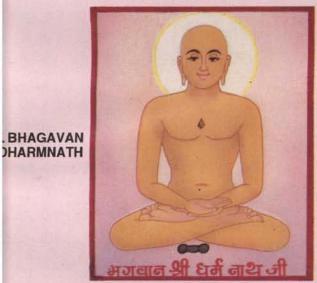




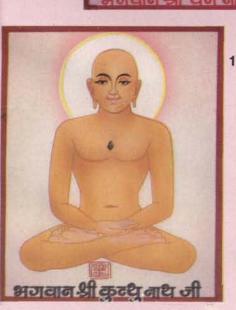
13. BHAGAVAN VIMALNATH



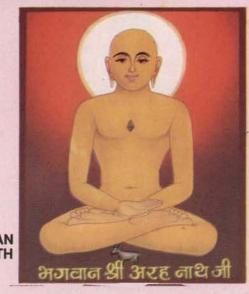
14. BHAGAVAN ANANTNATH



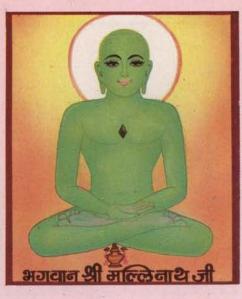
16. BHAGAVAN SHANTINATH



17. BHAGAVAN KUNTHUNATH

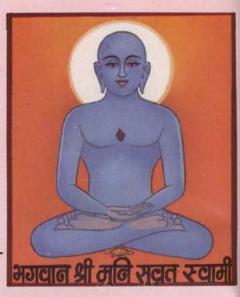


18. BHAGAVAN ARAHNATH

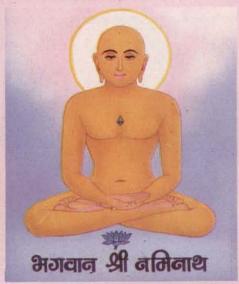


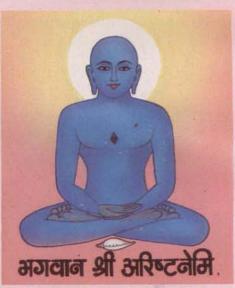
19. BHAGAVAN MALLINATH

20. BHAGAVAN MUNISUVRAT

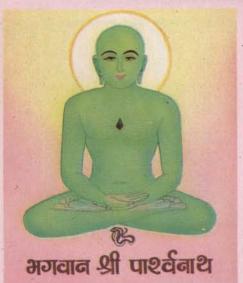


1. BHAGAVAN NAMINATH

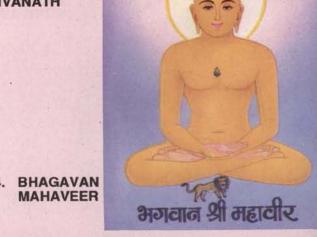




22. BHAGAV ARISHTANE



23. BHAGAVAN PARSHVANATH



24. BHAGAVAN



सुपार्श्व



चन्द्रप्रभ











गसुपूज्य



तीर्थंकर कौन ?



इस अनादि अनन्त संसार में जीव विभिन्न योनियों में परिभ्रमण करता हुआ कभी देवगति, कभी तिर्यंच, कभी मनुष्य और कभी नरक गति के सुख-दु:ख का भोग करता रहता है।

जीव के सुख-दुःख और जन्म-मरण का मुख्य कारण है, उसके भीतर रहे हुए राग और द्वेष के संस्कार या परिणाम। राग-द्वेष के परिणामों के कारण वह शुभ-अशुभ कर्मों का बंधन करता है और उन शुभाशुभ कर्मों के फलस्वरूप विभिन्न योनियों/गतियों में परिभ्रमण करता है।

प्रत्येक जीव अनन्त शक्तियों का पुँज है। ज्ञान का अक्षय प्रकाश तथा सुख एवं आनन्द का अनन्त स्रोत आत्मा में निहित है। ज्ञान एवं आनन्द आत्मा का निज-स्वभाव है। परन्तु जन्म-जन्मान्तरों से अज्ञान एवं मोह में इबे रहने के कारण आत्मा अपनी अनन्त शक्तियों को प्रकट करने का पर्याप्त पुरुषार्थ नहीं कर पाता। पुरुषार्थ करता भी है, तो राग-द्वेष के संस्कारों की सघनता के कारण उसका पुरुषार्थ पूर्ण सफल नहीं हो पाता। इसलिए आवश्यकता है—राग-द्वेष की वृत्तियों पर नियंत्रण करने की।

आत्मा जब निज-स्वरूप का बोध कर लेता है तो वह स्वयं की शक्ति को पहचान लेता है और धीरे-धीरे मोह एवं राग-द्रेष पर विजय प्राप्त करने का भी प्रयत्न करता है। राग-द्रेष को समूल नष्ट करने की यह दीर्घकालीन साधना ही संयम एवं समता का मार्ग है। आत्मा, जब अपने प्रबल पुरुषार्थ से, विविध प्रकार की तप-ध्यान-समभाव आदि की साधना द्वारा मन की राग-द्रेषात्मक ग्रंथियों (गाँठों) को क्षीण करने लगता है, तब वह निर्ग्रन्थ बनता है।

निर्ग्रन्थ-भाव में रमण करते हुए आत्मा एक दिन राग-द्वेष का संपूर्ण क्षय कर मोह को जीत लेता है। मोह को जीतने के कारण आत्मा ''जिनपद'' को प्राप्त करता है।

जिन का अर्थ है-विजेता।

जिसके राग-द्वेष नष्ट हो गये। मोह एवं अज्ञान का समूल नाश हो गया। मोहनीय, ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय इन चार घातिया कर्मों का क्षय हो गया वह आत्मा वीतराम, 'जिन', सर्वज्ञ या केवली कहलाता है।

कोई भी भव्य आत्मा ''जिन-पद'' प्राप्त कर सकता है। सर्वज्ञ बन सकता है, परम-आत्मा अर्थात् परमात्मा बन सकता है, किन्तु तीर्थंकर हर कोई आत्मा नहीं बन सकता। क्योंकि तीर्थंकर एक विशेष पुण्य-प्रकृति का परिणाम है।⁹

जो परमात्मा केवलज्ञानी अरिहंत देव अपनी वाणी द्वारा अहिंसा, सत्य आदि धर्म रूप तीर्य की स्थापना करते हैं, अथवा साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका रूप चार तीर्य की स्थापना करके धर्म का प्रवर्तन करते हैं, वे विशिष्ट अतिशयधारी जिन भगवान ''तीर्थंकर'' कहलाते हैं।

तीर्यंकर और केवली में क्या अन्तर है तथा तीर्थंकर विषयक ज्ञातव्य तथ्य, देखें परिभिष्ट में।

तीर्थंकर कौन ?

(१९)

Who is a Tirthankar ?



मल्लि













महावीर

ध्वजा



कुम्भ



सरोवर



समुद्र



विमान-भवन

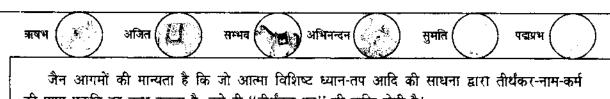


स्त राशि



निर्धूम अग्नि





की पुण्य प्रकृति का बन्ध करता है, उसे ही "तीर्थंकर पद" की प्राप्ति होती है।

एक अवसर्पिणी काल में केवली असंख्य हो सकते हैं, किन्तु तीर्थंकर केवल २४ ही होते हैं। तीर्यंकर चौबीस ही क्यों होते हैं, इसके उत्तर में आचार्य सोमदेव सूरी ने एक समाधान दिया है—

> नियतं न बहुत्वं चेत्कथमेते तथाविधाः । तिथि-तारा-ग्रहाम्भोधि-भूभृद्धभृतयो मताः ॥

> > --यशस्तिलकचम्पू ८७

यदि वस्तुओं की संख्या नियत न हो तो तिथि, वार, नक्षत्र, तारा, ग्रह, समुद्र, पर्वत आदि नियत क्यों माने गये? अर्थात् जैसे ये बहुत होने पर भी इनकी संख्या नियत है, उसी तरह तीर्थंकरों की संख्या भी प्राकृतिक नियमानुसार नियत है। एक अवसर्पिणी काल में ये चौबीस तीर्थंकर धर्म के पुरस्कर्ता, संघ के संस्थापक और दिव्य अतिशय सम्पन्न होते हैं।

तीर्थंकर परमात्मा का अवतार नहीं होते हैं, किन्तु एक सामान्य आत्मा की भाँति जन्म धारण कर विशिष्ट तप-ध्यान-समभाव आदि की साधना द्वारा तीर्थंकर पद प्राप्त करते हैं। इसलिए जैन धर्म में तीर्थंकर को ''अवतार'' नहीं कहा जाता, किन्तु वह आत्मा का परम विशुद्ध विकसित रूप है। अतः उन्हें ''शरीरधारी परमात्मा'' कह सकते हैं।

ं हम जिस वर्तमान अवसर्पिणी काल में अभी रह रहे हैं, इस काल में भगवान ऋषभदेव से भगवान महावीर तक २४ तीर्थंकर हो चुके हैं। जिनके नाम इस प्रकार हैं-

9.	भगवान ऋषभदेव	۶.	भगवान सु	ुविधिनाथ	9 ¹ 9.	भगवान	कुंथुनाथ
₹.	भगवान अजितनाथ	90.	भगवान श	ीतलनाथ	9८.	भगवान	अरनाथ
₹.	भगवान संभवनाथ	99.	भगवान श्रे	ोयांसनाथ	98.	भगवान	मल्लीनाथ
٧.	भगवान अभिनन्दन	97.	भगवान व	ासुपूज्य	₹0.	भगवान	मुनिसुव्रत
ن و.	भगवान सुमतिनाथ	93.	भगवान वि	वमलनाथ	२१.	भगवान	नमिनाथ
ξ.	भगवान पद्मप्रभ	98.	भगवान अ	ग् नन्तनाथ	२२.	भगवान	अरिष्टनेमि
છ.	भगवान सुपार्श्वनाथ	9५.	भगवान ध	र्मनाथ	२३.	भगवान	पार्श्वनाथ
۷,	भगवान चन्द्रप्रभ	9٤.	भगवान श	ग़न्तिना ध	२४.	भगवान	महावीर

4

(२०)

सचित्र तीर्थंकर चरित्र



सिंह

गज .

वृषभ

लक्ष्मी

पष्पमाला

चस्ट

सूर्य













पार्श्व (

यन्द्रप्रभः









वासुपूज्य



WHO IS A TIRTHANKAR?



In this universe, which is without a beginning or an end, the soul continues to experience sorrow and joy, traversing through numerous dimensions and forms including those of gods, animals, human-beings, and hell-beings.

The principle causes of these unending cycles of rebirth are the inherent attitudes of attachment and aversion, and their consequences. The attitudes of attachment and rersion result in the bondage of good and bad Karmas and as a consequence the soul continues its passage from one dimension to the other.

Every soul is a dormant source of infinite energies, uninterrupted light of knowledge and unending joy and happiness. Knowledge and happiness are the fundamental natural activities of the soul. But the accumulated inertia of ignorance and illusion acts as an impediment to its endeavour to activate these inherent infinite energies. Even when it launches its efforts, the dense accumulation of attitudes of attachment and aversion does not allow these efforts to become successful. As such, the disciplining of these attitudes of attachment and aversion becomes the prime need on this path of salvation.

When its own true form is revealed on the soul it recognises its inherent potential and gradually starts the efforts to win over the attitudes of fondness, attachment and aversion. This continuing endeavour to root out attachment and aversion is known as the path of discipline and equanimity. When the soul weakens the knots (Granthi) of attachment and aversion, as a result of its intense craving for salvation and practices of equanimity, penance, and meditation, it becomes tieless or Nirgranth (a term for Jain ascetic).

Continuing its un-dogmatic practices or the Nirgranth attitude, a day comes when the soul destroys all attachment and aversion and conquers fondness. As a result of this victory the soul attains the status of Jina.

Jina means the victorious one.

The individual who has destroyed attachment and aversion; who is absolutely free of fondness and ignorance; who has shed the four vitiating Karmas; namely illusory (Mohaniya), knowledge obstructing (Jnanavaraniya), perception obstructing (Darshanavaraniya), and power hindering (Antaraya), is known as Vitarag (the detached one), Jina (the victorious) and Sarvajna or Kewali (the omniscient).

Any deserving soul may attain the status of Jina, omniscient, ultimate or pure soul (Param-Atma), but not a Tirthankar. This is because of the fact that it

तीर्थंकर कौन ?

(२१)

Who is a Tirthankar?















ध्वजा



कुम्भ











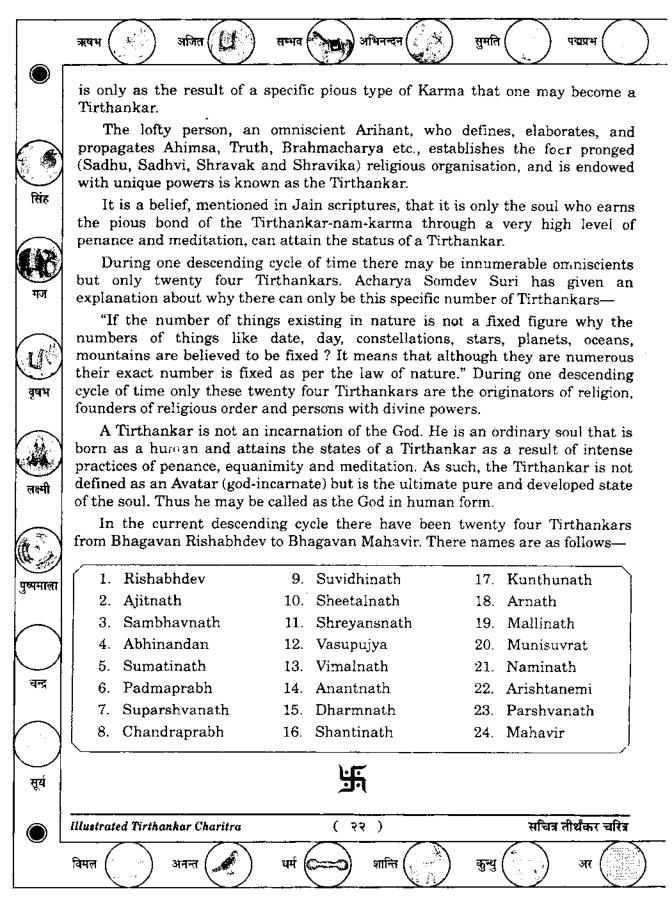














ग्रश्वं 🕡 ः









वासुपूज्य

१. प्रथम तीर्थंक२ भ्रशवान ऋषभ्रदेव

आदिमं पृथिवीनाथं, आदिमं निष्परिग्रहम्। आदिमं तीर्थनाथं च, ऋषभस्वामिनं स्तुमः॥

-आचार्य हेमचन्द्र

इस युग के जो आदि नृपति थे, और प्रथम मुनिव्रतधारी। प्रथम तीर्थकर्ता थे वे ही, ऋषभ स्वामि जग जय कारी॥

जैन काल गणना सिद्धान्त के अनुसार एक कालचक्र में १२ आरे होते हैं। उसके छः आरे अवसर्पिणी काल कहलाते हैं और छः आरे उत्सर्पिणी काल। अवसर्पिणी काल का सामान्य अर्थ है—जिस काल प्रवाह में प्राणियों के बल, आरोग्य, शरीर-सुख, सरलता आदि सद्गुण तथा प्रकृति के रस, जल-वायु आदि क्रमशः अल्प-अल्पतर होते जाते हैं।

युगलिया-युग

इस अवसर्पिणी काल के प्रथम, द्वितीय और तृतीय आरे के अंतिम समय तक मनुष्य प्रकृति पर आश्रित था। कल्पवृक्ष से उसकी आवश्यकताएँ पूर्ण हो जाती थीं। वह स्वभाव से सरल, शान्तिप्रिय, अल्पभोगी था। उस समय का पर्यावरण पूर्णतः शुद्ध था और जल अत्यन्त स्वादिष्ट शीतल व मधुर। माटी भी ईख जैसी मीठी। वायु परम शिक्त और पुष्टिदायक तथा अन्न-फल वनस्पति आदि पूर्ण तुष्टिदायक थे। एक बार थोड़ा-सा फल-जल ग्रहण कर लेने पर महीनों तक भूख नहीं लगती थी। स्वाभायिक है-जब भूख की पीड़ा नहीं सताती हो, तो पाप भी कम होता है, कलह भी कम होता है। मनुष्य, पशु, पक्षी सभी प्रकृति के साथ शांतिपूर्वक घुल-मिलकर रहते थे।

धीरे-धीरे प्रकृति में परिवर्तन होने लगा। कल्पवृक्षों से फल आदि वस्तुएँ कम मिलने लगीं। तो फिर उनके लिए संघर्ष भी होने लगा। उस संघर्ष को मिटाने व शान्ति एवं व्यवस्था के साथ जीने के लिए मनुष्य कुलों (समूहों, कबीलों) में बँटने लगे। उन कुलों में एक मुख्यि होता था जिसे "कुलकर" कहते थे। वह "कुलकर" मानवों के पारस्परिक संघर्ष मिटाकर शांति व्यवस्था कायम रखता था।

कुलकर व्यवस्था के चलते हुए सातवें कुलकर हुए नामिराजा। उनकी पत्नी का नाम था—मरुदेवा ! नामिराजा के समय तक का काल "युगलिया" काल कहलाता है। जिसका अर्थ है एक माता-पिता से केवल दो सन्ताने एक साथ जन्म लेतीं और वही आगे चलकर पित-पत्नी का युगल (जोड़ा) बन जाते। वे सभी प्रकार से परस्पर संतुष्ट और सुखी जीवन बिताकर अपनी दो सन्तान (युगल) को जन्म देकर बिना किसी आधि-व्याधि के सुखपूर्वक साथ ही प्राण त्याग देते। इस प्रकार युगल जीवन की यह परिपाटी चलती थी।

प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव

(२३) Bhagavan Rishabhdev, The First Tirthankar





मुनिसुव्रत













ध्वजा





पदा सरोवर



समुद्र



विमान-भवन

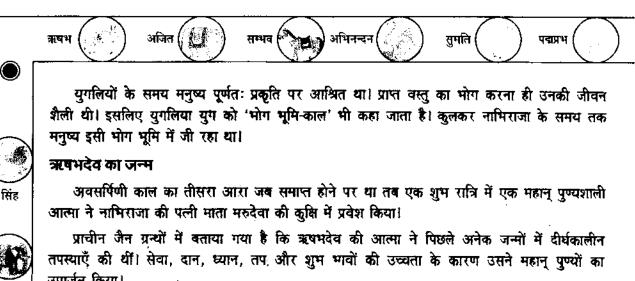


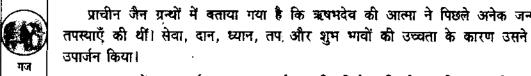
रत्न राशि











एक जन्म में धन्ना सार्थवाह बनकर उसने तपस्वी मुनियों आदि को दान दिया था। जीवानन्द वैद्य के जन्म में उसने निःस्वार्थ भाव से रुग्ण मुनियों व जनता की खुब सेवा की यी और वज्रनाभ नामक राजा के जन्म में उसने दीन-दिखयों का पालन-पोषण किया था। उसने लोकसेवा के अनेक कार्य किये और अन्त में राज्य त्यागकर मुनिव्रत धारण कर अपूर्व ज्ञान-उपासना, तप, ध्यान, तितिक्षा आदि की दीर्घकालीन साधना करके तीर्यंकर-नाम-कर्म का उपार्जन किया। पूर्व-जन्म के इन महान् पुण्यों के कारण ऋषभदेव के रूप में उनका जन्म हुआ।

महान् भाग्यशाली आत्मा के गर्भ-प्रवेश लेने पर उसी रात्रि में माता मरुदेवा ने १४ शुभ स्वप्न देखे। सुख शय्या पर सोये हुए उन्हें ऐसा अनुभव होने लगा कि निर्मल आकाश से उतरकर एक अत्यन्त बलिष्ट सुन्दर दूध-सा उज्ज्वल "वृषभ" मेरे मुख द्वारा उदर में प्रवेश कर रहा है। इसी विलक्षण स्वप्न के साथ माता ने क्रमशः अन्य स्वप्न भी देखे-

स्वान-२. पर्वत के समान ऊँचा चार दाँत वाला गजराज.

स्वप्न-३. केशरी सिंह,

वृषभ

लक्ष्मी

पुष्पमाला

चन्द्र

सूर्य

स्बन-४. कमलासन पर विराजित लक्ष्मी देवी.

स्वप्न-५. फूलों की विकसित माला,

स्वप्न-६. आकाश में चमकता पूर्ण चन्द्र,

स्वप-७. प्रभास्वर सूर्व,

स्वप्न-८. लहराती ध्वजा.

स्वप्न-९. स्वर्ण कलश.

स्वप्न-१0. कमलों से खिला पद्म-सरोवर.

स्वप्न-११. क्षीर समुद्र,

स्वप-१२, देव विमान,

स्वप्न-१३. रलों की राशि.

स्वप्न-१४. ध्रुप्ररहित अग्नि। (चित्र R-1/अ)

Illustrated Tirthankar Charitra

(28)

सचित्र तीर्थंकर चरित्र

विमल

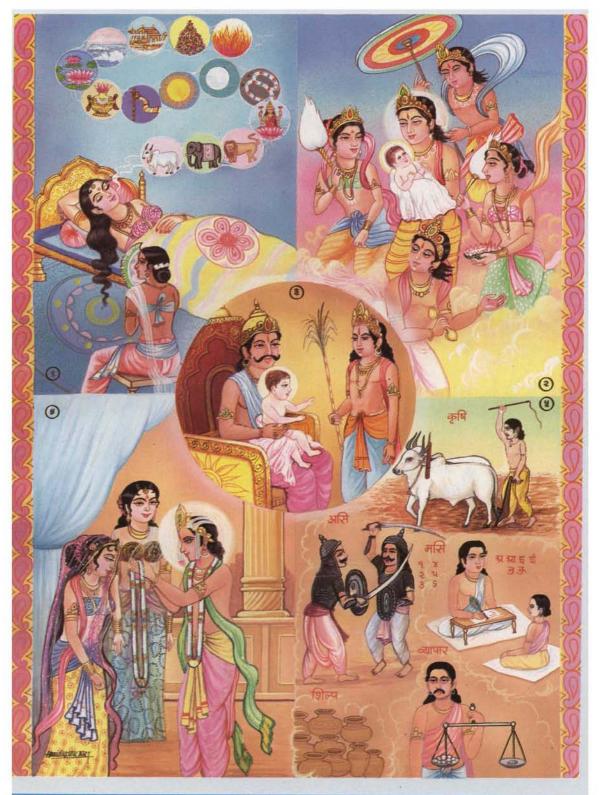






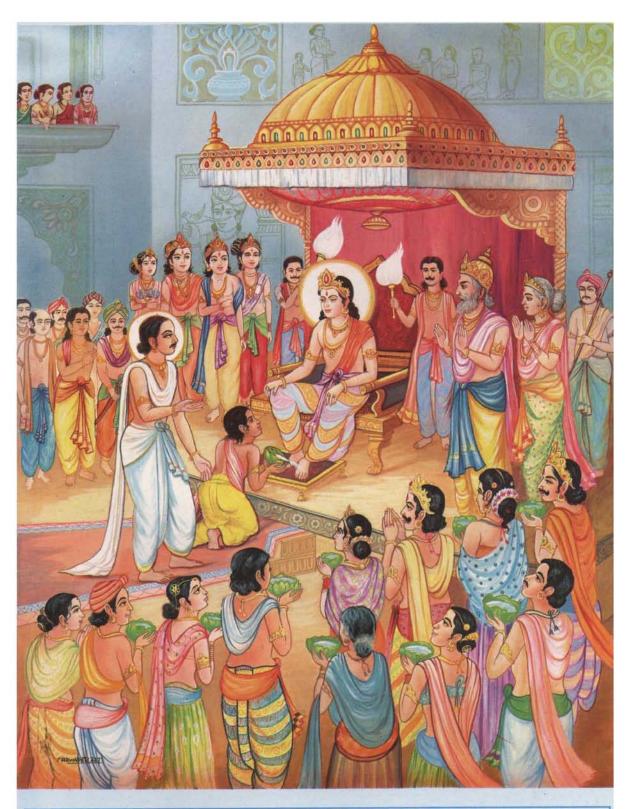






R 1 (अ) माता मरुदेवा का स्वप्न दर्शन (ब) इन्द्र द्वारा जन्म महोत्सव (स) इन्द्र के हाथ से इक्षु लेने के लिए बालक ऋषम की उत्सुकता (द) सुनन्दा एवं सुमंगला के साथ पाणिग्रहण (प) प्रजा को कृषि कार्य का प्रशिक्षण

(a) Dreams of mother Marudeva. (b) Indra celebrating the birth. (c) Child Rishabh's eagerness to take sugar-cane held in Indra's hand. (d) Marriage with Sunanda and Sumangala. (e) Teaching arts and crafts including farming to the public.



R 2 प्रजाजनों द्वारा कमल पत्रों में जलभर कर ऋषभ का राज्याभिषेक, पीछे खड़े आशीर्वाद देते हैं-नाभिराजा एवं माता मरुदेवा Citizens annointing Rishabh pouring water from lotus leaves. Standing behind and blessing the first king are Nabhiraja and mother Marudeva.



चन्द्रप्रभ





सुविधि

शीतल





वासुपूज्य

नामिराजा स्वयं विद्वान और दीर्घ अनुभवी थे। इन शुभ स्वप्नों को सुनकर उन्होंने मरुदेवा से कहा-''देवी ! आपकी रत्नकृक्षि से एक महानु भाग्यशाली आत्मा का जन्म होगा, जो संसार को सुख-शान्ति का मार्ग दिखायेगा।"

जन्मोत्सव

चैत्र कृष्णा अष्टमी की अर्धरात्रि के समय महादेवी मरुदेवा ने एक युगल सन्तान को जन्म दिया। पत्र का जन्म होते ही चारों दिशाएँ प्रकाश से जगमगा उठीं। भीनी-भीनी सगन्धित पवन बहने लगी। चारों ओर एक अनिर्वचनीय सख का वातावरण निर्मित हो गया।

महान् पुण्यशाली पुत्र का जन्म होने पर मित्र-भित्र दिशाओं में रहने वाली छप्पन दिशाकुमारियाँ आई। उन्होंने पहले भावी तीर्थंकर की माता को तीन प्रदक्षिणा करके वन्दना की। फिर तीर्थंकर स्वरूप बालक की स्तित की और उनके सभी प्रकार के स्तिका कर्म किये।

उसी समय प्रथम स्वर्ग के अधिपति सौधर्मेन्द्र शक्र महाराज को ज्ञात हुआ कि पृथ्वी लोक में प्रथम तीर्यंकर का जन्म हो गया है। शक्र महाराज तत्काल अपने विशाल देव परिवार के साथ वहाँ उपस्थित हए। सर्वप्रथम उन्होंने माता को प्रणाम किया--

"हे रत्नकुक्षिधारिणी, जगत् माता ! मैं, सौधर्मेन्द्र शक्र आपको नमस्कार करता हूँ।"

फिर शक्रेन्द्र ने माता को सुख-निद्रा में सुला दिया और अपने पाँच दिव्य रूप बनाये। बालक को सावधानीपूर्वक अपने हाथों में उठाकर मेरु पूर्वत पर लाये और उसका जन्म अभिषेक किया। इस महोत्सव में ६४ इन्द्र और अगणित देवी-देवता सम्मिलित होकर उत्सव मनाते हैं। यह तीर्थंकरों का जन्म-कल्याणक उत्सव संसार में अद्वितीय उत्सव होता है। (चित्र R-1/ब)

नामकरण

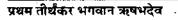
दूसरे दिन नाभिराजा ने पुत्र का जन्मोत्सव मनाया। स्वजन-परिजनों को प्रीतिभोज दिया, तथा सबके सन्मुख घोषणा करते हुए नामिराजा ने कहां-"बालक की जंघा पर वृषभ का लांछन (चिन्ह) है तथा माता ने सर्वप्रथम वृषभ का स्वप्न देखा है, इस कारण हम बालक का नाम 'ऋषभक्मार' रखना चाहते हैं।" बालक के साथ जन्मी कन्या को "सुमंगला" नाम से पुकारा गया।

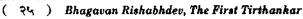
इक्ष्वाकृवंश की स्थापना

ऋषभक्मार जब लगभग एक वर्ष के हुए तो एक दिन सौधर्मेन्द्र दर्शन करने के लिए आये। उनके हाथ में इक्षुदण्ड (गन्ना) था। बालक ऋषभ ने ललककर पिता की गोद में वैठे-बैठ ही इक्षुदण्ड लेने के लिए अपना हाय बढ़ाया। इन्द्र ने बालक को इक्षदण्ड समर्पित किया। बालक इक्षु प्रिय होने के कारण उनके वंश का नाम 'इक्ष्वाकृ वंश' प्रख्यात हुआ। (चित्र R-1/स)

विवाह

युवा होने पर ऋषभक्मार ने सुनन्दा नाम की एक अन्य युगलिया कन्या के साथ विवाह करके "विवाह" प्रथा का प्रारम्भ किया। फिर नामिराय ने सुमंगला के साथ उनका पाणिग्रहण करवाया। (चित्र R-1/द)























पदा सरोवर



समुद्र



विमान-भवन



राशि



यथासमय सुमंगला के भरत, ब्राह्मी आदि ९८ सन्तानें हुईं, तथा सुनन्दा ने 'बाहुबली' और 'सुन्दरी' को जन्म दिया।

कृषि आदि का शिक्षण

सिंह

वृषभ

लक्ष्मी

पुष्पमाला

चन्द्र

ऋषभकुमार अत्यन्त प्रतिभाशाली, दूरदर्शी और पुरुषार्थवादी थे। वे मानव मनोविज्ञान के गहरे विद्वान भी थे। उन्होंने मनुष्यों की रुचि, उनके स्वभाव, शारीरिक गठन आदि का सुक्ष्म निरीक्षण कर उन्हें उनकी योग्यता व रुचि के अनुसार कार्य सौंपे। कुछ लोगों को कृषि (खेतीवाड़ी) करना सिखाया और कुछ लोगों को कृषि उत्पादों की वितरण-व्यवस्था सँभालने के लिए मिष (व्यापार) की शिक्षा दी। अंक-विद्या और अक्षर-विद्या के रूप में उन्होंने मिष (स्याही-लेखनी) का उपयोग करना सिखाया। वन्य पशुओं से धान्य की सुरक्षा तथा तस्करों व शत्रुओं से संपत्ति आदि की रक्षा करने के लिए उन्होंने वीर बलिष्ट व्यक्तियों को असि कर्म (शस्त्र-संचालन) की शिक्षा दी। इसी प्रकार बर्तन बनाना, वस्त्र बनाना, भवन बनाना, शिल्प-कला, संगीत, नृत्य आदि अनेक प्रकार की विद्याएँ सिखाकर उन्होंने समाज में ज्ञान, कला, मनोरंजन, व्यापार व राज्य-व्यवस्था के मूलभूत सिद्धान्तों का व्यावहारिक प्रशिक्षण दिया। (चित्र R-1/य)

ऋषभकुमार के आदेश-निदेश व संरक्षण में तत्कालीन मानव-समाज बहुत शीघ्र प्रगति करने लगा। तब जनता की माँग पर महाराज नामिराय ने एक विशाल समारोह करके ऋषभकुमार का राज्याभिषेक कर राज्य की संपूर्ण जिम्मेदारी उनके कुशल हाथों में सौंप दी। इस राज्यामिषेक समारोह में नाभिराय, मरुदेवा ने उपस्थित होकर ऋषम को आशीर्वाद प्रदान किया; भरत, बाहबली आदि सभी परिवार सम्मिलित हुआ। युगलियों ने कमल पत्तों में नदियों का पवित्र जल भरकर ऋषभ का चरण-सिंचन किया। इन्द्र के आदेश से कुबेर ने विनीता नगरी का निर्माण किया जो आगे चलकर "अयोध्या" नाम से प्रसिद्ध हुई। इस प्रकार ऋषभदेव अपने युग के प्रथम राजा बने। (चित्र R-2)

त्याग-मार्ग का प्रवर्त्तन

बहुत वर्षों तक ऋषभदेव मानव-समाज को अनेक प्रकार की विद्याएँ और कलाएँ सिखाते रहे। उनके पिता के राज्य में मानव समूह कुलों में तो बँटा था, परन्तु उनके कोई अलग नाम नहीं थे। ऋषभदेव ने उन समूहों को उग्रकुल, भोगकुल, राजन्यकुल और क्षत्रियकुल आदि नाम दिये तथा व्यापार, रक्षा; कृषि, सेवा आदि कार्य करने वालों को उनके कार्यानुसार वैश्य, क्षत्रिय, शुद्र आदि वर्णों में विभक्त कर दिया। तब तक बाह्मण वर्ण नहीं था।

बहुत काल तक (६३ लाख पूर्व तक) राज्य सँभालने के बाद ऋषभदेव के मन में सांसारिक वस्तुओं के प्रति सहज ही विरक्ति होने लगी। उन्हें लगा, अब यह सब जिम्मेदारियाँ पुत्रों को सींपकर मुझे आत्म-साधना कर केवलज्ञान प्राप्त करना चाहिए और फिर संसार को भोगों का त्यागकर संयम-साधना की शिक्षा भी देनी चाहिए। क्योंकि जीवन का लक्ष्य भोग नहीं, त्याग ही है। त्याग से ही मनुष्य को आत्मक शांति और आनन्द की उपलब्धि हो सकती है। ऋषभदेव का चिन्तन था-"वस्तु के भोग में सुख नहीं, केवल सुख की कल्पना है। सख तो भोग-इच्छा की निवृत्ति में है।"

अपने विचारों को कार्यरूप में परिणत करते हुए महाराज ऋषभदेव ने सबसे बड़े पुत्र भरत को अयोध्या का, बाहबली को तक्षशिला का तथा अन्य पुत्रों को छोटे-बड़े राज्य सींपकर दीक्षा ग्रहण करने का निश्चय

Illustrated Tirthankar Charitra

25)

सचित्र तीर्थंकर चरित्र

विमल





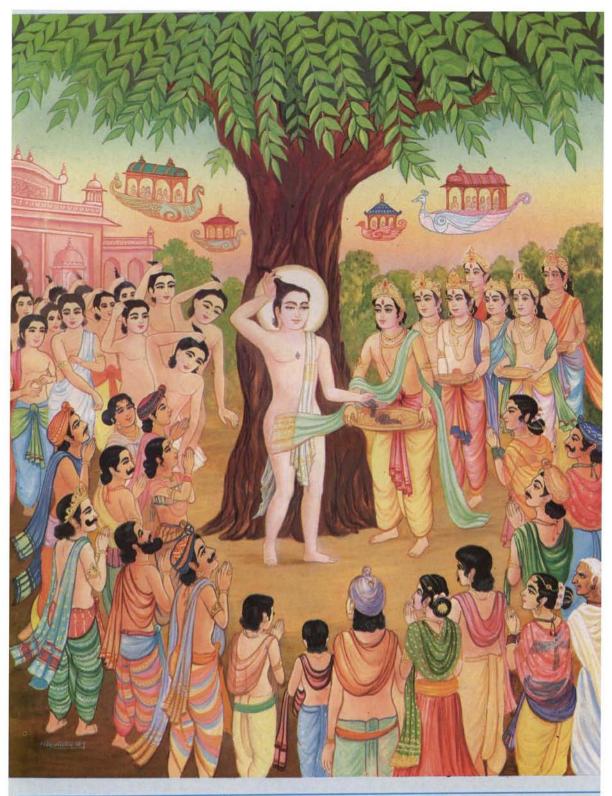




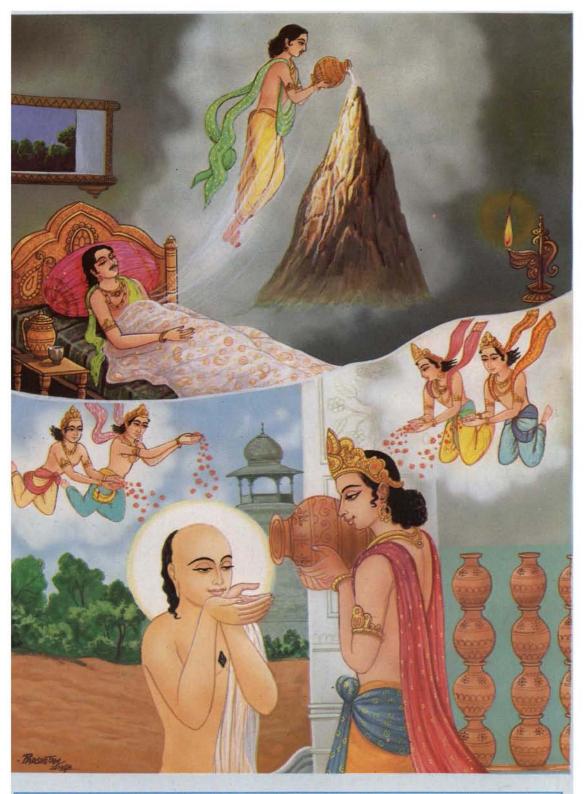


सूर्य

शान्ति



R 3 वस्त्राभूषण उतारकर ऋषभदेव का केश लुंचन, साथ में अनेक राजाओं द्वारा दीक्षा ग्रहण Rishabh Dev pulling out his hair after shedding his dress and ornaments. Numerous kings following his path of renunciation.



(अ) श्रेयांस कुमार द्वारा मेरु पर्वत को अमृत से धोने का स्वप्न (व) भगवान ऋषभदेव को इक्षुरस का दान (a) Shreyans Kumar dreaming of pouring nectar to clean mount Meru. (b) Giving sugarcane-juice to Rishabh Dev as alms. R4















ासपुज्य

किया। उस समय ब्रह्मलोक निवासी नव लोकांतिक देवों ने उपस्थित होकर प्रार्थना की—"हे मानव जाति के त्राता ! संसार को त्याग मार्ग दिखाने का आपका संकल्प उत्तम है, शीघ्र ही आप धर्म मार्ग का प्रवर्तन कीजिए।"

एक वर्ष तक प्रजा को मुक्त हस्त से दान (वर्षीदान) देकर ऋषभदेव ने चैत्र कृष्णा नवमी के शुभ दिन अशोक वृक्ष के नीचे खड़े होकर स्वयं अपने हाथों से अपना केश लुचंन कर मुनि धर्म ग्रहण किया। सीधर्मपित इन्द्र ने प्रभु के केशों को दिव्य वस्त्र में ग्रहण कर उन्हें क्षीर समुद्र में प्रवाहित कर दिया।

प्रभु ऋषभदेव जब पाँचवीं बार मुष्टि से अपने केश लुचंन कर रहे थे तब इन्द्र महाराज ने निवेदन किया—"स्वामी ! यह शिखा (चोटी) आपके मस्तक व कन्धे पर अत्यन्त शोभायमान हो रही है, इसे रहने दीजिए।" भगवान ने इन्द्र की प्रार्थना स्वीकार कर ली। इसी केश राशि के कारण ऋषभदेव का नाम केशी, केशरिया भी प्रसिद्ध हुआ।

दीक्षा लेते समय भगवान के अनेक अनुयायी राजा एवं अन्य लोगों ने सोचा—"हमारे स्वामी जिस मार्ग का अनुसरण कर रहे हैं वही मार्ग वास्तव में श्रेष्ठ है। अतः हमें भी उनके साथ गृह त्यागकर दीक्षित होना चाहिए।" इस प्रकार विचार कर चार हजार व्यक्तियों ने प्रभु के साथ-साथ केश लुंचन कर मुनि मार्ग स्वीकार कर लिया। (चित्र R-3)

भिक्षा में इक्षुरस दान

भगवान ऋषभदेव उस युग के प्रथम मुनि या भिक्षु थे। लोग मुनि की आचार-मर्यादा से अनिमज्ञ थे। उन्हें कैसी भिक्षा दी जाए यह भी पता नहीं था। भगवान ऋषभदेव जब भिक्षा के लिए नगर में आते तो लोग उन्हें— 'स्वामी!, महाराज!'' आदि के आदरसूचक सम्बोधन देकर स्वर्ण, आभूषण, वस्त्र, फल आदि की भेंट सजाकर लाते, परन्तु ऋषभदेव के लिए यह सब अग्राह्य था। वे मौन भाव से वापस वन लीट जाते। इस प्रकार शुद्ध भिक्षा के अभाव में एक वर्ष से अधिक समय तक निर्जल निराहार तप करते रहे। इस बीच जो चार हजार व्यक्ति उनके साथ मुनि बने थे, उन्हें भूख, प्यास सताने लगी। वे भगवान ऋषभदेव से आकर पूछते—''स्वामी! हमें भूख लगी है, प्यास सता रही है, हम क्या करें? क्या खायें? क्या पीयें?'' परन्तु भगवान ऋषभदेव कठोर मौन धारण किये रहते। भूख-प्यास से व्याकुल होकर उनमें से अनेक मुनियों ने झरनों, नदियों का पानी पीना चालू कर दिया। कन्द, मूल, फल खाकर समय बिताया। कुछ जंगलों में जाकर तापस/परिव्राजक बन गये।

भगवान ऋषभदेव विहार करते-करते एक बार हिस्तिनापुर नगर की ओर प्रधारे। हिस्तिनापुर में उस समय बाहुबली के पुत्र सोमप्रभ राजा राज्य करते थे। उनका पुत्र था-श्रेयांसकुमार। उस रात श्रेयांसकुमार ने एक विचित्र स्वप्न देखा-''स्वर्ण के समान चमकने वाला मेरु एर्वत काला पड़ गया है और मैं दूध के कलश से उसका अभिषेक कर उसे पुनः उज्ज्वल बना रहा हूँ।'' (चित्र R-4/अ)

प्रातःकाल श्रेयांसकुमार ने अपने पिता महाराज सोमप्रभ से इस विचित्र स्वप्न की चर्चा की। राजा ने कहा—''मुझे भी रात को कुछ ऐसा ही एक विलक्षण स्वप्न आया है।'' और उसी समय नगर-श्रेष्ठी सुबुद्धि ने भी अपने विचित्र स्वप्न की चर्चा की, परन्तु स्वप्न का सूचक रहस्य कोई नहीं समझ सका। तब श्रेयांसकुमार अपने महल के झरोखे में बैठकर स्वप्न के रहस्य पर विचार करने लगे।

प्रथम त्रीर्थंकर भगवान ऋषभदेव

(२७) Bhagavan Rishabhdev, The First Tirthankar









अरिष्टनेमि







ध्वज



कुम्भ







विमान-भवन



रत्न राशि



निर्धूम अग्नि



उसी समय भगवान ऋषभदेव हस्तिनापुर नगर में पधारे। भगवान का आगमन सुनकर सैकड़ों-हजारों लोग उनके दर्शनार्थ उमड़ पड़े। लोग भिन्न-भिन्न प्रकार के उपहार सजाकर लाने लगे। परन्तु प्रभु ऋषभदेव ने कुछ भी ग्रहण नहीं किया। वे सीधे राजमहल की ओर बढ़ते चले आ रहे थे। अचानक श्रेयांसकुमार ने भगवान ऋषभदेव को राजगहल की ओर पधारते देखा, यह अपलक दृष्टि से देखता ही रह गया। गहन और एकाग्र भावपूर्वक देखने से उसे जाति-स्मरण ज्ञान हुआ, पिछला जन्म चित्रपट की भाँति स्मृतियों में झलकने लगा। उसने तत्काल समझ लिया--"भगवान ऋषभदेव एक वर्ष से निराहार विचर रहे हैं और मुनि-मर्यादा के अनुकूल शुद्ध भिक्षा देने का किसी को ज्ञान नहीं है।" वह शीघ्र ही राजमहलों से नीचे उतरा, भगवान की भक्तिपूर्वक वन्दना की, प्रार्थना की-"प्रमो पधारिए ! आज ही मेरे आँगन में ताजे इक्षुरस के १०८ कलश आये रखे हैं, वे पूर्ण शूद्ध हैं, आपके अनुकूल हैं, कृपाकर इक्षुरस ग्रहण कीजिए।"

प्रभु ऋषभदेव ने अपने दोनों हाथों का अंजलिपुट बनाकर इक्षुरस ग्रहण किया। अत्यन्त भक्तिभावपूर्वक श्रेयांसकुमार ने इक्षुरस दान कर भगवान को वर्षीतप (एक वर्ष ४० दिन लगभग) का पारणा कराकर महान धर्म लाभ प्राप्त किया। देवताओं ने आकाश से "अहोदानं, अहोदानं" की घोषणा कर हर्ष ध्वनियाँ की। रत्नें, पंचवर्णी पुष्पों तथा सुगंधित जल आदि की वृष्टि कर आनन्द मनाया। संसार में धर्म-दान की प्रवृत्ति का शुभारम हुआ। इस पुनीत स्मृति में यह वैशाख शुक्ला तृतीया का दिन "अक्षय तृतीया" के नाम से पर्व के रूप में मनाया जाने लगा। आज भी वर्षीतप के पारणे के रूप में लाखों जैन इस महापर्व को मनाते हैं। (चित्र R-4/ब)

केवलज्ञान और मोक्ष

सिंह

पुष्पभाला

चन्द्र

सूर्य

भगवान ऋषभदेव एक हजार वर्ष तक भीन युक्त कठोर तप करते-करते एक दिन विनीता नगरी के शकटमुख उद्यान में वट वृक्ष के नीचे शुक्ल ध्यान में लीन थे। उस समय भगवान शुक्ल ध्यान में तल्लीन होकर भावों की अत्यन्त निर्मल उच्च श्रेणी पर चढ़ रहे थे। सुक्ष्म ध्यान की गहनता के बल पर उन्होंने मोह कर्म को नष्ट कर दिया। फिर ज्ञानावरण आदि कर्मों का क्षय किया तो आत्मा में परम पवित्र ज्ञानालोक प्रकट हुआ। ऋषभदेव केवलज्ञान केवलदर्शन प्राप्त कर 'जिन' बन गये।

जिस समय भगवान को केवलज्ञान प्राप्त हुआ उस समय समूचे संसार में क्षण-भर के लिए दिव्य आलोक-सा फैल गया। असंख्यं देव और अगणित मानव समूह भगवान की बन्दना करने आने लगे। चक्रवर्ती भरत को सूचना मिलते ही वे भी माता मरुदेवा के साथ भगवान ऋषभदेव का कैवल्य महोत्सव मनाने आये।

माता मरुदेवा हाथी पर बैठकर जब शकटमुख उद्यान में पहुँचीं तो उन्होंने दूर से ही देवताओं द्वारा रचित दिव्य समवसरण में भगवान को विराजमान देखा⁹, हजारों सूर्यों से भी अधिक प्रकाशमान अगणित देव देवेन्द्रों से पूजित भगवान का दिव्य मनोहारी स्वरूप देखते-देखते माता मरुदेवा भाव-विभोर हो गयीं। उच्च निर्मल भाव धारा में बहते हुए माता मरुदेवा ने भी केवलज्ञान प्राप्त कर लिया, और जब तक केवलज्ञान की उद्घोषणा होती मरुदेवा शरीर त्यागकर मोक्ष/निर्वाण को प्राप्त हो गई। भगवान ऋषभदेव ने अचानक उद्घोषणा की-"मरुदेवा भगवइ सिद्धा !"

भगवान ऋषभदेव ने अपनी प्रथम धर्म देशना में ही सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान एवं सम्यग्चारित्र रूप रत्नत्रय का विशद व्याख्यान दिया। मानव-जीवन का महत्त्व और कर्तव्य बोध पाकर सम्राट् भरत के ज्येष्ठ

देखो समवसरण का चित्र।

Illustrated Tirthankar Charitra

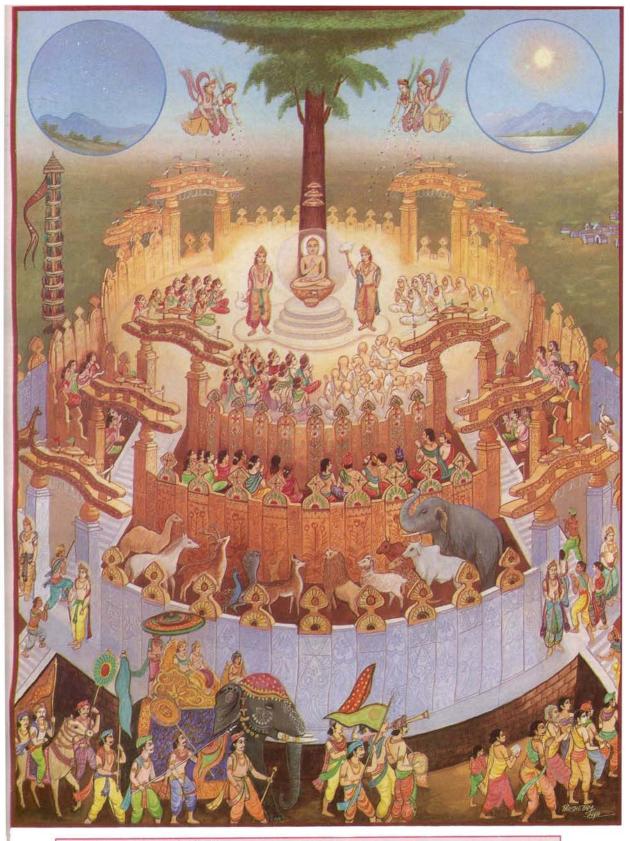
२८

सचित्र तीर्थंकर चरित्र

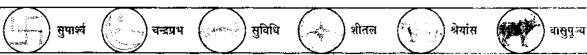
विमल







चित्र सं. ७ तीर्थंकरों की समवसरण-रचना : एक दृश्य Illustration 7 A birds evyview of the divine assembly (Samvasarana) of Tirthankars.



पुत्र ऋषभसेन आदि पाँच सौ पुत्रों व पीत्र आदि हजारों व्यक्तियों ने मुनि-दीक्षा ग्रहण की। हजारों व्यक्तियों ने श्रावक धर्म स्वीकार किया। युग की आदि में चार तीर्थ की स्थापना करके धर्म प्रवर्त्तन करने के कारण भगवान ऋषभदेव प्रथम तीर्थंकर/आदिनाथ कहलाये।

भगवान ऋषभदेव के प्रथम ज्येष्ठ शिष्य ऋषभसेन थे। ये ही प्रथम गणधर बने। जिनका दूसरा नाम पुण्डरीक भी प्रसिद्ध है।

मोक्ष

सुदीर्घ काल तक भगवान ऋषभदेव ने अहिंसा, सत्य आदि पंच महाब्रतरूप धर्म का उपदेश देकर लाखों प्राणियों को सद्बोध दिया। जब निर्वाण का समय नजदीक आया तो वे अष्टापद पर्वत पर पधारे। वहाँ भी उनके साथ हजारों मुनि थे। भगवान वहाँ एक शिलापट पर पद्मासन मुद्रा में स्थिर होकर शुक्ल ध्यान में लीन हो गये। छह दिन तक निराहार निर्जल रहकर परम समाधिभावपूर्वक समस्त कर्मों का क्षय करके निर्वाण पद प्राप्त किया।

सौधर्म स्वर्ग के अधिपति इन्द्र आदि असंख्य देवों तथा भरत चक्रवर्ती आदि मानवों ने मिलकर भगवान ऋपभदेव तथा अन्य मुनियों का निर्वाण महोत्सव किया।

1. BHAGAVAN RISHABHDEV, THE FIRST TIRTHANKAR

"He was the first king of this age and also the first ascetic. Who also was the first ford-maker (Tirthankar), my salutations to that Rishabh Swami."

—Acharya Hem Chandra

According to the Jain measurement of cosmic time one cycle of time has two divisions. These two divisions, ascending time-cycle and descending time-cycle, have six divisions each which are called Ara (spoke). During the ascending time-cycle there is a gradual improvement in physical and mental conditions, including physical strength, health, happiness and simplicity, of beings as well as climatic and life supporting conditions. During the descending time-cycle there is a gradual deterioration in these conditions.

The Age of Twins

During the first three Aras of the current descending cycle man was completely dependant on nature for all his needs. The wish-fulfilling trees provided all that he needed. Man was simple, peaceful and contented in attitude. The environment was absolutely unpolluted. Water was tasteful, cold, and sweet. Even the sand was sweet as sugar. The air was healthy and exhilerating. The

प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव

) Bhagavan Rishabhdev, The First Tirthankar

















ध्यज



₹

पद्म सरोवर

मभुद

विमान-भवन



रत्य साभ



निः रूप आंग्न

ऋषभ अजित मान्यव अभिनन्दन सम्भव पद्मप्रभ

grains and fruits were nutritious and filling. A simple meal of little quantity of fruit and water lasted for days. Filled stomach and satisfied desires acted as antidote to irritation and reduced disputes and other sinful activities. The whole animal kingdom lived in harmony with the nature.

With the passage of time gradual changes occurred and around the end of the third Ara the yield from the Kalpa-vrikshas reduced. The alround deterioration in conditions spelled the beginning of quarrels and disputes. To guard against these disputes and to live in peace and harmony, man formed groups and the Kulkar system was evolved. A number of people collected to form a 'Kula' (family) and the head of the group was called 'Kulkar'. It was the duty of the 'Kulkar' to remove discord and establish order.

Nabhiraja was the seventh and the last in the line of Kulkars. His wife was Marudeva. This epoch of Kulkar system was known as the epoch of twins (Yugalia). A human couple used to give birth to a twin—one male and one female. This twin would become husband and wife on reaching adulthood. The twins used to lead a happy and contented life and died a natural death together.

To consume what was available was the way of life. As such this period was also known as Bhog-Bhumi-Kaal or the era of free consumption. Upto the time of Kulkar Nabhiraja man lived in this land of abundance.

Birth of Rishabhdev

It was during the last part of the third Ara of the current descending cycle of time that the great and pious soul that was to become Rishabhdev descended into the womb of Marudeva on the fourth day of the dark half of the month of Ashadh during the night.

In the ancient Jain scriptures it is mentioned that during many previous births, the soul that was to be Rishabhdev had done prolonged spiritual practices. As a result of high degree of purity of thoughts and attitude as well as penance, meditation, charity and benevolent deeds it had earned highly pious Karmas.

In his incarnation as Dhanna, the caravan leader, he had offered alms and services to ascetics and others. As doctor Jivanand he had taken ample care of ailing masses as well as ascetics. As king Vajranabh he had supported poor and desolute masses. After many years of public service Vajranabh renounced the world and became an ascetic. As a result of unprecedented spiritual practices, including religious studies, penance, tolerance, and meditation, he earned Tirthankar-nam-and-gotra-karma. These pious deeds of earlier births resulted in his taking birth as Rishabhdev.

When this pieus soul was concieved, mother Marudeva dreamt of fourteen auspicious things. The first thing she saw in her dream was that a beautiful and

Illustrated Tirthankar Charitra

30)

सचित्र तीर्थंकर चरित्र

विमल

अनन्त













सिंह

वृषभ

लक्ष्मी

पुष्पमाला

चन्द

सुर्य



सुपार्श्व



चन्द्रप्रभ





शीतल





वासुपूज्य

large white bull was entering her mouth. The other things she saw in her dream are as follows-

- 2. A giant elephant having four tusks,
- 3. A lion.
- Goddess Laxmi seated on a lotus.
- 5. A garland of flowers,
- 6. The full moon resplendent in the sky,
- 7. The scintillating sun,
- 8. A fluttering flag.
- 9. A golden urn,
- 10. A pond full of lotus flowers,
- 11. A sea of milk.
- 12. A space vehicle of gods,
- 13. A heap of gems,
- 14. Smokeless fire. (R-1/a)

Nabhiraja was an experienced and scholarly person. When he heard about these dreams from Marudeva, he said, "Devi! You will give birth to a highly endowed soul who will show the path of peace and happiness to this world."

Birth Celebrations

On the eighth day of the dark half of the month of Chaitra, around midnight, healthy Marudeva gave birth to twins. This pious birth influenced the surroundings. The sky became filled with a soothing glow, the wind became fragrant and the whole atmosphere became impregnated with unprecedented joy that was hard to describe. 7

From all around came the fifty six goddesses of directions. They circumambulated the Tirthankar's mother and bowed before her. They also sang in praise of the child that was to become Tirthankar and then proceeded to perform post-birth cleaning rituals.]

At that instant the king of gods of the Saudharm dimension, Saudharmendra Shakra, also came to know that the first Tirthankar has taken birth. He arrived with his large ratinue of gods and, bowed before the mother,

"O great mother! I, Saudharmendra Shakra, bow before you and offer my salutations."

After the salutations the mother was put to sleep. Saudharmendra created five look alike bodies of himself. With one body he carefully lifted the baby in his hands. With the second body he took an umbrella in his hands and stationed the

प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव

(38) Bhagavan Rishabhdev, The First Tirthankar













ध्वजा









विभान-भवन



रत्न राशि





body behind the baby. With the third and fourth bodies he took whisks and stationed these bodies on both sides of the baby. With the fifth body he lifted his divine weapon, Vajra, and stationed himself ahead of the baby as a body guard. In this formation the king of gods airlifted the baby to Meru mountain. There, all gods, including their 64 kings with their consorts, ceremoniously performed the post-birth annointing rituals. This ceremony, popularly known as Janma-kalyanak, of a Tirthankar, is unparalleled in this world $\sqrt{(R-1/b)}$

Giving the Name

सिंह

वृष म

लक्ष्मी

पुष्पनाला

चन्द्र

सुयं

Next morning Nabhiraja organised the birth celebrations. He invited his friends and relatives to a feast and announced, "As there is a sign of a bull on the thigh of the new born, and Marudeva first of all saw a bull in her great dreams, we name this child as 'Rishabh Kumar'. His twin will be known as "Sumangala"

The Beginning of the Ikshvaku Clan

When Rishabh Kumar was one year old, Saudharmendra came to Kulkar Nabhi for formalizing the family name. He carried a sugar-cane in his hand. Baby Rishabh was sitting in his father's lap. When he saw the sugar-cane he eagerly extended his tiny hands to grab it. Saudharmendra gave the sugar-cane to the baby and seeing his affinity for sugar-cane (Ikshu) he formally named the family as Ikshvaku. (R-1/c)

Marriage

Rishabh Kumar was married to a girl named Sunanda whose twin died in an accident. This was the beginning of the marriage system. He was also married to his twin Sumangala in a ceremony that was arranged by gods. (R-1/d)

Prince Rishabh led a happy married life. In due course Sumangala gave birth to Bharat, Brahmi and ninety eight other sons. Sunanda gave birth to Bahubali and Sundari.

Evolution of Crafts and Trades

Prince Rishabh was a highly endowed, farsighted and industrious individual. He had a profound insight into the human psychology. Looking at the needs of the times and society he evolved numerous arts, crafts and trades and taught them to people with right aptitude and physical and mental capacities. To some he taught farming and to others the trade of agricultural produce. He invented the alphabets, language, and the numbers alongwith the tools for writing. For self defence he evolved martial arts and taught these to individuals with strong physique. He also established systems of social security and penal codes. Pottery, architecture, music, dance, and many other arts and crafts that enriched the

Illustrated Tirthankar Charitra

(37)

मचित्र तीर्थंकर चरित्र

विमल

























वासु

human society in the fields of knowledge, arts, entertainment, administration, etc. are said to be his contributions. (R-1/e)

Then one day, on the request of the people's representatives. Nabhiraja nominated Rishabh to become the first king of this age. He arranged for an elaborate coronation ceremony and handed over the reigns of the state to Rishabh Kumar. The ceremony was attended by all members of the family, large numbers of twins, and gods. The gods created a golden throne and annointed Rishabh with the water collected from various pilgrimage centres. They attired him in divine dress and ornaments and formally put the crown on his head. The twins humbly poured water on his feet from the cups made of lotus leaves. Rishabh became the first king of this era. The king of gods ordered Kuber, the god of wealth, to construct a suitable city. This beautiful city was named Vinita; later on it became popularly known as Ayodhya. (R-2)

Preaching the Path of Renunciation

For many years Rishabhdev continued to rule his people and open new frontiers of knowledge. During the reign of his father the population was organised into random groups only. Rishabhdev reorganised them according to their virtues, activities and professions. He established family groups like Ugrakul, Bhogkul, Rajanyakul and Kshatriyakul. He also framed social groups according to trades and professions, and broadly divided the society into three groups. Trading community was known as Vaishya, martial community was known as Kshtriya and all other people indulging in a variety of services were known as Shudra. Till his times the Brahman group was not formed.

After a long span of time (6.3 million Purva) he started loosing interest in mundane things and activities, and drifting toward detachment. He felt that he should transfer all his responsibilities to his sons and proceed towards liberation through spiritual practices. He also desired to reach the state of omniscience and consequently show the path of disciplined life and spiritual practices. His concept was that indulgence in mundane things does not give happiness. It gives only an illusion of happiness. True happiness is derived out of freedom from mundane indulgences.

Following the stream of his thoughts Rishabhdev divided the area of his rule between his one hundred sons. Bharat was given the state of Ayodhya and Bahubali that of Takshashila. Getting free of the responsibilities of the state, Rishabhdev decided to take Diksha (the formal initiation into the ascetic way). At that time the gods from the edge of the universe (the Lokantikdev) arrived and requested, "O savior of the human race! Your desire to show the path of renunciation to the mankind is admirable, kindly proceed soon to the task of propagating Dharma."

प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव

(३३) Bhagavan Rishabhdev, The First Tirthankar













महावीर

ध्वज



कुम्भ



पद्म सरोवर



समुद्र



विमान-भवन



रत्न राशि



निर्धूम अग्नि





After one year of meritorious charity, Rishabhdev sat in the palanquin named Sudarshan and arrived in the Siddharth-vana garden. It was the eighth day of the dark half of the month of Chaitra when, under an Ashok tree, Rishabhdev abandoned all his apparals and ornaments. He started pulling out his long strands of hair. After four fistfuls, when he was pulling out the fifth fistful of hair Indra said, "Sire! This strand of hair on the crown of your head and hanging down over your shoulders looks attractive. Kindly leave it as it is." Rishabhdev agreed. Due to this bunch of hair he got the popular name—Keshariya ji (one with hair). The king of gods collected the hair pulled out by Rishabhdev in a divine cloth and immersed them in the divine ocean of milk.

Following the example of Rishabhdev many of his subordinate rulers as well as common people got inspired to embrace the ascetic way of life. It is mentioned in scriptures that with Rishabhdev four thousand others also took Diksha. (R-3)

The First Charity

After becoming an ascetic, Rishabhdev took the vow of total silence and started wandering accompanied by other ascetics. When, after his penances, he went out to beg for food, he did not get anything to eat. The common people of that age were ignorant about the practice of giving food as alms. They did not even appreciate the need to do so. Whenever Rishabhdev approached them, they offered him respect and valuable gifts as they would to a king. Rishabhdev would then proceed ahead without accepting anything. As time passed the accompanying ascetics conferred among themselves and decided to eat fruits and vegetables naturally available. They slowly drifted away from Rishabhdev and the true ascetic way of life. After one entire year of wandering from place to place and doing harsh spiritual practices without touching any food or water Rishabhdev decided to beg food once again. He came to Hastinapur town.

Bahubali's son, Somprabh, was the king of Hastinapur. His son Shreyans Kumar saw a dream during the night that Suvarnagiri, the golden mountain, had turned black and he had brought back its golden hue by washing it with pitchers filled with milk. He narrated his dream to his father and friends, but no one could interpret its significance. (R-4/a)

Shreyans Kumar was sitting in the balcony of his palace and brooding over the dream he saw last night. All of a sudden he heard the noise caused by happy masses who had seen Rishabhdev entering the town. Thousands of citizens of Hastinapur rushed toward Rishabhdev with gifts. Rishabhdev did not even look at these things and continued his graceful walk in the direction of the palace.

When Shreyans saw approaching Rishabhdev, he rushed to welcome his great grandfather. After bowing at the great ascetics feet when Shreyans looked at

Illustrated Tirthankar Charitra

(88)

सचित्र तीर्थंकर चरित्र

विमल (१०००)

पृष्यमाला

चन्द्र

सूर्य











) গ













वासुपूज्य

Rishabhdev's face he could not shift his gaze. He went into a state of meditative thoughts and suddenly he acquired Jati-smaran Jnan, the knowledge that opens up memories of the past births. In his past birth Shreyans was the charioter of king Vajranabh (the past incarnation of Rishabhdev). This knowledge also made him aware of the duties of laity toward Shramans. He realized that Bhagavan Rishabhdev had been wandering around without food or water due to prevailing ignorance of the people regarding ascetic norms.

With due reverence he requested Rishabhdev, "Prabhu! I am honoured by your presence. I have just received 108 pitchers full of fresh sugar-cane juice that are pure and suitable for you in all respects. Kindly accept the juice and break your fast." Rishabhdev extended his cupped palms and Shreyans poured the sugar-cane juice from a pitcher. Rishabhdev broke his fast and the skies reverberated with the sound of divine drums and divine applaud, "Hail the alms giving!" The gods also showered gems, flowers and perfumes.

This was the begining of the tradition of religious charity and alms giving: In memory of this incident, the third day of the bright half of the month of Vaishakh is celebrated as Akshay Tritiya festival. The Jains specifically celebrate it as the breakfast day after the penance of Varshi Tap (one meal and fast on alternate days for one year). (R-4/b)

Omniscience and Nirvana

For one thousand years Bhagavan Rishabhdev continued his harsh spiritual practices completely ignoring his body and other mundane activities. On the eleventh day of the dark half of the month of Phalgun he was meditating under a banyan tree in the Shakatmukh garden outside Purimtal town, close to Ayodhya. Around forenoon he transcended to the purest higher state of meditation. The intensity of his practice caused the shedding of the knowledge and perception obscuring Karmas as well as the illusory Karmas. As a result, he attained omniscience, the purest and enlightened state of soul. Rishabhdev became a Jina.

When Rishabhdev attained omniscience the whole world was filled with a soothing glow for a moment. Numerous gods descended from heavens to pay their respects to the Tirthankar. They also created the Samavasaran, the divine pavilion. King Bharat also proceeded toward the divine assembly riding an elephant and taking along his grandmother Marudeva. Apprehensive about the hardships of the ascetic life of her son, Marudeva was relieved when she beheld the scintillating face of Rishabhdev sitting in the divine assembly surrounded by happy and dazzling gods. The vision of her son perched on the spiritual pinnacle triggered the flow of spontaneous joy in the heart of Marudeva. This mundane

प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव

34

Bhagavan Rishabhdev, The First Tirthankar

















महावीर

ध्वजा



कुम्भ

पदा सरोवर





विमान-भवन

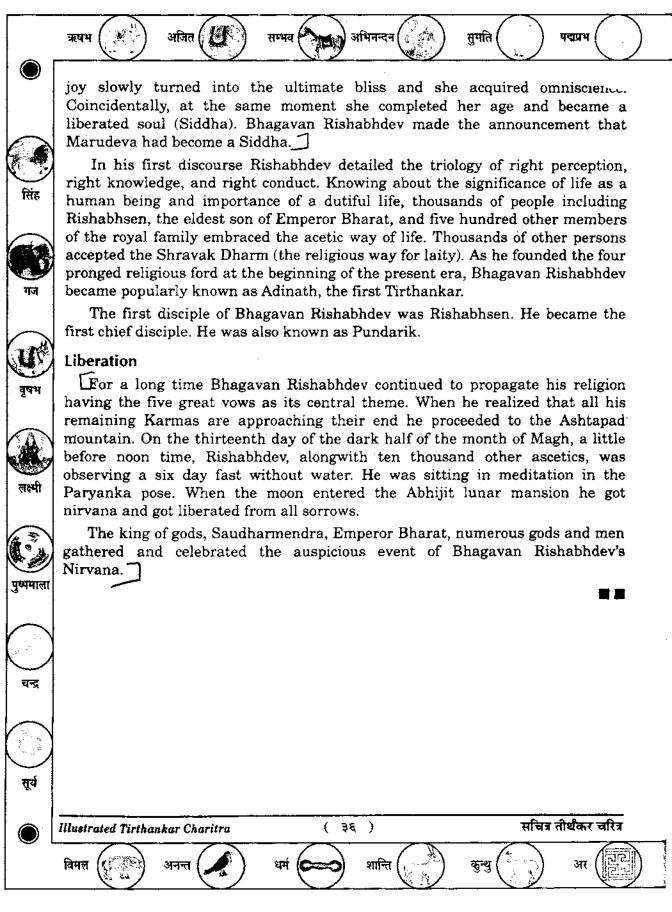


रत्न राशि





















वासुपूज्य

२. श्रशवान अजितनाथ

भगवान अजितनाथ का जीव पूर्व-भव में महाविदेह क्षेत्र में विमलवाहन नामक प्रतापी राजा था। एक मुनि के सत्संग-प्रभाव से राजा को भोग-विरक्ति हो गई और वे श्रमण बनकर उग्र तपश्चरण, ध्यान, गुरु-सेवा, संघ-सेवा आदि में तल्लीन रहने लगे। उसी भव में तीर्थंकर-नाम-कर्म का उपार्जन किया। आयुष्य पूर्णंकर स्वर्ग में गये। देव आयु पूर्णंकर विनीता (अयोध्या) नगरी के इक्ष्वाकुवंशीय जितशत्रु राजा की रानी विजयादेवी के गर्भ में आये। माता ने 3४ दिव्य स्वप्न देखे!

माता के गर्भ-प्रभाव से राजा जितशत्रु का पराक्रम-प्रभाव अद्वितीय रूप में बढ़ने लगा। दुर्दान्त शत्रु भी आकर उनके सामने झुकने लगे। लोग कहते—"राजा जितशत्रु तो आज संसार में अजेय योद्धा हैं। उन्हें कोई जीत नहीं सकता, वे अजित हैं।" (चित्र G-2/अ)

माघ शुक्ला अष्टमी की रात्रि में माता ने महान् पुण्यशाली पुत्र को जन्म दिया। पुत्र जन्मोत्सव के समय इसी प्रभाव को स्मरण कर राजा ने पुत्र का नाम-''अजितकुमार'' रखा।

राजा जितशत्रु के छोटे भाई सुमित्रविजय थे। उनकी पत्नी का नाम वैजयंती था। वैजयंती ने भी १४ स्वप्न देखे। कुछ समय बाद उन्हें भी पुत्र-लाभ हुआ। पुत्र का नाम रखा—''सगर''।

वृद्धावस्था आने पर राजा जितशत्रु ने अजितकुमार को राज्य-भार सौंपने का विचार किया। परन्तु अजितकुमार के हृदय में तो जन्म से ही विरक्ति थी। इसलिए उन्होंने राज्य-भार स्वीकार नहीं किया। तब "सगर" को राज्य सौंपा गया। युवावस्था में ही अजितकुमार ने संसार त्याग दिया और एकान्त जंगलों में ध्यान तप करने लगे। उनकी साधनां का प्रभाव जंगली पशुओं पर भी पड़ा। सिंह, गाय, हाथी, हिरण आदि पशु परस्पर वैर-भाव त्यागकर मुनि के पास आकर प्रेम से बैठ जाते, जीभ से उनके चरणों का स्पर्श कर अत्यन्त शान्ति और आनन्द का अनुभव करते। (चित्र G-2/ब)

दीक्षा के १२ वर्ष बाद भगवान अजितनाथ को सहस्राम्न वन में उच्च ध्यान-साधना करते हुए केवलज्ञान की प्राप्ति हुई। देवताओं ने समवसरण की रचना की। भगवान ने धर्मध्यान के विविध स्वरूपों पर हृदयस्पर्शी उपदेश दिया। जिसे सुनकर हजारों व्यक्तियों ने त्याग-मार्ग पर चरण बढ़ाये।

राजा सगर अपने पराक्रम से षट्खण्ड विजय कर चक्रवर्ती सम्राट् बने। सगर की हजारों रानियाँ थीं, जिनसे साठ हजार पुत्र उत्पन्न हुए।

चक्रवर्ती सगर के समय में ही मेघवाहन नाम का प्रतापी राजा हुआ। सगर चक्रवर्ती, राजा मेघवाहन तथा राक्षसद्वीप का विद्याधर भीम आदि भगवान का धर्म-उपदेश सुन रहे थे। भगवान की देशना से राक्षसाधिपति भीम को वैराग्य हो गया। भीम के कोई सन्तान नहीं थी। उसने वहीं पर राजा मेघवाहन को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त कर लंका तथा पाताल लंका नाम की नगरियों का राजा बना दिया। नौ बड़ी-बड़ी मणियों

भगवान अजितनाथ

(39)

Bhagavan Ajitnath



ल्ले (%











ध्वजा



कुम्भ



यद्य सरोवर



समुद्र



विमान-भवन

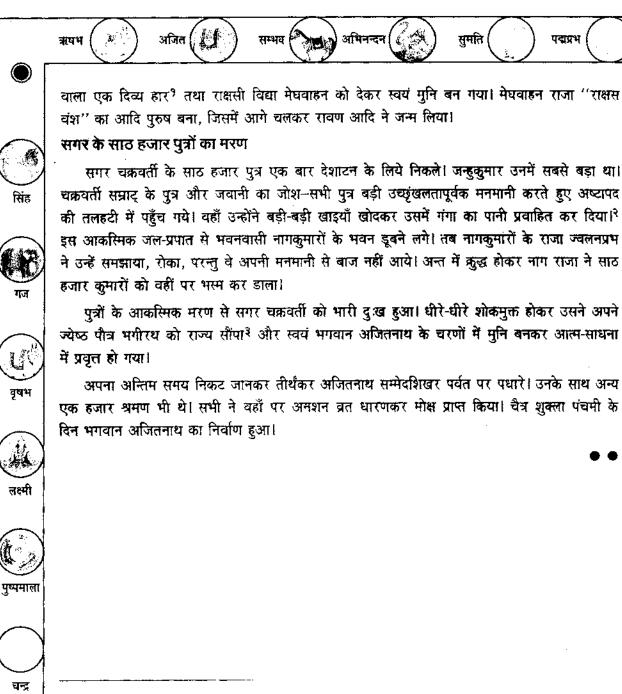


रत्न राशि



निर्धूम अप्नि





कहते हैं जब इन नौ मणियों का हार रावण पहनता था तो उसके नौ प्रतिबिम्ब दिखाई देते इस कारण उसका नाम 'दशमुख' (एक मुख वास्तविक, नौ प्रतिबिम्ब) या 'दशकन्धर' प्रसिद्ध हुआ।

Illustrated Tirthankar Charitra

(36)

सचित्र तीर्थंकर चरित्र



सूर्य





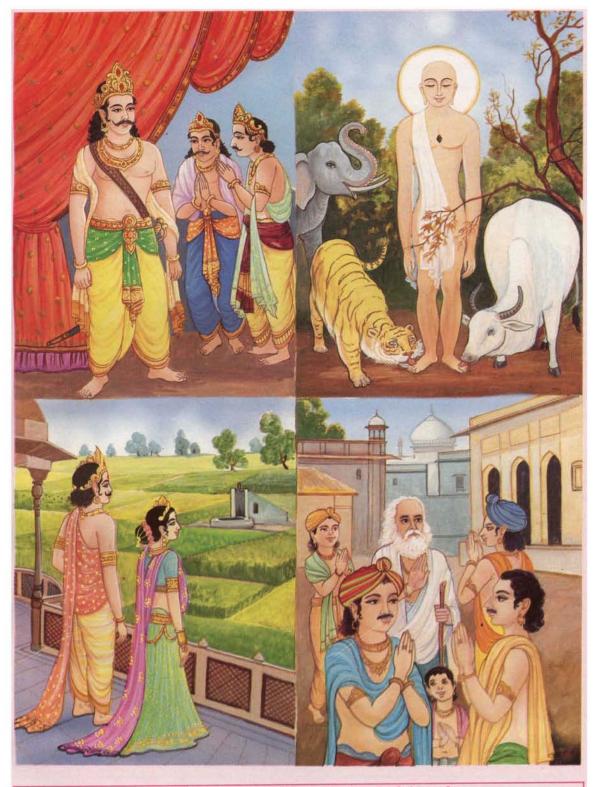






२. जैन ग्रंथों के अनुसार जन्हुकुमार द्वारा अध्यापद पर्वत तक गंगा का प्रवाह लाने के कारण गंगा को जान्हवी कहा जाता है।
(निषाध्यः)

जन्हु पुत्र भगीरथ ने अपने पिता तथा पितृव्य (चाचाओं) की अस्थियाँ उसी गंगा-प्रवाह में प्रवाहित कर दीं। भंगीरथ के अनुकरण पर आज भी पुत्र आदि संतानें अपने सम्बन्धियों की अस्थियाँ गंगा में प्रवाहित करती हैं।



G 2 (अ) राजा जितशत्रु दूसरों के समक्ष स्वयं को अजेय समझने लगे (व) अजितनाथ की ध्यान साधना (स) राजा जितारि एवं सेना देवी द्वारा नगरावलोकन (द) अयोध्या के प्रजाजन परस्पर अभिवादन करने लगे (a) King Jitashatru believing himself to be unconquerable (b) Ajitnath in meditation (c) King Jitari and Senadevi enjoying the view of the city (d) Citizens of Ayodhya greeting one another





चन्द्रप्रभ 🦨













The soul that became Bhagavan Ajitnath, in its earlier incarnation, was the great king Vimalvahan of Susima city in Mahavideh area. He led a pious life in spite of the available princely grandeur. At an appropriate time, he became an ascetic under Arindam Suri. Meditating about the omniscient and liberated souls and indulging in harsh penance, he purified his soul to a level where he could earn the Tirthankar-nam-and-gotra-karma. Completing his age, he reincarnated as a god in the Vijaya-anuttar-dimension.

After completing his age in the dimension of gods, he descended into the womb of queen Vijaya Devi, wife of king Jitshatru of Vinita town. Queen Vijaya Devi saw fourteen auspicious dreams. Vaijayanti, the wife of king Jitshatru's younger brother, Sumitra, also saw the same fourteen dreams. This was a queer coincidence. When the augers were consulted they informed that Vijaya Devi will give birth to a Tirthankar and Vaijayanti to a Chakravarti (monarch of six continents).

During the period of the queen's pregnancy, the influence of king Jitshatru enhanced to an extant that even the enemy kingdoms sought and negotiated friendly treaties with him. It became a common practice to say, "King Jitshatru is invincible (Ajit)." (G-2/a)

The queen gave birth to a son on the eighth day of the bright half of the month of Magif. Inspired by the popular lore, the king named the new born as Ajit. The same night Vaijayanti also gave birth to a son who was named Sagar. When both the princes came of age they were married. Time passed with profusion of happiness.

When king Jitshatru became old and wanted to devote the last part his life to spiritual pursuit, he called his younger brother and asked him to take over the throne. Sumitra had no desire for the kingdom, he too wanted to become an ascetic. Both the princes were called and offered the kingdom. Ajit Kumai was a naturally detached person since childhood, and so he too declined. At last prince Sagar ascended the throne.

Ajit Kumar became an ascetic in his youth and went into remote and dense forests for his meditation and penance. His personality and the intensity of his lofty practices cast a pacifying influence all around Natural enemies in the animal kingdom, like lion and cow, wolf and deer, snake and mongoose used to come and sit around him peacefully. (G-2/b)

भगवांन अजितनाथ

(38)

Bhagavan Ajitnatn

















महावीर















समुद्र



विमान-भवन

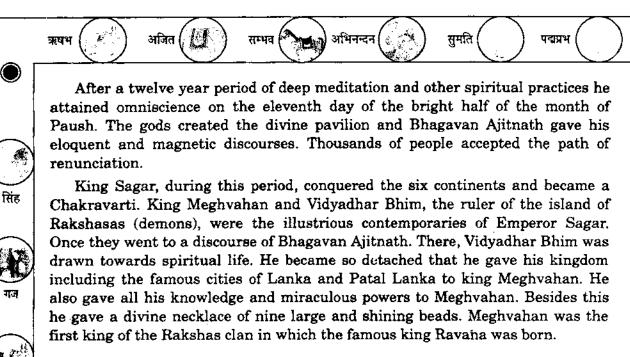










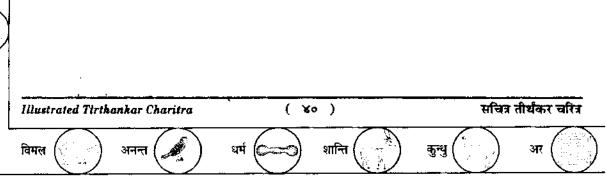


Death of Sagar's Sixty Thousand Sons

Emperor Sagar had thousands of queens and sixty thousand sons. Eldest among them was Janhu Kumar. Once all the princes went for an outing. When they arrived at the base of Ashtapad hills, they dug up large ditches and canals. In their youthful abandon they flooded these canals with the water of river Ganges. This flash flood inundated the houses and villages of the lower gods known as Nag Kumars. The king of these gods, Jwalanprabh came and tried to stop them in vain. The unruly princes were intoxicated with their regal power. At last Jwalanprabh lost his temper and turned all the sixty thousand princes to ashes.

This sudden death of all his sons was a traumatic experience for Emperor Sagar. He handed over the empire to his eldest grandson, Bhagirath, and took Diksha from Bhagavan Ajitnath.

When his last moments were approaching, Bhagavan Ajitnath went to Sammetshikhar. With one thousand other ascetics, he commenced his final meditation. He attained Nirvana on the fifth day of the bright half of the month of Chaitra.





વૃષમ



लक्ष्मी



पुष्पमाला

चन्द्र

_

सूर्य



३. भ्रावान सभवनाथ

भगवान अजितनाथ के निर्याण के बहुत समय बाद की घटना है। महाविदेह के ऐरावत क्षेत्र में क्षेमपुरी का राजा था-विपुलवाहन। वह नीति, न्याय एवं करुणा की साक्षात् मूर्ति था। प्रजा को दुःखी देखकर उसका हृदय वर्फ की तरह पिघल जाता था। एक बार राज्य में भयंकर दुष्काल पड़ा। बूँद-बूँद पानी के लिए उनता तरस रही थी। अपनी प्रजा को, स्वधर्मी भाइयों और साधु-संतों को भुख-प्यास से बेहाल देखकर राजा का मन पीड़ा से तड़प उठता था। उसने राज्य के धान्य भंड़ार प्रजा के लिए ख़ुले कर दिये तथा अपने रसोइयों को आदेश दिया-"मेरी रसोई में कोई भी भूखा-प्यासा व्यक्ति, स्वधर्मी भाई या साधु-महात्मा आवे तो पहले उन्हें आहार-दान दिया जाये, अगर बचेगा तो मैं अपनी क्षुधा मिटा लूँगा, अन्यथा उनकी सेवा के सन्तोष से ही मेरी आत्मा सन्तुष्ट रहेगी।" पूरे दुष्काल के समय अनेक बार राजा भूखे पेट सोता, प्यासे कंठों से ही प्रभू की प्रार्थना करता।

इस प्रकार की उत्कृष्ट सेवा एवं दान-भावना के कारण राजा विपुलवाहन ने तीर्यंकर-नाम-कर्म का उपार्जन किया। कालान्तर में वर्षा हुई। दुष्काल मिटा। राजा, प्रजा सुखी हो गए। किन्तु प्रकृति की यह क्रूर लीला देखकर राजा के मन में संसार से विरक्ति हो गई और पुत्र को राज्य सींपकर वह मुनि बन गये।

मृनि विपुलवाहन का जीव स्वर्ग में गया। वहाँ से च्यवकर श्रावस्ती नगरी के राजा जितारि की रानी सेनादेवी के गर्भ में अवतरित हुआ।

पण्यशाली पुत्र के गर्भ-प्रभाव से सम्पूर्ण राज्य में खुब वर्षा हुई। धन-धान्य की भरपूर फसल हुई। एक बार राजा-रानी महल की छत पर खड़े होकर दूर-दूर के हरे-भरे खेतों को देखने लगे। राजा ने कहा-''महारानी ! इस बार उपजाऊ खेतों में तो क्या. बंजर भूमि में भी देखो, कितनी अच्छी फसल हुई है। ऐसा लगता है हमारी आने वाली संतान का ही यह पूण्य-प्रभाव है जो असंभव भी संभव हो रहा है। हम अपने पुत्र का 'संभव' नाम रखेंगे।" (चित्र G-2/स)

मार्गशीर्ष शुक्ला १४ को पुत्र का जन्म हुआ। जन्मोत्सव के समय राजा ने उसी घटना की चर्चा करते हुए पुत्र का नाम 'संभवक्मार' रखा।

पिता के उत्तराधिकारी के रूप में संभवकुनार का राज्यामिषेक हुआ। कुछ ही समय बाद उन्होंने अपने पुत्र को राज्य सींप दिया और संसार का त्यागकर अणगार व्रत स्वीकार कर लिया। १४ वर्ष तक छदास्य रहने के पश्चात भगवान को केवलज्ञान उत्पन्न हुआ। भगवान की प्रथम धर्म देशना अनित्य भावना पर हुई। लगभग एक लाख पूर्व तक तीर्थंकर रूप में विचरण कर अन्त में सम्मेदशिखर पर निर्वाण प्राप्त किया।

भगवान संभवनाथ

(88)

Bhagavan Sambhavnath

















वासुपूज्य

ध्वजा











विमान-भवन



राशि











3. BHAGAVAN SAMBHAVNATH

A long time after the Nirvana of Bhagavan Ajitnath, the city of Kshempuri in the Airavat area of Mahavideh was ruled by king Vipulvahan. He was a soft hearted and compassionate ruler who loved and cared for his subjects. Once, when there was a devastating draught and the population was deprived even of a few drops of water, the king opened his grain yards for the public, his kitchen for the monks and ascetics and his treasury for the import of food grains. He instructed the caretaker of his personal kitchen that the doors of his kitchen should be open to all and sundry. All guests should be given priority over his ownself. Whatever little is left should be served to him. If nothing is left he would be contented with the pieasure of serving his guests. During the drought there were many occasions when the king remained unfed and thirsty.

As a result of this sublime feeling of compassion, Vipulvahan acquired a unique purity of soul and earned the Tirthankar-nam-and-gotra-karma. Although, after the drought normalcy returned, the torture of the living world by the nature left a mark on Vipulvahan's psyche. One day while he was standing on the roof top he witnessed dense rain clouds being scattered by wind. A feeling of intense detachment grew in him. He handed over his kingdom to his son and took Diksha from Svayamprabh Suri. After completing his age he reincarnated in the Anat dimension of gods.

From the Anat dimension, the being that was Vipulvahan descended into the womb of queen Sena Devi, wife of king Jitari of Shravasti. While this being was still in the mother's womb there were sufficient rains and abundant crop. One day when the king and queen were happily watching the lush green vegetation all around, from their roof top, the king said, "My dear! This time even the waste-land is filled with grain crop. It seems that all this that is impossible, has been made possible (Sambhav) due to the auspicious influence of the pious soul you carry in your womb. We shall call our son-Sambhav." (G-2/c)

On the fourteenth day of the bright half of the month of Margshirsh, the queen gave birth to a healthy son and he was ceremoniously named Sambhav Kumar. The little prince grew up in royal comfort but he hardly ever took more than cursory interest in the luxurious life style. At the appropriate age Sambhav Kumar was married and coronated. After a long and peaceful reign he became an ascetic on the fifteenth day of the bright half of the month of Margshirsh. After a fourteen year period of spiritual practices, he attained omniscience. Arhat Sambhavnath gave his first discourse on the emphemeral nature of the mundane existence. For a long period he worked for the spread of religion. He got Nirvana on the fifth day of the bright half of the month of Chaitra.

Illustrated Tirthankar Charitra

४२)

सचित्र तीर्थंकर चरित्र

विमल













चन्द्र

सिंह

गज

वृषभ

लक्ष्मी

पृथ्यमाला

सुर्य

अन्नन्त















वासुपूज्य

४. भ्रशयान अभ्रिनन्दन

मंगलावती नगरी के महाबल राजा, राजा होकर भी बहुत ही सीधे और विनन्न वृत्ति के थे। लोग उनका आदर और प्रशंसा करते तो वे सोचते, मुझमें ऐसी कोई भी योग्यता नहीं है, न कोई विशेषता है, फिर ये मेरी प्रशंसा क्यों करते हैं? यदि कोई निन्दा करता तो वे बड़ी सरलता के साथ कहते—"आप बहुत हितैषी और सच्चे हैं, सो मुझमें रहे दुर्गुणों को प्रकट कर मुझे निर्दोष होने में सहायता करते हैं।" इस प्रकार की गहरी सरलता और उत्कृष्ट विनम्रता के कारण, संयम लेने पर वे समस्त मुनि-संघ में एक आदर्श बन गये। कहा गया है—इस उत्कृष्ट विनम्रता और सरलता के कारण उनकी आत्मा इतनी पवित्र हो गई कि उसी भव में उन्होंने तीर्थंकर-नाम-कर्म का उपार्जन कर लिया।

महाबल मुनि शरीर त्यागकर विजय नामक अनुत्तर विमान में देव बने। देव आयुष्य पूर्णकर अयोध्या के राजा संवर की रानी सिद्धार्था के गर्भ में अवतरित हुए। माता ने १४ स्वप्न देखे। पूर्व-जन्म के विनय एवं सद्मावों/संस्कारों के कारण उनके गर्भ में आते ही माता-पिता आदि समस्त राज-परिवार में विनय के, एक-दूसरे का सम्मान, वन्दन/अभिनन्दन करने के भाव स्वतः स्फुरित होने लगे। अयोध्या नयरवासी जनता में एक सहज वातावरण बन गया। बूढ़े, युवक, बालक सभी परस्पर एक-दूसरे का स्वामाविक अभिवादन/वन्दन करते और एक-दूसरे के सद्गुणों का अभिनन्दन। विद्वान् ज्योतिषियों से पूछने पर उन्होंने बताया—"यह सब रानी के गर्भ में पलने वाले महापुरुष का ही प्रभाव है। एक भाग्यशाली व्यक्ति के पुण्य परमाणुओं से लाखों लोगों के मन प्रभावित हो जाते हैं।"

माघ शुक्ला द्वितीया को पुत्र का जन्म हुआ। जन्मोत्सव पर राजा ने प्रजा को बताया—''इस पुत्र के गर्भ-प्रभाव से समूचे राज्य में अभिनन्दन (आनन्द एवं अभिवादन) की प्रवित्त की सहज रूप में वृद्धि हुई इसिलए इस पुत्र का नाम अभिनन्दन रखते हैं।'' (चित्र G-2/द)

युवा होने पर राज्यामिषेक हुआ। फिर वैराग्य होने पर संसार त्यागकर दीक्षा ली। कैवल्य प्राप्त हुआ। फिर सुदीर्घ काल तक धर्म प्रचार करके लाखों जीवों को धर्म का प्रतिबोध दिया। अन्त में वैशाख शुक्ला ८ े सम्मेदिशखर पर एक मास के अनशन के पश्चात् शरीर त्यागकर निर्वाण पद को प्राप्त हुए।



ध्वजा



कुम्भ

्र पद्म सरोवर



समुद्र



विमान-भवन



स्त्न राशि



निर्धूम अग्नि

भगवान अभिनन्दन

(88)

Bhagavan Abhinandan







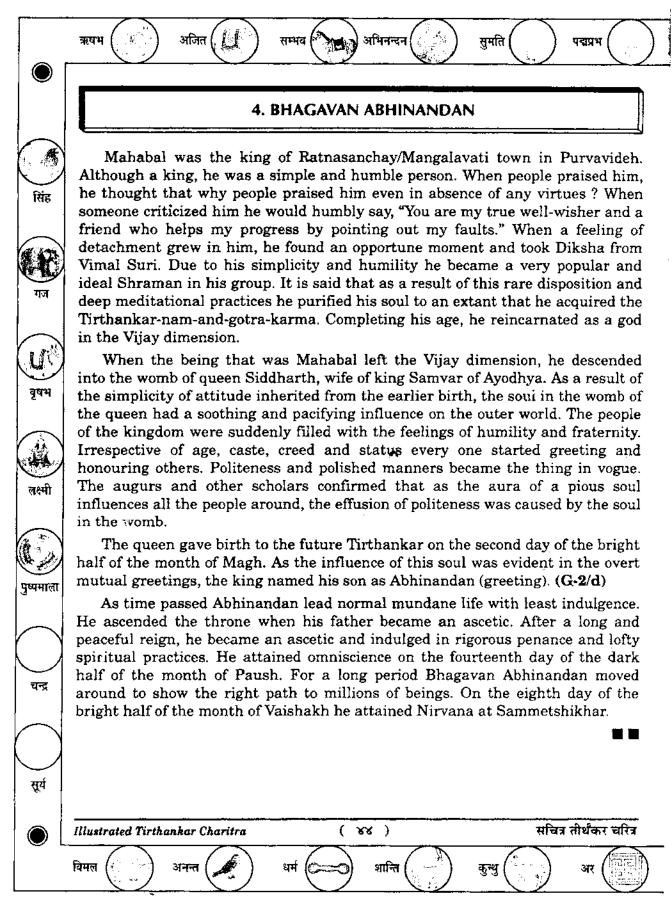






पार्श्व

















५. श्रशवान शुम्रतिनाथ

विनीता नगरी के मेघरथ राजा की पत्नी का नाम था-सुमंगलादेवी। वैजयन्त विमान से व्यवकर एक अनन्त पुण्यशाली प्राणी ने माता के गर्भ में प्रवेश किया तो समूचे नगर में स्वाभाविक आनन्द/उल्लास का वातावरण छा गया।

एक दिन राजा की सभा में दो स्त्रियाँ एक छोटे बच्चे को लेकर न्याय माँगने आई। उन्होंने कहा-''हम एक धनाइय समुद्र व्यापारी (सार्थवाह) की पिलयाँ हैं। हमारा पित एक पुत्र तथा हम दोनों को छोड़कर स्वर्गवासी हो गया है। यह पुत्र मेरा है, परन्तु दूसरी कहती है-मेरा है। क्योंकि वह सोचती है, पुत्र के साथ पति के धन की स्वामिनी भी मैं बन जाऊँगी। इसलिए अब आप मुझे न्याय दिलाइए और मेरा पुत्र भी ! मेरी रक्षा करो महाराज

दूसरी ने भी उसी लहजे में बात कही। दोनों एक-दूसरी पर आरोप-प्रत्यारोप लगा रही थीं और स्वयं को ही बालक की सच्ची माँ बताती थीं। बालक बहुत छोटा था, बोल नहीं पाता था और बचपन से ही दोनों का समान प्यार मिला इसलिए उसकी असली माँ कौन है. वह भी पहचान नहीं पाता था।

राजा के सामने बड़ी उलझन थी। न्याय करते-करते, निर्दोष के साथ अन्याय नहीं हो जाये, इसी बात का डर था। राजा, मंत्री आदि सभी इस विचित्र विवाद पर उलझन में थे। संध्या हो गई। राजा के भोजन में भी विलम्ब हो रहा था, परन्तु कुछ भी निर्णय नहीं हो सका तो विवाद को दूसरे दिन के लिए टालकर राजा भोजन के लिए महलों में चले गये।

महारानी सुमंगला ने पूछा-"महाराज ! आज संध्या हो गई, भोजन में इतना विलम्ब हो गया, ऐसी क्या समस्या आ पड़ी थीं

राजा ने दोनों स्त्रियों का विवाद बताकर कहा-''किसी को कुछ भी समझ नहीं आ रहा है कि इन दोनों में सच्ची माँ कौन है, झूठी कौन है?"

महारानी ने हँसकर कहा-"महाराज ! स्त्रियों का विवाद तो हम स्त्रियों को ही निपटाने दीजिए न? यह काम मुझे सौंप दीजिए, मैं सही निर्णय कर दूँगी """।"

दूसरे दिन राजसभा में स्वयं महारानी पधारीं। दोनों महिलाएँ उनके सामने उपस्थित हुई। दोनों की बोल-चाल, भाव-भंगिमा इतनी सहज एवं एक समान थी, कि रानी भी उनका झूठ नहीं पकड़ सकीं। सहसा रानी ने कहा--''माँ दो हैं और बालक एक है। बालक का बँटवारा हो नहीं सकता। हमारी होने वाली सन्तान भव्यात्मा है। जब उसका जन्म हो जायेगा, तब हम उन्हीं से पूछकर तुम्हारे विवाद का निर्णय करेंगी, तब तक यह बालक राजकीय संरक्षण में रहेगा। इसके पिता की संपत्ति भी राजकीय संरक्षण में रहेगी। उस समय तक तुम दोनों प्रतीक्षा करो।"

नकली माँ ने रानी की शर्त स्वीकार ली। किन्तु असली माँ फफक-फफककर रोने लगी--"नहीं ! नहीं ! मेरे पुत्र से मुझे विलग मत करो। इतने समय तक मैं अपने पुत्र का मुँह देखे बिना नहीं जी सकूँगी। भले ही

भगवात सुमतिनाथ



Bhagavan Sumatinath



मल्लि



भुनिसुव्रत









ध्वजा



कुम्भ







विमान-भवन

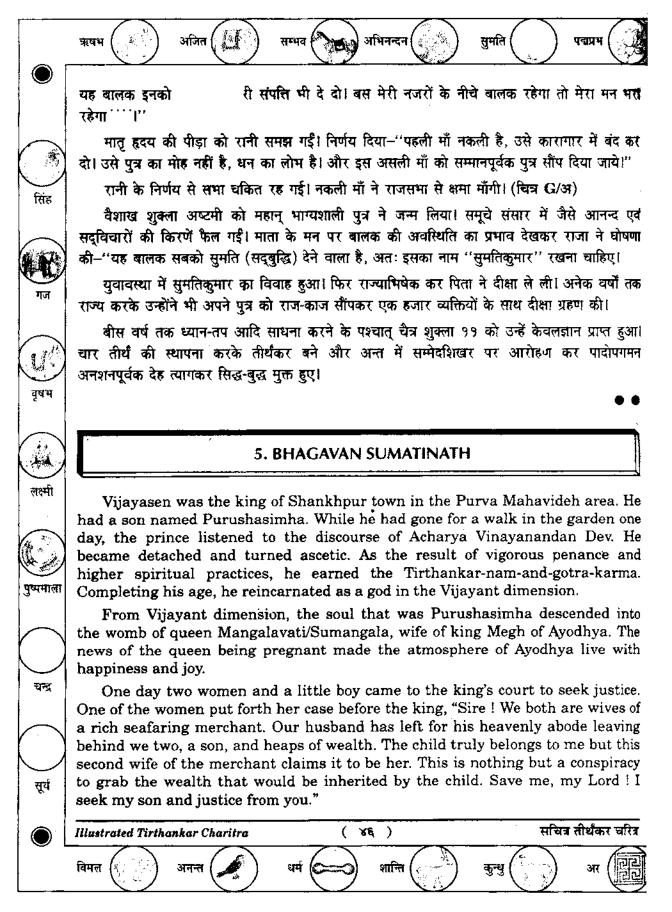


राशि



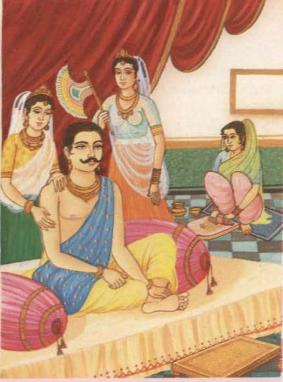
निर्धम अग्नि











G (अ) महारानी मंगलावती का न्याय (व) महारानी सुसीमा का पद्म शैय्या पर सोने का दोहद (स) महाराज दृढरथ के शरीर के ताप को महारानी के स्पर्श से शान्ति
(a) The justice of queen Mangalavati (b) Queen Susima's desire to sleep on lotus bed (c) The releif to king Dridharath by touch of his queen.





्राह्म ्री) सुविधि



शीतल (६३३) श्रेयांस



वासुपूज्य

The story narrated by the other woman was also the same. Shouting charges and counter charges at each other, both the women claimed the possession of the child. The child could not indicate his true mother as he had got equal affection from both. As the boy was born in some remote place, there was no eye witness available.

The king was in a quandry. Even after a lot of probing and weighing the available evidence he could not solve the problem. Any ill concieved solution could end up in doing injustice to the innocent. The king and his ministers all were in a fix. The night was approaching and the king was getting late for his dinner. He adjourned the case and went into the palace for dinner.

The queen asked, "Today you are late for the dinner, your highness. What is the matter? Was there some complex problem?"

The king narrated the case of the two women and their child and said, "No one is able to say firmly, which one of the women is the real mother of the child and which one is the pretender?"

The queen said with a smile, "Your Highness, let a woman solve the problems of women. Send the case to me and allow me to resolve the issue."

Next morning the queen herself came to the kings court. Both the women and their son were produced before the queen. There was no apparent indication in the behaviour and disposition of the two women that could give any indication of the genuineness of one. All of a sudden, the queen got an inspiration and she said, "This enigma has no simple solution. There is one object and two claimants. The object, being a live person, cannot be split into two. Under the circumstances the only solution I can think of is to keep the matter pending. I carry a pious soul in my womb. Let us wait till it is born and is ready to resolve this issue. During this period of waiting, let the son and the property of the deceased be taken into the custody of the state. Till then the claimants may wait."

Hearing all this one of the claimants readily accepted the arrangement but the other started weeping. In choked voice she said, "No! Please don't separate me from my son. I will not be able to survive without my son for such a long period, I withdraw my claim. Let the other woman take the child as well as all the property of my husband. My only submission is that I may be allowed to at least meet the child. I will be contented with that only."

The queen recognised the pain and concern of a mother's heart. She gave her judgement, "The woman who immediately agreed to my proposal is the imposter. Her attachment is not to the child but to the wealth. She may be imprisoned. The one who wants to surrender her claim is the real mother. The child and the wealth may be given to her with all honour."

भगवान सुमतिनाथ

(४७)

Bhagavan Sumatinath















महावीर







कुम्भ







विमान-भवन

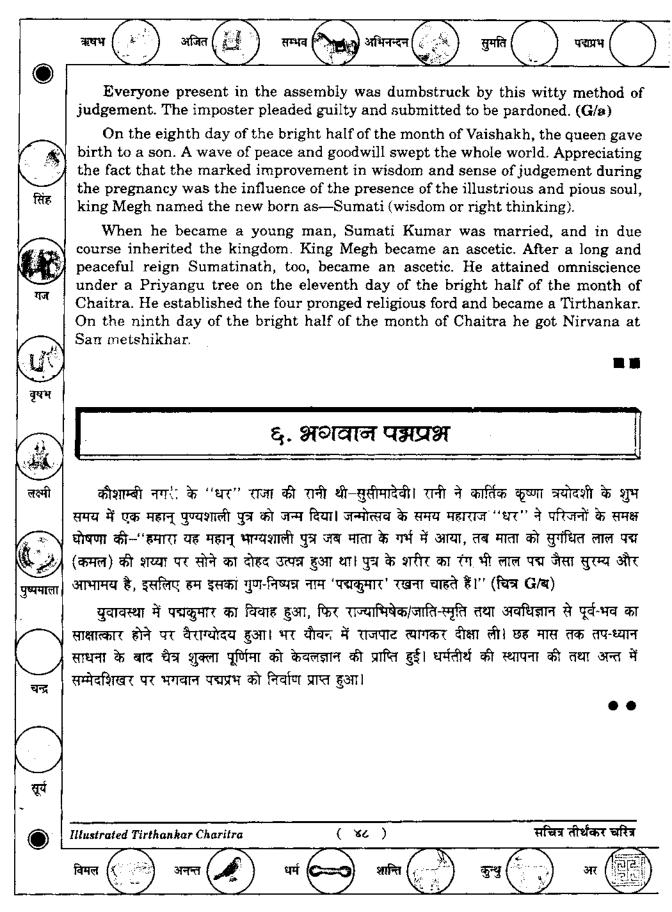


रत रत राशि



अस्नि









चन्द्रप्रभ











वासुपूज्य



Maharaj Aparajit ruled over Susima town in the Purvavideh area. He was a simple and religious person. He got detached after listening to the discourse of an Arhat and took Diksha from Acharya Pihitashrava. As a result of long spiritual practices he earned Tirthankar-nam-and-gotra-karma. Completing his age, he reincarnated as a god in the Graiveyak dimension.

From the dimension of gods, the being that was Aparajit descended into the womb of queen Susima, wife of the king of Kaushambi. One day queen Susima had a desire to sleep on a bed made up of lotus flowers. As this was a desire of a pregnant mother, the gods made arrangements for its fulfilment. On the twelfth day of the dark half of the month of Kartik the queen gave birth to a son. The new born had a soft pink glow like lotus flowers. The king named him as Padmaprabh (G/b).

In due course the prince became young and was married. When his father left for spiritual practices, Padmaprabh ascended the throne. After a long and successful reign, when through his three fold knowledge he knew that the right moment has come, he became an ascetic. After six months of deep spiritual practices, on the full moon day of the month of Chaitra he attained omniscience under a banyan tree. Propagating right religion for a long time, Bhagavan Padmaprabh wandered around and at last arrived at Sammetshikhar. He got Nirvana on the eleventh day of the dark half of the month of Margshirsh.

७. भ्रगवान सुपार्श्वनाथ

वाराणसी के प्रतिप्ठसेन राजा की रानी पृथ्वी के पुत्र सुपार्श्व थे। युवावस्था में विवाह के पश्चात् इन्होंने पिता के राज्य का कुशलतापूर्वक संचालन किया। एक बार महल की छत पर बैठकर प्राकृतिक सीन्दर्य देख रहे थे। मुझीये हुए फूलों व वदलती ऋतु को देखकर जीवन की अस्थिरता का चिन्तन जगा। संवेग भावना से जीवन विशा बदल गई। सुपार्श्व ने अपने पुत्र को राज्य सींपकर दीक्षा ग्रहण कर ली। नौ मास तक निर्मल संयम-साधना करने के पश्चात् फाल्गुन कृष्णा षष्ठी को केवलज्ञान, केवलदर्शन की प्राप्ति हुई। धर्मतीर्थ की स्थापना करने के पश्चात् आपने सम्मेदिशिखर पर निर्वाण प्राप्त किया।

भगवान सुपार्श्वनाथ

(88)

Bhagavan Suparshvanath



मल्लि













महावीर

ध्वज



कुम्भ

पदा सरोवर

समुद्र



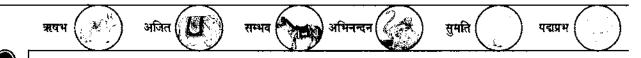
विमान-भवन



स्त संशि







7. BHAGAVAN SUPARSHVANATH

The being that was to be Suparshvanath had done harsh penance and deep spiritual practices in his earlier birth as king Nandisen of Kshetrapuri. He then reincarnated as a god in the sixth Graiveyak dimension.

From the dimension of gods this soul descended into the womb of queen Prithvi Devi, wife of king Pratishthasen of Varanasi. During her pregnancy the queen did not loose her normal shapely figure, as generally happens. As her flanks still remained attractive, the child, when born, was named Suparshva.

When Suparshva became young he was married and later ascended the throne. He ably conducted the affairs of the state and looked after the well being of his people. One day while he was enjoying the nature sitting at the roof top, he observed the falling of leaves and wilting of flowers. Suddenly he became aware of the transient nature of life. This gave a rise to the feeling of detachment and desire for spiritual upliftment. He gave his kingdom to his son and became an ascetic. After nine months of disciplined practices he became an omniscient on the sixth day of the dark half of the month of Phalgun. For a long period he worked for the spread of right knowledge. He got liberated on the seventh day of the bright half of the month of Phalgun at Sammetshikhar.

८. भगवान चन्द्रप्रभ

चन्द्रानना नगरी के स्वामी महासेन राजा की रानी थी-लक्ष्मणा। वैजयंत विमान में ज्यवकर एक महानु आत्मा ने रानी के गर्भ में प्रवेश किया। रानी ने १४ शुभ स्वप्न देखे। स्वप्न फल जानकर सर्वत्र वह चर्चा होने लगी-"महारानी की होने वाली संतान महानु भांग्यशाली चक्रवर्ती या तीर्थंकर होगी।" एक रात रानी चाँदनी रात में आकाश में चमकते चन्द्र को देख रही थीं कि उनके मन में एक विचित्र दोहद (इच्छा) उत्पन्न हुआ कि क्यों न मैं इस चन्द्रमण्डल की आभा को ही पी जाऊँ। राजा ने बड़ी बुद्धिमानी से रानी के विचित्र दोहद की पर्ति की।

पौष कृष्णा १३ को पुत्र का जन्म हुआ तब देखा कि पुत्र का वर्ण चन्द्रमा की भाँति एकदम उज्ज्वल शुभ्र छवि लिये हुए है। चन्द्र-पान का दोहद और चन्द्र जैसी शरीर प्रभा देखकर राजा ने पुत्र का नाम ''चन्द्रप्रभ'' रखा।

Illustrated Tirthankar Charitra

(40)

सचित्र तीर्थंकर चरित्र













सुर्य

चन्द्र

पुष्पमाला

विमल









त (भिक्रा) श्रेर



वासुपूज्य

यौवन वय में ही राजपाट त्यागकर महाराज चन्द्रप्रभ ने दीक्षा ग्रहण की। तीन महीने की अल्पकालीन साधना के पश्चात् आपको केवलज्ञान की प्राप्ति हुई। फाल्गुन कृष्णा सप्तमी को धर्मतीर्थ की स्थापना की। सुदीर्घ समय तक संसार में धर्म का प्रकाश फैलाते हुए अंत में सम्मेदशिखर के पवित्र स्थान पर अनशनपूर्वक शरीर त्यागकर निर्वाण को प्राप्त हुए।

8. BHAGAVAN CHANDRAPRABH

In his birth as king Padma of Mangalavati town of Dhatkikhand, the being that was to become Bhagavan Chandraprabh earned Tirthankar-nam-and-gotra-karma. Spending a life time as a god in Anuttar Vijay dimension he descended into the womb of queen Lakshmana, wife of king Mahasen of Chandranana town.

During her pregnancy, one day the queen was looking at the splendorous and glowing full-moon. All of a sudden she had a strange desire to drink the glowing streak of moon light. The king cleverly managed to satisfy this strange desire of a pregnant mother.

On the thirteenth day of the dark half of the month of Paush the queen gave birth to a healthy son who was fair and glowing like the moon. He was named Chandraprabh (glow of the moon).

Chandraprabh was apathetic towards the mundane pleasures and princely grandeur. After he ascended the throne his reign was short lived. He became an ascetic in the prime of his youth and just after three months of acute spiritual practices he became an omniscient. For a considerably long period he continued to enlighten the people and propagate the true religion. When his end approached he went to Sammetshikhar and after a month long fast and meditation got liberated.

९. भ्रगवान शुविधिनाथ

भगवान ऋषभदेव ने जिस धर्मतीर्थ का प्रवर्तन किया उसी धर्मतीर्थ परम्परा में समय-समय पर चतुर्विध धर्मतीर्थ की स्थापना कर संसार को धर्मोपदेश देने वाले नीवें तीर्थंकर हुए भगवान सुविधिनाथ। आपका जन्म काकंदी नगरी के सुग्रीव राजा की महारानी रामा की कुक्षि से हुआ। गर्भ-प्रभाव से महारानी की बुद्धि का ऐसा विकास हुआ कि कठिन से कठिन और असंभव प्रतीत होने वाले काम करने की विधि (तरकीब) महारानी

भगवान स्विधिनाथ

(48)

Bhagavan Suvidhinath



मल्लि













महावीर

ध्वजा



कुम्भ

पद्य

सरोवर

समुद्र



विमान-भवन



रत्न राशि



निर्धूम अग्नि



पदाप्रभ

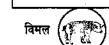








सूर्य



सहज ही बता देतीं। इस आश्चर्यजनक बौद्धिक विकास को देखकर सभी चिकत थे। पुत्र-जन्म के उत्सव के समय राजा सुग्रीय ने. इसी-आधार पर घोषणा की--"हर कार्य की कुशल विधि बताने की निपुणता के कारण हम महारानी के अंगजात का नाम 'सुविधि' रखना चाहते हैं।'' इसके कुछ समय पश्चात् पुत्र को दाँत आने के समय माता के मन में पुष्य-क्रीड़ा की इच्छा उत्पन्न हुई। माता का पुष्प-प्रेम देखकर कुमार का दूसरा नाम 'पुष्पदंत' प्रसिद्ध हो गया। इनके शरीर का वर्ण भी चाँदी की भाँति श्वेत उज्ज्वल था।

युवावस्था में सांसारिक भोगों एवं राज वैभव का त्यागकर संयम ग्रहण किया। विशिष्ट ध्यान साधना द्वारा चार महीने के छदास्थ काल में ही घातिकमीं का क्षय करके केवलजान प्राप्त किया। चार तीर्थ की स्थापना की और अन्त में कार्तिक कृष्णा नवमी को सम्मेदशिखर पर मोक्ष पधारे। तीर्थ विच्छेद

भगवान सुविधिनाथ के मोक्ष-गमन पश्चात धीरे-धीरे श्रमण धर्म का विच्छेद हो गया। काल-प्रभाव से एक भी साध नहीं बचा। लोग श्रावकों से ही धर्म-धवण करते थे। श्रावकों में भी धीरे-धीरे लोभ भावना आ गई। श्रावक धर्म सुनाते, बदल में श्रोतागण उनकी अर्थ-पूजा करते। धर्म पर धन का प्रभाव बढ़ते-बढ़ते धीरे-धीरे श्रावक स्वर्णदान, गृहदान, गोदान और कन्यादान तक लेने लग गये। इस प्रकार ऋषभदेव द्वारा प्ररूपित सत्य-अहिंसा-अपरिग्रह धर्म के मूल सिद्धान्त लोग भूलते चले गये और असंयम की पूजा होने लग गई।⁹

9. BHAGAVAN SUVIDHINATH

In the tradition started by Bhagavan Rishabhdev the ninth Tirthankar who re-established the four pronged religious ford was Bhagavan Suvidhinath. During his earlier incarnation as emperor Mahapadma of Pushkalavati Vijay he purified his soul to the extant of earning Tirthankar-nam-and-gotra-karma. He took birth in the Vijayant dimension of gods and from there he descended into the womb of queen Rama Devi, wife of king Sugriva of Kakandi town.

During the period of pregnancy queen Rama developed a strange capacity to develop processes for doing even the most difficult of tasks. Everyone got astonished at her skill. When the child was born the king accordingly named him as Suvidhi (correct procedure). During the teething period of the child the mother got a craving for playing with flowers. As such, he was also popularly known as Pushpadant (flower-tooth).

Suvidhinath had a normal princely life, but with detachment. He became an ascetic at an early age and attained omniscience only after four months of

विशेष वर्णन के लिए देखो उत्तर पुराण पर्व ७६. पु. ६६-७८:२. श्लोक ६४-९६।

Illustrated Tirthankar Charitra

(42)

मचित्र तीर्थंकर चरित्र























rigorous spiritual practices. He got Nirvana at Sammetshikhar on the ninth day of the dark half of the month of Kartik.

Extinction of the Religious Ford

The tradition of the four pronged religious ford started by Bhagavan Rishabhdev gradually became extinct after the Nirvana of Bhagavan Suvidhinath. After his death, first the ascetic organisation disintegrated and a time came when there was no ascetic left. The religious discourses too were given by common citizens or Shravaks. Slowly the influence of wealth became overpowering and people started forgetting the principals of five vows including Ahimsa and truthfulness. The discipline of spiritual principles gave way to ritualistic exchanges of wealth and total indiscipline.

१०. भगवान शीतलनाथ

भगवान शीतलनाथ का जीव पर्व-भय में पद्मोत्तर नाम का राजा था। राजा होकर भी वह अत्यन्त क्षमाशील थे। दीक्षा नेकर उन्होंने उत्कृष्ट क्षमा धर्म की आराधना की। फलस्वरूप तीर्थंकर-नाम-कर्म का उपाजन कर प्राणत नामक दसवें स्वर्ग में उत्पन्न हए।

भहिलपुर के राजा दृढरथ की रानी नंदादेवी ने १४ शुभ म्बप्न देखकर एक महान् पुण्यशाली पुत्र को जन्म दिया।

जन्मोत्सव एवं नामकरण के अवसर पर राजा ने एक रहस्य प्रकट करते हुए बताया-"कुछ मास पूर्व ग्रीष्मकाल में मेरे शरीर में भयंकर ताप-ज्वर हो गया था। गौशीर्ष चन्दन आदि के लेप से भी शान्ति नहीं मिली। किन्तु जब यह पुत्र माता के गर्भ में आया तो रानी नंदादेवी ने मेरे शरीर पर केवल हाथ फिराया। उनके स्पर्श से ही मुझे गौशीर्ष चन्दन से भी अधिक शीतलता अनुभव हुई। ताप-ज्वर मिट गया।'' लगता है हमारे पुत्र की आत्मा पूर्व-जन्म में अवश्य ही महानु शान्ति और क्षमा धर्म की आराधक रही है जिस कारण उसका आगमन ही अत्यन्त शीतलतादायक सिद्ध हुआ। हम अपने पुत्र का नाम "शीतलनाथ" रखेंगे! (चित्र G/स)

यूवा होने पर शीतलनाथ का विवाह हुआ, फिर राज्याभिषेक और यौवन ढलने से पहले ही राजा का हृदय संयम के लिए ललक उठा। पुत्र को राज्यपद देकर संयम लिया। तीन मास के छन्नस्थ काल पश्चात् केवलज्ञान प्राप्त कर तीर्थंकर बने और अन्त में सम्मेदशिखर पर प्रभू ने निर्वाण प्राप्त किया।

भगवान शीतलनाथ

(43)

Bhagavan Sheetalnath



मल्लि













महावीर





समुद्र



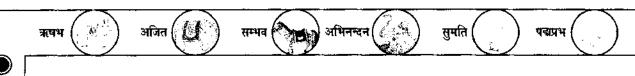
विमान-भवन



रत्न राशि



अग्नि



10. BHAGAVAN SHEETALNATH

The being that was to be Bhagavan Sheetalnath, in his previous but the birth was the king of Susima town in the Pushkarvar island. His name was Padmottar. When his son reached adulthood the religious king gave his kingdom to the son and took Diksha from Tristadha Muni. Vigorous spiritual practices and worship of the pious states as mentioned in the scriptures resulted in his acquiring the Tirthankar-nam-and-gotra-karma. Completing his age he reincarnated as the king of the Pranat dimension of gods.

In Bhaddilpur town in the sub-continent of Bharat, ruled king Dridhrath. In the womb of his queen, Nanda, descended the being that was Padmottar, when he completed his age in the dimension of gods.

One day due to some strange ailment, king Dridhrath had high fever and acute burning sensation in his body. He did not get any relief even after applying a variety of ointments. Out of anxiety and to comfort the king, the queen put her palm on his body. This mere touch of the queen removed the burning sensation and a feeling of soothing relief swept his body. After this incident the king decided to name the new born as Sheetal (cool/calm). (G/c)

Sheetalnath was born on the twelfth day of the dark half of the month of Magh. When he grew older he married at the request of his parents. At the proper time, king Dridhrath coronated him and took Diksha. After a long and successful reign Sheetalnath left his home and became an ascetic. He attained omniscience under a Peepal tree on the fourteenth day of the dark half of the month of Paush. After wandering and preaching for a long time, he came to Sammetshikhar and attained Nirvana on the second day of the dark half of the month of Vaishakh.

११. भ्रशवान श्रेयांशनाथ

सिंहपुर के राजा विष्णुराजा की धर्मशीला रानी थीं विष्णुदेवी। भाद्रपद कृष्णा १२ के मंगलमय दिवस पर माता की रत्नकृक्षि से श्रेयांसकुमार का जन्म हुआ।

विष्णुराजा ने वृद्ध अवस्था आई देखकर पुत्र को राज्य सींपकर दीक्षा ले ली। दीर्घकालीन राज्य करने के पश्चात् श्रेयांसकुमार ने भी दीक्षा ग्रहण की। दो मास छद्मस्थ रहे। आम्र वृक्ष के नीचे ध्यान करते हुए आपको केवलज्ञान की प्राप्ति हुई। चतुर्विध धर्मतीर्थ की स्थापना की।

Illustrated Tirthankar Charitra

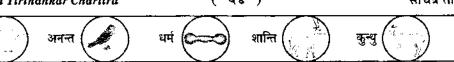
(48)

सचित्र तीर्थंकर चरित्र

विमल



अर



सिंह

वृषभ

लक्ष्मी

पृष्यमाला

चन्द्र

सूर्य



सुपार्श्व



(A)









वासुपूज्य

आपके शासनकाल में भगवान महावीर का जीव त्रिपृष्ट नामक प्रथम वासुदेव हुआ। प्रथम बलदेव थे— अचल। त्रिपृष्ट वासुदेव की मृत्यु के पश्चात् अचल बलदेव ने भगवान श्रेयांसनाथ के शासनवर्ती धर्मधोष आचार्य के पास दीक्षा ग्रहण कर मोक्ष प्राप्त किया।

भगवान श्रेयांसनाथ ने एक मास के अनशनपूर्वक सम्मेदशिखर पर मोक्ष गमन किया!

11. BHAGAVAN SHREYANSNATH

In his earlier incarnation, the being that was to become Bhagavan Shreyansnath purified his soul as king Nalingulm, and went to the Mahashakra dimension of gods. From there he descended and took birth as Shreyans Kumar, the son of king Vishnuraja and queen Vishnu Devi of Simhapur. Shreyans Kumar was born on the twelfth day of the dark half of the month of Bhadrapad.

He had a normal princely life and ascended the throne when Vishnuraja retired. After a long reign Shreyans Kumar became a Shraman and within a short span of two months attained omniscience on the fifteenth day of the dark half of the month of Magh under a mango tree. He got Nirvana at Sammetshikhar on the third day of the dark half of the month of Shravan.

It was during his period that the being that was to be Bhagavan Mahavir reigned as the first Vasudev Triprishtha. After the death of Triprishtha, his brother Baldev Achal became a disciple of Dharmghosh who was a follower of Shreyansnath. Achal got liberated in this birth.

१२. भ्रागवान वाशुपूज्य

चम्पा नगरी के राजा वसुपूज्य युद्धवीर होने के साथ ही बड़े दानवीर थे। प्रजा की सुख-सुविधाओं के लिए उनका राजकोष सदा ही खुला रहता था। रानी जयादेवी भी राजा के धर्म-कार्य और दान-कार्यों में सदा प्रेरणा सूत्र का कार्य करती रहतीं।

रानी ने एक महान् पुण्यशाली पुत्र को जन्म दिया। पुत्र का नाम "वासुपूज्य" रखा गया।

कहा गया है कि जब भगवान माता के गर्भ में थे तब इन्द्रदेव ने कई बार आकर माता की वन्दना की और गर्भस्थ भावी तीर्थंकर की पूजा-अर्चना की। इन्द्र का नाम 'वसु' भी है, वसु द्वारा बार-बार पूजा करने के कारण आपका नाम 'वासुपूज्य'' रखा गया।

भगवान वासुपूज्य

(५५)

Bhagavan Vasupujya

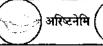


मल्लि



मुनिसुव्रत









ध्वज्



कुम्भ





समुद्र



विमान-भवन



रत्न राशि



निर्धूम अग्नि





कुमार वासपुज्य का जीव पिछले जन्म में पद्मोत्तर नाम का राजा था। तब उसने संसार त्यागकर दीक्षा ली और अनित्य भावना की उत्कष्ट भाव श्रेणी पर चढ़ते हुए तीर्थंकर-नाम-कर्म की पुण्य प्रकृति का बंध किया था। उसी भव के वैराग्य संस्कारों के कारण जन्म से ही कुमार वास्पूज्य के मन में राज वैभव, एवं सांसारिक सख-भोग के प्रति एकदम विरक्ति थी। याँवन अवस्था में माता-पिता के अत्यधिक स्नेहाग्रह पर भी उन्होंने न तो विवाह प्रस्ताव स्वीकार किया और न हो राज्य ग्रहण किया। कुमार अवस्था में ही उन्होंने फाल्गुन की अमावस्या को छह सौ व्यक्तियों के साथ दीक्षा ग्रहण की और शक्त ध्यान में लीन हो गये। एक मास के अल्पकालीन छद्मस्थ काल के पश्चात चम्पानगरी के उद्यान में पाटल वृक्ष के नीचे केवलज्ञान प्राप्त हुआ।

आपके तीर्थकाल में द्विपृष्ठ नामक दूसरे वास्देव हुए जिन्होंने तारक प्रतिवान्देव का अन्यायी शासन समाप्त कर न्याय नीति की प्रतिष्ठा की।

भगवान वासपुज्य का निर्वाण उनकी जन्मभूमि चम्पा नगरी में ही हुआ।

12. BHAGAVAN VASUPUJYA

King Padmottar ruled over Mangalavati town of Ardhapushkar island. He was a person devoted to spiritual pursuits. In later part of his life he took Diksha from Acharya Vajranabh. Reducing the tarnishment of Karma by penance and spiritual practices he earned the Tirthankar-nam-and-gotra-karma incarnated as a god in the Pranat dimension.

Vasupujya was the king of Champa town in the Bharat sub-continent. His queen was Jaya Devi. Besides being a great warrior King Vasupujya was a compassionate and charitable person. The queen too was benevolant and she inspired the king in his charitable activities.

The being that was Padmottar was born to queen Jaya Devi. It is said that when the queen was pregnant, the king of gods came to convey his veneration to the future Tirthankar and his mother. As Indra is also known as Vasu, the new born was named Vasupujya (venerated by Vasu).

As Vasupujya grew, so grew his inherent detachment and apathy for mundane affairs. He had no attraction for the regal splendour and grandeur. When he became young his parents wanted him to marry but he declined. He even conveyed that he had no intention of ascending the throne. In spite of all persuations from his family members, he renunciated the worldly life and became a Shraman on the fifteenth day of the dark half of the month of Phalgun alongwith six hundred other persons.

Illustrated Tirthankar Charitra

(48)

सचित्र तीर्थंकर चरित्र

विमल



शान्ति



अर



चन्द

सूर्य

सिंह









शीतल





वासुपूज्य

The intensity of his spiritual practices was so deep that he became an omniscient within one month. At that moment he was practicing under a Patal tree in a garden outside Champa town. He established the four pronged religious ford and preached for a long period.

The second Vasudev, Dwiprishtha, was his devotee. He and his brother Baldev Shrivijay conquered Prativasudev Tarak and brought his oppressive rule to an end. Shrivijay later joined the ascetic order of Bhagavan Vasupujya.

Bhagavan Vasupujya got Nirvana in Champa town on the fourteenth day of the bright half of the month of Ashadh.

१३. भ्रशवान विमलनाथ

कम्पिलपुर के राजा कृतवर्मा और रानी श्यामादेवी परम जिनभक्त और त्यागी वृत्ति के थे। श्यामादेवी महारानी परम सुन्दरी थीं, फिर भी इतनी सरल और निर्मल स्वभाव की थीं कि लोग कहते—''रानी जी का नाम श्यामा है, परन्तु जीवन परम उज्ज्वल चन्द्रमा के समान शीतल है।''

माघ शुक्ला तृतीया के दिन रानी की कुक्षि से एक महान् पुण्यशाली पुत्र ने जन्म लिया। पुत्र-जन्म के समय समूचे संसार में प्रकाश किरणें फेल गईं। पुत्र जन्मोत्सव एवं नामकरण के समय राजा कृतवर्मा ने अपने स्वजन मित्रों को बताया—"जब से यह पुत्र माता के गर्भ में आया रानी का तन, मन परम पवित्र, निर्मल और आभामय-सा हो गया। इस कारण हम पुत्र का नाम "विमलकुमार" रखना चाहते हैं।"

राजकुमार का अनेक राजकुमारियों के साथ पाणिग्रहण हुआ। फिर राज्याभिषेक हुआ। दीर्घकाल तक प्रजापालन करते हुए माघ शुक्ला चतुर्थी के दिन एक हजार राजा-राजकुमारों के साथ दीक्षा ग्रहण की। केवलज्ञान प्राप्त होने पर धर्मतीर्थ की स्थापना की। अन्त में सम्मेदशिखर पर आपका निवाण हुआ।

तीसरे वासुदेव स्वयंभू तथा बलदेव वलभद्र आपके तीर्थकाल में हुए।

13. BHAGAVAN VIMALNATH

King Kritvarma and queen Shyama Devi of Kampilpur were both spiritualists and devotees of the Jina. The queen one day saw fourteen auspicious things in her dream and the augurs announced that she will give birth to a Tirthankar. It was the pious soul that in its earlier birth was king

भगवान विमलनाथ

(49)

Bhagavan Vimalnath















महावीर



ध्वजा



कुम्भ





समुद्र



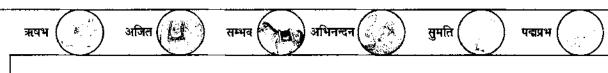
विमान-भवन



रत्न सशि



अग्नि



Padmasen of Mahapuri town in Dhatakikhand and had descended into the queen's womb from the Mahardhik dimension of gods.

During her pregnancy the queen radiated a soothing glow. Her temperament also became congenial, kind, and generous. When the child was born the whole atmosphere was also filled with a soothing glow. Inspired by this spread of purity, the king named his new born son as Vimal (pure/untarnished).

In due course, prince Vimal Kumar became young, was married, and then ascended the throne. After a long and successful reign he became a Shraman alongwith one thousand other kings and princes on the fourth day of the bright half of the month of Magh. After two years of spiritual practices he attained omniscience and established the religious ford. Merak Prativasudev, Svayambhu Vasudey, and Bhadra Baldey were his contemporaries.

Bhagavan Vimalnath got Nirvana at Sammetshikhar on the seventh day of the dark half of the month of Ashadh.

१४. भ्रशवान अनन्तनाथ

अयोध्या के राजा सिंहसेन की रानी सुयशादेवी ने वैशाख कृष्णा १३ की रात्रि में एक महानु भाग्यशाली पुत्र को जन्म दिया। आपके जन्म-प्रभाव से राजा सिंहसेन को अपना बल, वैभव असीम अनन्त गुना बढ़ा प्रतीत होता था। माता ने भी एक विशाल रत्नमाला का स्वप्न देखा जिसका ओर-छोर (अन्त) कहीं नज़र नहीं आता था। इस कारण बालक का नाम ''अनन्त'' रखा गया। यौवन वय में विवाह हुआ और फिर राज्याभिषेक कर पिता सिंहसेन दीक्षित हो गये।

अनेक वर्षों तक राज्य एवं प्रजा का पालन करते हुए अनन्तनाथ के मन में राज्य त्यागक़र दीक्षा का संकल्प जगा। तभी नव लोकान्तिक देव आये और वन्दना कर बोले-"प्रभु आपका संकल्प महानु है ! संसार को भी इस वैराग्य मार्ग का दर्शन कराइए और धर्मतीर्थ का प्रवर्तन कीजिए।"

आयने एक हजार राजाओं के साथ सांसारिक भोग वैभव त्यागकर दीक्षा ग्रहण की। तीन वर्ष के छद्मस्थ काल पश्चात् अशोक वृक्ष के नीचे वैशाख कृष्णा चतुर्दशी को केवलज्ञान प्राप्त हुआ।

आपने प्रथम देशना में जीव-अजीव आदि तत्त्वों पर विशद प्रकाश डाला। आपके गण में ५० गणधर हुए जिनमें प्रथम गणधर का नाम था-यश।

चैत्र शक्ला पंचमी को पृथ्य नक्षत्र में सम्मेदशिखर पर आपका निर्वाण हुआ। आपके तीर्थकाल में पुरुषोत्तम वासुदेव तथा सुप्रभ नामक बलदेव हुए।

Illustrated Tirthankar Charitra

(46) सचित्र तीर्थंकर चरित्र













सिंह

वृषभ

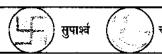
लक्ष्मी

पुष्पमाला

चन्द्र

सूर्य

श्रान्ति











वासुपूज्य



Queen Suyasha Devi, wife of king Simhasen of Ayodhya, gave birth to an illustrious son on the thirteenth day of the dark half of the month of Vaishakh. During her pregnancy the queen dreamt of a very long strand of beeds whose ends were not visible. The power and the glory of the king also increased manifold during this period. Accordingly the new born was named Anant (endless) Kumar.

After leading a normal life, first as a prince and then as the king he became an ascetic alongwith one thousand other persons. He became an omniscient on the fourteenth day of the dark half of the month of Vaishakh under an Ashok tree. In his first discourse he elaborated the subject of the fundamentals-matter and life. He had fifty chief disciples including the senior most named Yash. Purushottam Vasudev and Suprabh Baldev reigned during his period of influence.

Bhagavan Anantnath got Nirvana at Sammetshikhar on the fifth day of the bright half of the month of Chaitra.

१५. भ्र<mark>ावान धर्मनाथ</mark>

भगवान धर्मनाथ का जीव पूर्व-भव में महाविदेह क्षेत्र में दृढरथ नाम का राजा था। दृढरथ राजा अपार सम्पति और विशाल राज्य का अधिपति होते हुए भी जल में कमल की तरह उनमें निर्लिप्त और असंग जीवन जीता था। उसकी निःसंगता देखकर बड़े-बड़े संतजन भी उन्हें धर्म का साक्षान अवतार कहते थे। जीवन के संध्याकाल में दीक्षा ग्रहण कर दृढरथ मुनि ने चारित्र धर्म की निर्मल आराधना करते हुए तीर्यंकर-नाम-कर्म का उपार्जन किया। आयुष्य पूर्णकर वैजयंत विमान में महानु ऋद्धि सम्पन्न देव बने।

दृढरथ मुनि के जीव ने रत्नपुर नगर के भानुराजा की रानी सुव्रता की कृक्षि में प्रवेश किया। धर्म अवतार पुत्र के गर्भ में आते ही राजा-रानी आदि सभी परिवार में दान-शील तप-भाव, रूप धर्म की आराधना होने लगी। माता का जीवन तो धर्ममय बन गया। माघ शुक्ला ३ को पुत्र का जन्म हुआ। तब राजा ने गर्भ-प्रभाव की चर्चा करते पुत्र का नाम "धर्मनाथ" रखा। यौवन वय प्राप्त होने पर विवाह हुआ। राज्याभिषेक हुआ। अनेक वर्षों तक राज्य करते रहे।

भगवान धर्मनाथ

(49)

Bhagavan Dharmnath













पार्श्व



महावीर









विमान-भवन



रत्न राशि

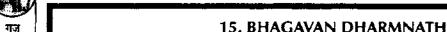


अग्नि



एक दिन वैराग्य की हिलोरें उठते ही राज्य त्यागकर दीक्षा ग्रहण कर ली। दो वर्ष तक छन्नस्थ पर्याय में रहने के पश्चात् केवलज्ञान प्राप्त हुआ। आपकी प्रथम धर्म देशना में पंचम वासुदेव पुरुषसिंह तथा सदर्शन बलदेव भी उपस्थित थे।

भगवान की प्रथम देशना मुख्यतः कषाय के स्वरूप और उसके दुष्परिणामीं पर हुई जिसे सुनकर अनेक लोग प्रतिबोधित हए। अन्त में सम्मेदशिखर पर भगवान ने मोक्ष प्राप्त किया।



The being that was to become Bhagavan Dharmnath was king Dridhrath of Bhaddilpur in Mahavideh area, in its earlier incarnation. Although he had enormous wealth and a large kingdom, he led a detached and pious life like a lotus in a pond. Even go at saints praised him as the embodiment of religion. During the later part of his life king Dridhrath became an ascetic and as a result of his unblemished character and sincere spiritual practices he earned the Tirthankar-nam-and-gotra-karma. Completing his age he reincarnated as a god in the Vaijayant dimension.

This being then descended into the womb of queen Suvrata, wife of king Bhanuraja of Ratnapur. During the pregnancy the queen devoted all her time in religious activities. Even the king and all other members of the family were inclined to devote maximum time to various religious activities like charity, righteousness, penances, studies etc. On the third day of the bright half of the month of Magh a son was born to the queen. Due to the religious influence during the pregnancy period, the king gave him the name Dharmnath. In due course he became young, was married and then ascended the throne. He ruled successfully for a long period.

One day he terminated all worldly attachments and became an ascetic. After two years of spiritual practices he became omniscient. His first religious discourse was attended by the fifth Vasudev Purush Simha and Sudarshan Baldey.

In this first discourse he mainly dealt with the subject of form and ill effects of passions. A large audience was benefitted by this eloquent discourse. At last he went to Sammetshikhar and got Nirvana.

E0)



सिंह

वृषभ



लक्ष्मी



प्रथमाला

चन्द्र

सूर्य



विमल

Illustrated Tirthankar Charitra

अनन्त









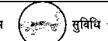
अर

सचित्र तीर्थंकर चरित्र















वासुपूज्य

१६. भ्रशवान शान्तिनाथ

भगवान शान्तिनाथ के पूर्व-भवों का जो वृत्तान्त मिलता है, उससे स्पष्ट है कि उनका जीत ेक जन्म-जन्मान्तरों में तप-संयम की सुदीर्घ आराधना करता रहा। एक वार वह पूर्व महाविदेह की पुंटरिकिनी नगरी में मेघरथ नामक राजा बना।

शरणागत रक्षा

राजा मेघराज बहुत दयालु, करुणावान और जीव मात्र का प्रतिपालक था। दया के संस्कार उसकी रग-रग में रमें थे। इतना ही नहीं, क्षत्रिय बीर योद्धा होने के कारण वे दूसरे जीवों की रक्षा के लिए अपना सर्वस्व बलिदान करने का भी अद्भुत साहस रखते थे।

एक वार महाराज मेघरथ पर्व तिथि का दिन होने के कारण पीपध व्रत धारण करके धर्माराधना कर रहे थे कि अचानक एक कबूतर भयभीत हुआ उनकी गोद में आकर गिर पड़ा और वह गानव भाषा में दीनतापूर्वक पुकारने लगा—"महाराज ! मुझे बचाओ ! मुझे शरण दो ! मेरी रक्षा करो !"

राजा ने कबूतर को भय से काँपते देखकर आश्वासन दिया-''तुम शान्त हो जाओं। निर्भय रहो। यहाँ तुम्हें अब किसी प्रकार का भय नहीं हो सकता।''

तभी एक वाज पक्षी आया और राजा से कहने लगा-''महाराज ! यह मेरा शिकार है, इसे छोड़ दीजिए! मैं इसका भक्षण करूँगा।''

राजा ने बाज को समझाया-''तुम्हें भूख लगी है, तो अन्य खाद्य पदार्थों से क्षुधा शान्त करो। जो वस्तु चाहिए सो मिल जायेगी। किसी जीव का भक्षण कर उसके प्राण क्यों ले रहे हो?''

बहुत समझाने-बुझाने पर भी वाज ने एक ही हट पकड़ ली-''मैं माँमाहारी हूँ, मुझे माँस चाहिए। माँस के अभाव में मैं भूख से मर जाऊँगा तो मेरी हत्या के पाप के भागी आप होंगे।''

किसी भी प्रकार वाज नहीं माना तो राजा ने कहा—''अगर तुझे माँस ही चाहिए तो किसी अन्य प्राणी का नहीं, मैं अपने शरीर का माँस तुझे दे सकता हूँ। तू वह खाकर अपनी भूख मिटा ले. परन्तु शरणागत पक्षी को तुझे नहीं सींपूँगा।'

कबूतर के भार के बराबर माँस देने की शर्त पर बाज राजी हो गया। तराजू के एक पलड़े में कबूतर रखा गया, दूसरे पलड़े में राजा अपने शरीर का माँस काट-काटकर रखते गये। परन्तु आञ्चर्य कबूतर का पलड़ा फिर भी भारी ही रहा।

राजा के शरीर का माँस कटते देखकर रानियाँ, मंत्री कादि प्रजाजन राजा से बार-बार करुण पुकार करने नगे—"महाराज ! यह आप क्या कर रहे हैं? एक छोटे से जीव कबूतर के लिए अपना बहुमूल्य जीवन विलदान मत कीजिए। अपने शरीर का नाश मत कीजिए।" उधर बाज को भी बहुत समझाया—परन्तु वह भी अपनी जिद्द से टस से मस नहीं हुआ। (चित्र S-1/अ)

राजा मेघरथ भी अपने संकल्प पर अविचल रहे और अपने हाथ-पाँव आदि अंगों को काटकर तराजू में रखते चले गये। राजा का यह अविचल धेर्य और अद्वितीय करुणा भाव देखकर सभी चकित थे। तभी

ध्यजा

कुम्भ

्र पदा

पद्म सरोवर



समुद्र



विमान-भवन



रत्न राशि



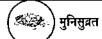
निर्धूम अग्नि

भगवान शान्तिनाथ

(\$8)

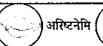
Bhaga an Shantinath





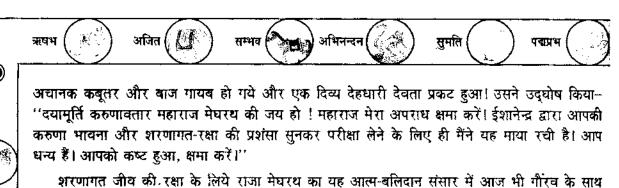












शरणागत जीव की रक्षा के लिये राजा मेघरथ का यह आत्म-बलिदान संसार में आज भी गौरव के साथ गाया जाता है।

अविचल निर्विकारता

राजा मेघरथ एक बार पौषध युक्त अष्टम तप कर रहे थे। वे परम शान्त रस में लीन थे। उनकी निर्विकार निश्चल मनःस्थिति देखकर इन्द्र देव ने वन्दना करते हुए कहा—''हे गृहस्थयोगी ! आपको मेरा नमस्कार है। संसार में आपके समान निर्लिप्त निर्विकार जीवन जीने वाले कोई विरले ही महापुरुष होंगे।''

इन्द्र महाराज की प्रशंसा सुनकर स्वयं इन्द्राणियों ने राजा मेघरथ की परीक्षा लेने का विचार किया। उन्होंने नृत्यांगना का रूप बनाकर नृत्य गायन करते हुए अत्यन्त शृंगार रसमय वातावरण वना दिया। किन्तु उस विकारवर्द्धक अत्यन्त मोहजनक वातावरण में भी राजा मेघरथ की ध्यान-साधना भंग नहीं हुई। उनकी एकाग्रता और निर्लिप्तता चरम सीमा पर थी। नृत्यांगनाओं के हाव-भाव और कामोद्दीपक चेष्टाएँ व्यर्थ गईं। तब इन्द्राणियों ने प्रशंसा करते हुए क्षमा माँगी। (चित्र S-1/ब)

राजा मेघरथ ने संसार त्यागकर दीक्षा ली और एक लाख पूर्व तक विविध प्रकार के तप, ध्यान, सेवा आदि उत्कृष्ट धर्म आराधना करते हुए तीर्थंकर-नाम-कर्म की महान् पुण्य प्रकृति का बंध किया। देह त्यागकर सर्वार्थसिद्ध विमान में देव बने।

सर्वार्थिसिद्ध विमान से ३३ सागरोपम की आयुष्य पूर्णकर मेघरथ के जीव ने हस्तिनापुर के इक्ष्याकुवंशी राजा विश्वसेन की रानी अचिरादेवी के गर्भ में प्रवेश किया। रानी ने १४ महास्वप्न देखे। ज्येष्ठ कृष्णा १३ के दिन रानी ने महान् पुण्यशालो पुत्र को जन्म दिया। उस समय तीनों लोक में प्रकाश जगमगा उठा। अत्यन्त वेदनामय नरक में भी कुछ क्षण के लिए सुख की लहर-सी दौड़ गई। मनुष्य लोक में स्वाभाविक आनन्द की वर्षा होने लगी।

एक बार हिस्तिनापुर जनपद में भयंकर वर्षा, तेज तूफान आदि प्राकृतिक उपद्रव हुए। चारों तरफ हाहाकार मच गया और उस घनघोर वर्षा के बाद जनपद में महामारी का रोग फैल गया। प्रतिदिन सैकड़ों लोग मरने लगे। जनता ने राजा के समक्ष रक्षा की पुकार की, परन्तु राजा भी इस महामारी से प्रजा की रक्षा करने में स्वयं को असमर्थ पा रहा था। प्रजा की पीड़ा और जन-हाहाकार से दुःखी होकर राजा विश्वसेन विचलित हो गये। उन्होंने प्रतिज्ञा की—''जब तक प्रजा का यह उपद्रव शान्त नहीं होगा मैं अन्न-जल ग्रहण नहीं करूँगा।''

राजा की भीष्म प्रतिज्ञा से द्रवित होकर शक्रेन्द्र स्वयं उपस्थित हुए और राजा से कहने लगे—''महाराज ! आप व्यर्थ ही इतने चिन्तित और दुःखी क्यों हो रहे हैं? जहाँ चिन्तामणि रत्न, कल्पतरु एवं कामधेनु विद्यमान है, वहाँ किस बात की कमी? महारानी अचिरादेवी के उदर में साक्षात् शान्ति अवतार भगवान पल रहे हैं और आप अशान्ति का अनुभव कर खिन्न हो रहे हैं? आश्चर्य !'' तब इन्द्र महाराज ने गर्भस्थ भावी तीर्थंकर

(६२)

सचित्र तीर्थंकर चरित्र

विमल 🔃 े











्र सिंह

गज

वृषभ

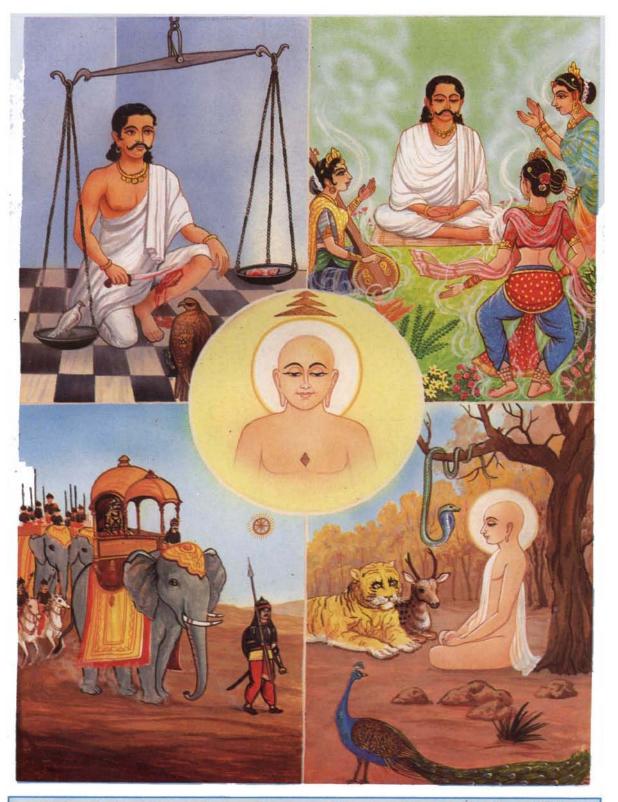
लक्ष्मी



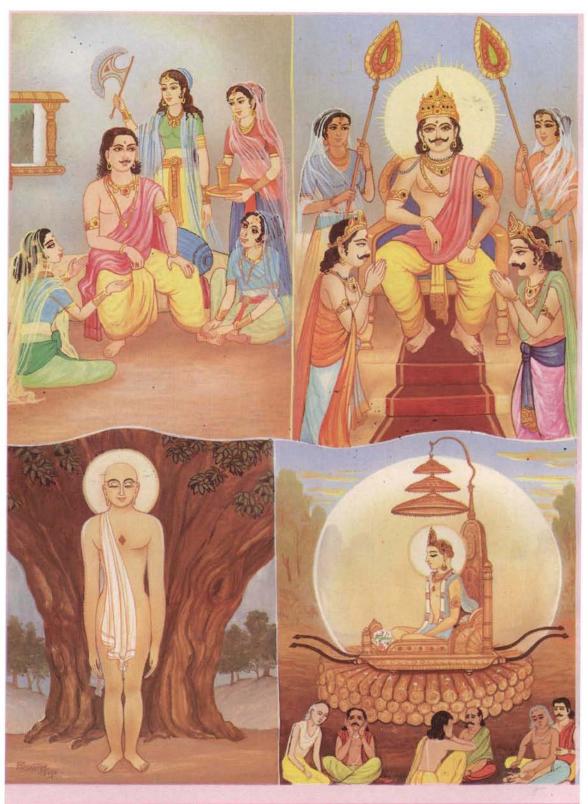
पुष्पमाला

चन्द्र

सूर्य



S 1 (अ) राजा मेघरथ का देहदान (व) ध्यान योग मग्न राजा मेघरथ (स) चक्र के पीछे शांतिनाथ की दिग्विजय यात्रा (द) वन में ध्यानलीन अर्हत् शान्तिनाथ।
(a) Charity of his own flesh by king Meghrath (b) Meghrath in deep meditation (c) Shantinath's war march following the Chakra (d) Arhat Shantinath meditating in Jungle



K 1 अर्हत् कुन्धुनाथ का भोगमय जीवन, चक्रवर्तीत्व, कायोत्सर्ग तपश्चरण तथा निर्हरण क्रिया। The states of earlier birth, sovereignty, meditation, and passing away of Arhat kunthunath









। (भू 🚉) श्रेय



गसुपूज्य

की स्तुति में स्तोत्र का पाठ किया और राजा से निवेदन किया—''महारानी महल की छत पर खड़ी होकर स्वयं इस शान्ति स्तोत्र का पाठ करें, और फिर जनपद पर अपनी अमृत दृष्टि डालें। जहाँ तक माता की अमिय-दृष्टि पहुँचेगी, उसके प्रभाव से समस्त उपद्रव, रोग, पीड़ाएँ शान्त हो जायेंगे।''

पुत्र जन्मोत्सव एवं नामकरण के समय राजा विश्वसेन ने वताया—पुत्र के गर्भ-प्रभाव से हस्तिनापुर जनपद में फैला हुआ महामारी का भयंकर उपद्रव शान्त हो गया। सम्पूर्ण राज्य में शान्ति और सुख की वृष्टि हुई। यह पुत्र संसार में "संति संतिकरे लोए" शान्ति करने वाला होने के कारण हम इसका नाम रखेंगे— "शान्तिकुमार"।

पूर्व-जन्मों की दीर्घ तपस्या, ध्यान, सेवा, दान आदि प्रबल पुण्यों के प्रभाव से शान्तिनाथ छह खण्ड विजय कर चक्रवर्ती सम्राट् वने। (चित्र S-1/स)

अपने अद्वितीय बल वैभव से छह खण्डों पर एकछत्र राज्य करते हुए शान्तिनाथ को एक दिन पूर्व-जन्म में आर्चरित तप आदि की म्मृति होने पर मन में विरक्ति हुई। षट्खण्ड का विशाल राज वैभव त्यागकर मुनिव्रत धारण कर लिया। दीक्षा के एक वर्ष पश्चात् भगवान शान्तिनाथ हस्तिनापुर पधारे। वहाँ सहस्राम्र उद्यान में नन्दी वृक्ष के नीचे परम शान्त निर्मल शुक्ल ध्यान में लीन हुए। शान्त रस की वर्षा करती उनकी साधना से आसपास का वातावरण अत्यन्त अभय और मैत्रीपूर्ण हो गया। सिंह, हिरण, गाय, मोर, साँप आदि र्जाव-जन्तु परस्पर का वैर-भाव भूलकर योगीराज शान्तिनाथ के चरणों में आकर शान्ति का अनुभव करने लगे। (चित्र S-1/द)

पाँप शुक्ता नवमी के दिन नन्दी वृक्ष के नीचे ही भगवान को केवलज्ञान की प्राप्ति हुई। उसी स्थान पर देवताओं ने समवसरण की रचना की। भगवान ने ''इन्द्रिय विजय'' पर प्रथम धर्म देशना दी। कुल एक लाख वर्ष का आयुष्य भोगकर ९०० मुनियों के साथ सम्मेदशिखर पर अनशनपूर्वक देह त्यागकर मोक्ष प्राप्त किया।

16. BHAGAVAN SHANTINATH

The account of the earlier incarnations of Bhagavan Shantinath indicates that this being had taken the path of discipline that lead toward purity of soul many births before. As a result of this upliftment during his incarnations as Shrisen and Vajrayudh it was born as Meghrath, the son of king Dhanrath of Pundarikini town in Purva Mahavideh area. At the proper time, king Dhanrath gave the kingdom to Meghrath and became an ascetic.

Protection to a Refugee

Meghrath was a benevolent and religious ruler. He was compassionate and protected all living things. Being a Kshatriya and a warrior he had the chivalary to sacrifice all he had in order to protect those in trouble.

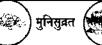
भगवान शान्तिनाथ

(長多)

Bhagavan Shantinath



ल्लि ।













ध्यजा



कुम्भ









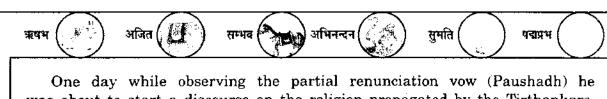


स्त्न राशि



अग्नि





was about to start a discourse on the religion propagated by the Tirthankars. All of a sudden a pigeon, trembling with fear fell in his lap and uttered in choking human voice, "Save me, O king! Give me refuge, take me under your protection!" The compassionate king comforted the bird and took it under his protection.

The pigeon was followed by a falcon who too uttered in human language, "O king! This pigeon is my food, leave it alone." The king tried to explain, "It has taken refuge with me, as such I am duty bound to protect it. I will give you any type of food you want; why kill a living thing just to fill your stomach?"

The falcon insisted "If you will not leave it I may die of hunger. I am a carnivore; who will provide me food. If I die, you will be responsible and bear the sin

When the falcon did not yield, Meghrath said at last, "O falcon! As long as I exist. I will not allow you to die. I will cut out flesh from my body equivalent to the weight of this little pigeon and give it to you. You may satisfy your urge to eat. But under no circumstance I shall allow you to kill the bird that has taken refuge with me."

The falcon agreed to this proposal and the king put the pigeon in one pan of a balance and in the other started putting pieces of flesh cut out from his own body. Surprisingly the weight of the pigeon continued to increase as the king went on putting his fiesh in the pan. Witnessing this pathetic scene, the queens and the members of the assembly were moved to tears. They requested the king not to sacrifice his precious life for a mere pigeon. The falcon, was also requested to relent but he too declined. (S-1/a)

The king continued to cut flesh from his body and put it in the pan of the balance. At last, when the pieces of flesh were not enough, the king got up from his seat and sat down in the pan. Everyone present was dumb struck at this lofty compassion and chivalry displayed by the king. Suddenly there was a flesh of divine light and a divine personage appeared. The pigeon and the falcon disappeared. The god addressed the king, "Maharaj! The king of gods was praising your compassion and courage, in his assembly. I could not contain myself and came around to test you myself. All this was my creation. You have come out with flying colours. You are worthy of the praise bestowed on you by the king of gods. Please forgive me." The god filled Meghrath's wounds instantaneously and left for his abode.

Whenever there is a talk about chivalry and compassion king Meghrath's name is taken with respect.

सचित्र तीर्थंकर चरित्र (68) Illustrated Tirthankar Charitra



सिंह

वृषभ

लक्ष्मी

पुष्पमाला

चन्द्र

सूर्य











Unflinching Discipline

Disturbed by the miseries of the mundane life, one day king Meghrath was doing meditation. He transcended to a very high level of purity. Knowing about this uncommon purity and determination of Meghrath the king of gods bowed to him with reverence, "My salutations to you O citizen Yogi! There are but a few in this world who could reach this level of detachment and purity." Two senior consorts of Indra, Surup and Atirup did not like this gesture of praise of a mere human. They both came to disturb the meditation of Meghrath. They made several beautiful and voluptuous damsels appear before the king. These beauties tried to disturb Meghrath by a display of dances and inviting gestures. When these night long seductive afflictions failed to disturb king Meghrath, the goddesses, before returning to their abode, appeared themselves and asked the king to forgive them. (S-1/b)

King Meghrath, then, coronated his son and took Diksha from Arhat Dhanrath. Due to his increasing purity in meditation in the face of many afflictions, he earned the Tirthankar-nam-and-gotra-karma. Completing his age he reincarnated in the Sarvarthsiddha dimension of gods.

From the dimension of gods, the being that was Meghrath descended into the womb of queen Achira, wife of king Vishvasen of Ikshvaku clan and ruler of Hastinapur.

Once there was a great storm in the Hastinapur area. There were heavy rains and many other calamities. An epidemic followed these calamities and hundreds of people started dying every day. The masses appealed to the king to save them, but the king too was helpless. Gravely disturbed by this series of calamities, the king took a vow that he will not eat or drink as long as peace and normalcy does not return to his kingdom.

Moved by this harsh vow of king Vishvasen, the king of gods himself appeared before the king and said, "O king! You are disturbed unnecessarily. Is there any death at the place where the wish-fulfilling trio of Chintamani, Kalpavriksha, and Kamdhenu (divine gem, tree and cow) exist? The embodiment of peace is being carried by queen Achira Devi in her womb and you still feel disturbed. It surprises me!" The Indra then sang a panegyric in praise of the Tirthankar and advised the king, "Let the queen go to the roof top and sing this panegyric. After this, let her throw a glance at the vast expanses of your kingdom all around. This pacifying glance of the queen will remove all miseries from wherever it reaches."

On the thirteenth day of the dark half of the month of Jyeshtha the queen gave birth to the great and illustrious son. The whole universe, including even the hell, was pervaded by a soothing glow and a feeling of joy and happiness. Due

ध्वजा



कुम्भ

्र पद्म सरोवर

لوت

समुद्र



विमान-भवन



रत्न राशि



निर्धूम अग्नि

भगवान शास्तिनाध

(६५)

Bhagavan Shantinath







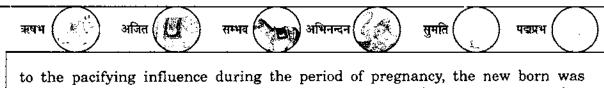








महावीर



named Shanti Kumar (Shanti = Peace). When he came of age he was married to several beautiful princesses. At proper time king Vishvasen gave the kingdom to Shantinath and took Diksha.

After a few years king Shantinath got a son who was named Chakrayudh. Several years later, the divine disc weapon appeared in the armoury. When the traditional worship rituals of this weapon were concluded, it started moving toward east on its own. Shantinath followed the Chakra with his armed forces. Most of the kings on the way surrendered. After defeating the remaining few, Shantinath became a Chakravarti. (S-1/c)

When, after a long and peaceful reign, he realised that the moment for his renunciation was approaching. Shantinath went into the Sahasramra jungle, and, becoming an ascetic commenced his practices (S-1/d)

After wandering as an ascetic for one year he returned to the same jungle and there, on the ninth day of the bright half of the month of Paush, he attained omniscience under a Nandi tree. His first discourse was on the subject of disciplining the senses. He came to Sammetshikhar after a long period of wandering and propagating true religion. There, alongwith nine hundred other ascetics, he observed a month long fast that started his final meditation. On the thirteenth day of the dark half of the month of Jyeshtha, Bhagavan Shantinath attained Nirvana.

१७. भगवान कुंथुनाथ

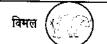
भगवान शान्तिनाथ के निर्वाण के अर्ध पल्योपम के बाद हस्तिनापुर में शूरसेन नाम के राजा हुए। श्रीदेवी रानी थीं। वैशाख कृष्णा चतुर्दशी के दिन रानी ने एक महान् पुण्यशाली पुत्र को जन्म दिया। पुत्र का जन्मोत्सव करने स्वर्ग के हजारों देव-देवियाँ तथा ६४ इन्द्र आये। नामकरण के समय राजा शुरसेन ने घोषणा की-"यह बालक जब माता के गर्भ में आया तब रानी ने कंथ नामक रत्नों की विशाल राशि देखी थी। इस कारण बालक का नाम 'कृथ' रखना चाहते हैं।"

पूर्व-जन्म में किये हुए तप-त्याग, सेवा आदि महान् पुण्यों के फलस्वरूप कुंधुनाथ को अपार ऐश्वर्य और भोग सामग्री प्राप्त हुई। रूपवती रानियाँ रात-दिन सेवा में रहती थीं। फिर अपने बल-पराक्रम और अपार सैन्य बल से उन्होंने छह खण्ड पर विजय प्राप्त की। बड़े-बड़े सम्राट् उनकी सेवा में हाथ जोड़े खड़े रहते थे। दीर्घकाल तक चक्रवर्ती पद भोगकर, अन्त में त्याग मार्ग पर चरण बढ़ाया और मुनि बन गये। सोलह वर्ष तक एकान्त जंगलों में ध्यान-तप की कठोर साधना करने के पश्चात् हस्तिनापुर में ही तिलक वृक्ष के नीचे केवलज्ञान प्राप्त हुआ।

Illustrated Tirthankar Charitra

(55)

सचित्र तीर्थंकर चरित्र













सूर्य

चन्द

सिंह

वृषभ

लक्ष्मी

पुष्पमाला









शीतल 織





शसुपूज्य

उसी उद्यान में भगवान का समवसरण लगा। प्रथम देशना में भगवान ने "अन्तःकरण की विशुद्धि" पर प्रवचन दिया, जिसे सुनकर हजारों व्यक्तियों ने मुनि दीक्षा धारण की।

अपना अन्तिम समय निकट जानकर भगवान सम्मेदशिखर पर पधारे और वहीं पर एक मास के अनशनपूर्वक मोक्ष पधारे। इन्द्र आदि ने मिलकर भगवान का निर्वाण कल्याणक किया। (चित्र K-1)

17. BHAGAVAN KUNTHUNATH

The name of the powerful and illustrious king of Khadgi town in Purva Mahavideh area was Simhavaha. He was a very devoted and religious person. When his son became young and capable, he handed over his kingdom to the son and took Diksha from Samvaracharya. As a result of his vigorous penance and devotion for the Arhat, he earned the Tirthankar-nam-and-gotra-karma. Completing his age he reincarnated in the Sarvarthsiddha dimension of gods.

From the dimension of gods he descended into the womb of queen Shri Devi, wife of king Shursen of Hastinapur. During her pregnancy the queen saw a heap of gemstones known as Kunthu in her dreams. This inspired the king to name him Kunthu Kumar. The pious deeds of earlier birth resulted in unlimited power and grandeur for Kunthu Kumar. After Shursen became an ascetic, Kunthu Kumar ascended the throne. Soon the disc weapon appeared in his armoury and he proceeded to conquer the world with his mighty army. Without any confrontation all the kings accepted his sovereignty and Kunthunath became a Chakravarti. Many mighty kings and princes used to be present in his court all the time. After a long and peaceful reign of twenty three thousand seven hundred and fifty years he became an ascetic alongwith one thousand kings. Immediately after Diksha he acquired Manahparyav Jnan. He spent sixteen years as an ordinary ascetic. Indulging in penances and other spiritual practices, he attained omniscience on the third day of the bright half of the month of Chaitra under a Tilak tree in the Sahasramra jungle outside Hastinapur. His first discourse was on the subject of "inner purity".

As an omniscient ascetic Kunthunath wandered arcund and preached true religion for a very long period. He then went to Sammetshikhar and observed a month long fast before breathing his last. His followers were deeply devoted to him. As such, a large crowd was present at the moment of his Nirvana and cremation ceremony. They witnessed the ceremony with heavy hearts and tear filled eyes. The mortal remains of Bhagavan Kunthunath were taken away by the gods for worship. (K-1)

भगवान कुंधुनाध

(69)

Bhagavan Kunthunath















महावीर

ध्यजा



कुम्भ



समुद्र



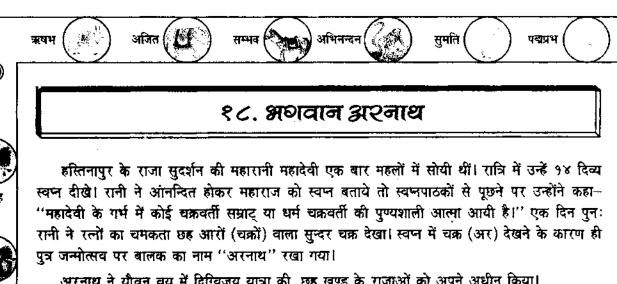
विमान-भवन



रत्न राशि



निधूम अग्नि



गज



लक्ष्मी



पुष्पमाला



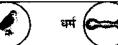
चन्द्र



सूर्य

विमल











सचित्र तीर्थंकर चरित्र

(६८)

अरनाथ ने यौवन वय में दिग्विजय यात्रा की, छह खण्ड के राजाओं को अपने अधीन किया।

दीर्घकाल तक इस अबसर्पिणी काल के सातवें चुक्रवर्ती का पद भोगने के पश्चात् एक दिन प्रकृति में आये ऋत-परिवर्तन पर चिन्तन करते हुए अन्तर्लीन हो गये-इसी चिन्तन से वे अन्तर्मुखी बने और उन्होंने छह खण्ड का विशाल साम्राज्य त्यागकर दीक्षा धारण कर ली।

तीन वर्ष तक छद्यस्थ काल में विचरते हुए आप एक बार हस्तिनापुर के सहस्राम्र वन में पधारे। आम्र वृक्ष के नीचे ध्यानारूढ़ हो गये। शुक्ल ध्यान की उच्च श्रेणी पर चढ़ते हुए आपने सर्वप्रथम शुक्ल ध्यान रूपी अग्नि से मोह कर्म रूपी महामल्ल को भस्म किया। मोह को जीत लेने पर ज्ञानायरण, दर्शनावरण, अन्तराय नामकं घाती कर्म शत्रुओं का नाश किया और फिर निर्मल केवलज्ञान दर्शन प्राप्त कर सर्वज्ञ बने। (चित्र A-1)

केवलज्ञान होने पर उसी आम्र वृक्ष के नीचे देवताओं ने समवसरण की रचना की। हज़ारों देव-मानव धर्म सभा में उपस्थित हुए। प्रथम धर्म देशना में राग-द्वेष रूपी शत्रुओं को विजय करने पर प्रभू ने विस्तृत प्रवचन दिया।

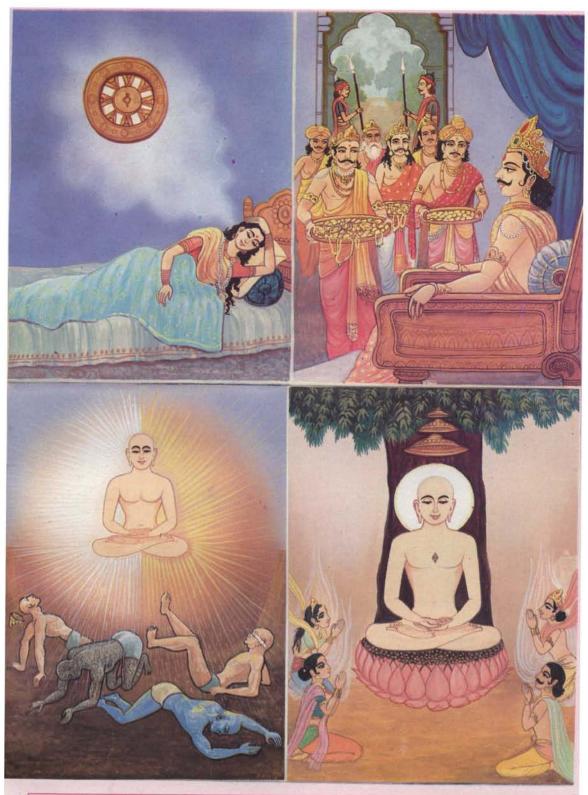
आपके प्रथम प्रवचन में ही हजारों व्यक्तियों ने मुनि धर्म ग्रहण किया। ३२ गणधर हुए जिनमें मुख्य गणधर थे-कुंभ!

८४ हजार वर्ष का आयुष्य भोगकर भगवान अरनाथ ने सम्मेदशिखर पर निर्वाण प्राप्त किया।

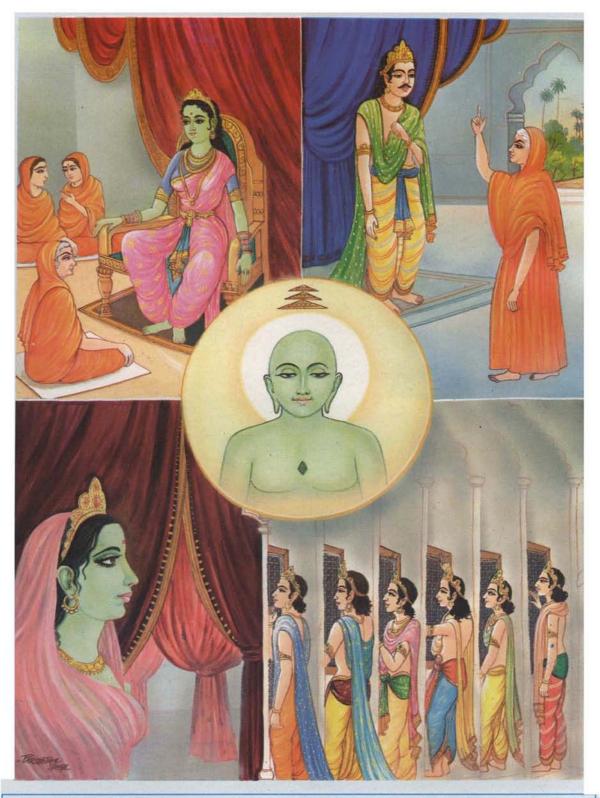
भगवात अरनाथ के तीर्थ में निर्वाण के पश्चात छठे, सातवें वास्देव तथा बलदेव एवं आठवें सुभूम नामक चक्रवर्ती हए।

18. BHAGAVAN ARNATH

King Dhanpati of Susima city in Mahavideh area took Diksha from Samvar Muni and after acquiring Tirthankar-nam-and-gotra-karma he reincarnated in the Graiveyak dimension of gods. From there he descended into the womb of



A 1 तीर्थंकर अरनाथ का अवतरण, चक्रवर्तीत्व, घातिकर्म क्षय कर कैवल्य तथा निर्वाण प्राप्ति। The states of descent, sovereignty, omniscience after destroying Ghatikarmas, and liberation of Tirthankar Aranath



ML 1 (अ) चोखा परिव्राजिका का मल्लीकुमारी के सामने उपदेश (व) कुद्ध चोखा का राजा जितशत्रु के समक्ष मल्लीकुमारी का सौन्दर्य वर्णन (स) छः राजाओं द्वारा मल्लीकुमारी की मूर्ति को निहारना
(a) Mendicant Chokha preaching before mallikumari (b) Annoyed chokha describing the beauty of Mallikumari before king Jitshatru (c) The six kings admiring the statue of Mallikumari



सुपार्श्व











वासुपूज्य

queen Maha Devi, wife of king Sudarshan of Hastinapur. Besides the fourteen great dreams that precede the conception of a Tirthankar, queen Maha Devi also saw a gem studded wheel (Ara). Accordingly, after the birth the boy was named Ara Kumar.

When Ara Kumar became young he was married to many beautiful princesses. Later king Sudarshan gave the kingdom to Ara Kumar and became an ascetic. For some years Arnath ruled as a regional king. Gradually his power and glory increased and one day the disc weapon appeared in his armoury. He conquered the six continents and became a Chakravarti. In his attendance were thirty two thousand kings.

After a long and successful reign, one day Emperor Arnath was thinking about the ever changing seasons. This triggered a chain of sublime thoughts that lead to complete detachment. He renunciated all the wealth, power and glory and became an ascetic. He did spiritual practices and wandered around. After three years he arrived in the Sahasramra jungle outside Hastinapur and stood in meditation under a mango tree. With the fire of higher meditation he burnt one after another the four vitiating Karmas including illusory, knowledge obstructing, perception obstructing, and power hindering. Consequently he attained omniscience. His first discourse after attaining omniscience was on the subject of "how to win over the enemies like attachment and aversion". (A-1)

In this first religious assembly thousands of individuals became ascetics including his 32 chief disciples headed by Kumbh. Spending a long period of twenty one thousand years wandering and promoting religion, he finally arrived at Sammetshikhar and attained liberation.

The sixth and seventh Vasudevas and Baldevas and the eighth Chakravarti (Subhum) were his followers.

१९. भ्रशवान महीनाध

अपरिवदेह की सिललावती विजय में वीतशोका नामक नगरी थी। यहाँ के राजा महाबल अत्यन्त पराक्रमी और बहुत प्रभावशाली थे। उनके छह अन्य बालसखा मित्र थे। सभी में घनिष्ट मित्रता थी।

एक बार श्रमणों के सत्संग से महाबल राजा को वैराग्य हुआ। उन्होंने अपने छहीं मित्रों से कहा—''मैं तो संसार त्यागकर दीक्षा लेना चाहता हूँ। तुम्हारी क्या इच्छा है?''

छहों मित्र बोले-''हम सुख-दुःख में हमेशा साथ रहे हैं। सुख-भोग में साथ रहने वाला त्याग-मार्ग में पीछे रहे तो यह मित्रता के लिए लज्जा की बात है। हम साथ ही मुनि-दीक्षा लेंगे और साथ-साथ तप आदि करेंगे।''

भगवान मझीनाथ

(६९)

Bhagavan Mallinath















J

ध्वजा

9

पद्म सरोवर

(

विमान-

विमान-भवन



रत्न राशि

निर्धम

निर्धूम अग्नि

Rife

छह मित्र एवं महाबल राजा, यों सातों ने दीक्षा ले ली। तप आदि करने लगे। महाबल मुनि के मन में अपने विगत जीवन का गर्व जाग उठा—''मैं हर बात में अपने मित्रों से ऊँचा और बढ़-चढ़कर रहा हूँ, अब यदि तप-साधना में समान रहा तो आगे भी समान ही रहूँगा।'' अपनी अलग विशेषता रखने की भावना से महाबल मुनि ने गुप्त रूप से तप करना प्रारंभ किया। सातों मित्र साथ में तप का प्रत्याख्यान करते, किन्तु जब छहों मित्र पारणा के लिए आहार ले आते तो महाबल मुनि कुछ न कुछ बहाना बनाकर अपना तप आगे बढ़ा देते। पारणा नहीं करते। इस प्रकार तपश्चरण में भी प्रतिस्पर्धा चलने लगी और उसका कारण था—दूसरों से स्वयं को विशिष्ट रखने की गर्व भावना। इस प्रकार मित्रों के साथ कपट (माया) करने के कारण उत्कृष्ट तपोबली महाबल मुनि अपनी विशुद्ध भाव श्रेणी से नीचे गिर गये। मायाचार के कारण ''स्त्रीवेद'' का बंध कर लिया। किन्तु फिर भी उनके मन में तप-त्याग-ध्यान आदि की उच्चतम भावना रही, इस उत्कृष्ट भाव-विशुद्धि के कारण आगे जाकर तीर्थंकर-नाम-कर्म का भी बंध कर लिया। वहाँ पर सातों ही मुनियों ने दो मास का संथारा करके देह त्यागी और अनुत्तर विमान में अहमिन्द्र बने।

gun

अनुत्तर विमान से ३२ सागरोपम का देव आयुष्य पूर्णकर छहों मित्र अलग-अलग देशों के राजकुमार बने।

मल्लीकुमारी का जन्म

मिथिला के कुंभ राजा की महारानी प्रभावती के गर्भ में महाबल के जीव ने जन्म लिया। गर्भ के तीन महीने वाद रानी प्रभावती के गन में एक दोहद उत्पन्न हुआ। "पाँचों रंग के सुगंधित पुष्पों की सजी हुई शय्या हो और मैं उत्तम सुगंधित मल्लदाम (गुच्छा-गुलदस्ता) सूँघती रहूँ।" पुण्यशाली आत्मा के पुण्य से सभी मन इच्छित पूर्ण होते हैं। रानी का दोहद भी पूर्ण हुआ। मार्गशीर्ष शुक्ला एकादशी के अर्ध रात्रि के समय रानी के गर्भ से एक महान् पुण्यशाली अत्यन्त रूपवती कन्या ने जन्म लिया। तीर्थंकर का स्त्री शरीर में जन्म लेना सभी के लिए आश्चर्यकारक था, परन्तु कर्मबन्ध को स्वयं अनन्त बलशाली भगवान भी नहीं टाल सकते।



लक्ष्मी

मल्लदाम (गुलदस्ता) के दोहद के कारण राजकन्या का "मल्लीकुमारी" नाम रखा गया। मल्लीकुमारी को स्नान के बाद अत्यन्त सुगंधित और सुन्दर मल्लदाम (गुलदस्तों) का शौक था। राजकुमारी का शौक पूरा करने के लिए देश-देश के मालाकार अद्भुत-अद्भुत गुलदस्ते बनाकर लाते, राजकुमारी को भेंट कर मनमाना पुरस्कार पाते। मल्लीकुमारी के मल्लदाम के गुलदस्तों की विचिन्न-विचिन्न कहानियाँ देश-विदेश में प्रसिद्ध हो गई।

दिव्य कुण्डल

चन्द्र

एक बार चम्पा नगरी का प्रसिद्ध धनाढ्य व्यापारी अर्हन्नक अनेक लोगों के साथ समुद्र यात्रा पर गया! विदेशों से खूब धन वैभव कमाकर लौटते समय समुद्र के वीच जिनधर्म द्वेषी देव ने श्रावक अर्हन्नक की धर्म दृढ़ता की परीक्षा लेने के लिए अत्यन्त भयंकर उपसर्ग किये। भय, यातना, प्रलोभन आदि अनेक प्रकार के मारणांतिक प्राणधाती कष्ट देकर अर्हन्नक को जिनधर्म त्यागने के लिए मजबूर किया। परन्तु अर्हन्नक को मृत्यु स्वीकार थी, धर्म छोड़ना नहीं। उसकी धर्म दृढ़ता पर प्रसन्न होकर देवता ने उसे दिव्य कुण्डलों की जोड़ी भेंट स्वरूप दी।

सूर्य

Illustrated Tirthankar Charitra

(90)

सचित्र तीर्थंकर चरित्र

विमल









अर









शीतल श्रेयांस



सरोवर

समुद्र

विमान-

भवन

स्ल राशि

निर्धूम

अग्नि

श्रावक अर्हन्नक का जहाज लौटते समय मिथिला के बंदरगाह पर रुका। व्यापारियों ने कुंभ राजा के राज-दरबार में विविध प्रकार के उपहार भेंट किये। अर्हन्नक ने राजकुमारी मल्ली के लिए वे देवनामी दिव्य कुण्डल भेंट किये, जिन्हें देखकर राजा एवं समस्त दर्शकगण विकित रह गये।

एक बार उन दिव्य कुण्डलों की एक संधि (जोड़) टूट गई। राजा कुंभ ने कुशल स्वर्णकारों को संधि जोड़ने के लिए दी। परन्तु कोई भी कुशल कलाकार वह कुण्डल जोड़ नहीं सका। इस बात से राजा राज्य के प्रमुख स्वर्णकारों पर रुष्ट हो गये और उन्हें धिकारा-"तुम कैसे कारीगर हो? एक कुण्डल भी नहीं जोड़ सके। ऐसे व्यर्थ के कलाकारों से मुझे कोई काम नहीं। चले जाओ, मेरे राज्य से बाहर।"

राजा द्वारा निष्कासित कलाकार अन्य देशों में चले गये। वे जहाँ भी जाते मल्लीकुमारी के अद्वितीय रूप सौन्दर्य की चर्चा करते रहते।

कलाकार की मुर्खता

एक बार मल्लीकुमारी के छोटे भाई मल्लिदिन्न ने अपने राजमहल में एक अदुभूत रंगशाला (चित्रशाला) वनवाई। उन चित्रकारों में एक अद्भुत कुशल चित्रकार भी था। उसने राजमहलों के गवाक्ष की जाली में से एक बार राजकुमारी मल्ली के पाँव का अँगूठा देख लिया। उसने राजकुमारी का हबह आदमकद चित्र दीवार पर बना दिया। सोचा, अपनी बहिन का हुबहू चित्र देखकर राजकुमार प्रसन्न होंगे, और मुझे मुँह माँगा पुरस्कार देंगे।

चित्रशाला के पूर्ण होने पर राजकुमार अपनी रानियों के साथ रंगशाला के शृंगार रसों से परिपूर्ण चित्रों का अवलोकन कर रहा था। अचनाक मल्लीकुमारी के चित्र पर कुमार की दृष्टि पड़ी, उसे भ्रम हो गया। लज्जा का अनुभव करते हुए बोला-''अरे ! मेरी माता समान पूजनीया बहिन यहाँ उपस्थित है और मैं इस प्रकार के चित्र देख रहा है?'' उसकी धायमाता ने बताया-''कुमार ! उत्पको भ्रम हो गया है, यह पूजनीया ज्येप्ठ भगिनी नहीं, उनका चित्र है !'' कुमार ने सावधानी से देखा, तो वह एक साथ आश्चर्य और क्रोध के भावों से विचलित-सा हो गया। आश्चर्य था-ऐसी कुशल कला पर; जो चित्र जीवन्त-सा प्रतीत हो रहा था, किन्तु क्रोध था, उस चित्रकार की दुर्वुद्धि पर कि उसने रंगशाला में मेरी पूजनीया बहिन का एकदम जीवन्त-सा चित्र यह कैसे बना दिया? क्या उसने कभी मेरी माता समान बहिन को इतनी गहराई से देखा है कि उसके नख-शिख का साक्षात् रूप चित्रित कर दिया?

क्रोंशित राजकुमार ने चित्रकार को बुलाया, पूछने पर उसने निवेदन किया-''मैंने तो जाली से सिर्फ राजकुमारी के पाँव का अँगूठा ही देखा है, परन्तु मुझे चित्रकला-लब्धि प्राप्त होने से तूलिका स्वयं चलती है और साक्षातु स्वरूप अंकित कर देती है।''

चित्रकार के कथन पर भी राजकुमार का क्रोध शांत नहीं हुआ। उन्होंने चित्रकार का अँगूठा कटवाकर उसे देश निकाला दे दिया।

खिसियाये हुए चित्रकार ने राजकुमारी का दूसरा चित्र बनाकर हस्तिनापुर के राजा अदीनशत्रु को भेंट किया! सम्मान में भरपूर पुरस्कार प्राप्त हुआ। अब हस्तिनापुर आदि क्षेत्रों में भी मल्लीकुमारी के अद्वितीय रूप सौन्दर्य की चर्चा होने लगी। अदीनशत्र मल्लीकुमारी के रूप सौन्दर्य पर आकृष्ट हो गया।

भगवान महीनाथ

(90)

Bhagavan Mallinath





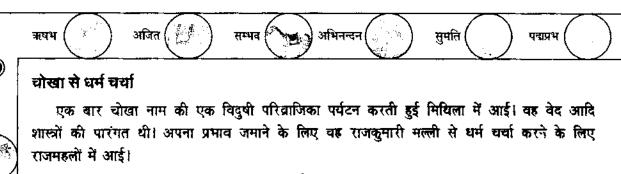
अरिष्टनेमि



महावीर

मल्लि





राजकुमारी ने पूछा-"तुम्हारे धर्म का मूल क्या है?"

परिव्राजिका--''श्र्विता (स्नान आदि कर्म) से पवित्र रहकर धर्म साधना करना ही हमारा धर्म है।"

मल्लीक्मारी ने कहा-"धर्म का मूल एक ही है-त्याग ! त्याग से मन की शुद्धि तो स्वतः ही हो जाती है। बाह्य शुद्धि मात्र से मनुष्य की आत्मा का कल्याण नहीं हो सकता। राजकुमारी की तर्क एवं युक्तिसंगत विवेचना से परिव्राजिका पराजित-सी होकर चली गई। परन्तु उसने इस पराजय का बदला लेने की गाँठ बाँध ली। (चित्र ML-1/अ)

चोखा परिव्राजिका एक बार पांचाल जनपद के राजा जितशत्रु के अन्तःपुर में गई। प्रसंगवश राजा ने अपनी रानियों के रूप-लावण्य की प्रशंसा की, तो हँसकर चोखा ने कहा-"राजन् ! आप तो अभी कूप-मंड्क हैं। संसार में त्रिलोक सुन्दरी तो एक ही है। मिथिला की राजकुमारी-मल्ली। उसे पाओ तो जानें।" (चित्र ML-1/ब)

पांचाल-नरेश भी मल्लीकुमारी के सौन्दर्य की चर्चा सुनकर उसकी तरफ आकर्षित हो गए। छह राजाओं को प्रतिबोध

पूर्व-जन्म के जिन छहों मित्रों ने भिन्न-भिन्न स्थानों पर राजकुल में जन्म लिया था वे यूवा होने पर राजा बने। जिनके नाम हैं--

- साकेतपुर का राजा प्रतिबुद्धि,
- २. चम्पा का राजा चन्द्रछाय,
- ३. श्रावस्ती का राजा रूपी,
- ४. वाराणसी का राजा शंख.
- ५. हस्तिनापुर-नरेश अदीनशत्रु, तथा
- ६. पांचाल-नरेश जितशत्र्।

छहों राजाओं ने मिन्न-मिन्न माध्यमों से राजकुमारी मल्ली के अद्वितीय सौन्दर्य की चर्चा सुनकर मिथिला नरेश कुंभ के पास विवाह प्रस्ताव भेजा।

मिथिलापित कुंभ जानते थे मल्लीकुमारी एक अलीकिक आत्मा है। देव-देवेन्द्रों द्वारा पूज्य तीर्यंकर बनने वाली है। वह संसार के इन भोगों में कभी भी लिप्त नहीं होगी। अतः उन्होंने सभी छहों राजाओं के दूतों को उनकी अज्ञानता पर हँसते हुए लीटा दिया।

Illustrated Tirthankar Charitra

(92)

सचित्र तीर्थंकर चरित्र

सूर्य

सिंह

वृषभ

लक्ष्मी

पुष्पमाला

चन्द्र





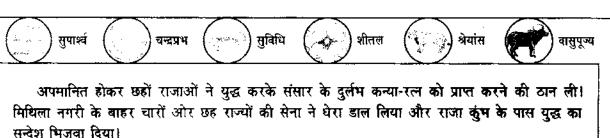












अचानक चारों तरफ से शत्रु सेना से धिर जाने की खबर मिलने पर महाराज कुंभ चिंतित हो उठे। भगवती मल्ली ने पिताश्री को चिंतित देखा तो कारण पूछा ! पिता ने कहा—''पुत्री ! तेरे ही कारण यह संकट आया है? अब इससे किस प्रकार निपटें, यही मेरी चिंता का विषय है?''

भगवती मल्ली तो जन्मजात अवधिज्ञानी थे। उन्होंने कहा—''पिताश्री ! आप चिंता न कीजिए। मैं तो पहले से ही यह सब जानती थी कि एक दिन यह होने वाला है। इसका उपाय भी मेरे पास है। आप छहों राजाओं को अलग-अलग विवाह आमंत्रण दीजिए और उन्हें अपनी अशोक वाटिका के मोहन-गृह में अलग-अलग कक्षों में ठहरा दीजिए। आगे सब मैं स्वयं सम्हाल लूँगी।''

भगवती मल्ली ने पूर्व योजनानुसार अशोक वाटिका में एक मोहन-गृह बनवाया था। जिसमें छह सुन्दर कक्ष थे। प्रत्येक के बीच में जाली लगी हुई थी। कमरों में सुन्दर सिंहासन लगे थे।

उस मोहन-घर के छह कक्षों के मध्य में एक स्वर्ण पीठिका पर राजकुमारी ने अपनी सुन्दर साक्षात् स्वर्ण प्रतिमा बनवाकर स्थापित कर दी थी। प्रत्येक कक्ष में बैठा व्यक्ति इस स्वर्ण प्रतिमा को देख सकता था, परन्तु वे परस्पर एक-दूसरे को नहीं देख सकते थे। इस स्वर्ण प्रतिमा के सिर पर एक ढक्कन लगा था। राजकुमारी प्रतिदिन भोजन करके भोजन का एक ग्रास प्रतिमा का ढक्कन खोलकर उसमें डाल देती और फिर ढक्कन से बंद कर देती। इस प्रकार वह भोजन प्रतिमा के भीतर पड़ा सड़ने लगा। उसमें असह्य दुर्गन्य पैदा हो गई। देखने वाले चिकत थे कि राजकुमारी यह क्या कर रही हैं? परन्तु सभी जानते थे कि राजकुमारी परम बुद्धिमती हैं, जो भी कुछ कर रही हैं, उसके पीछे भविष्य की कोई उलझी गुत्थी सुलझाने का प्रयोजन छिपा होगा।

योजनानुसार छहों राजाओं को मोहन-गृह के सुन्दर रमणीय कक्षों में ठहरा दिया। राजकुमारी की स्वर्ण प्रतिमा को देखकर सभी राजा मोहित थे कि राजकुमारी हमारे सामने ही खड़ी है, अभी हमसे प्रेम के दो बोल बोलेगी। (चित्र ML-1/स)

मल्लीकुमारी भी अपनी सेविकाओं के साथ मोहन-घर में आई और छिपकर एक तरफ खड़ी हो गई। कुमारी के संकेत पर दासी ने प्रतिमा का ढकन खोल दिया। एकदम भयंकर दुर्गन्ध फैलने लगी। कुछ ही क्षणों में अलग-अलग कक्षों में बैठे राजाओं का दुर्गन्ध के मारे दम घुटने लगा। बाहर से उनके द्वार बन्द थे। उन्होंने नाक बन्द कर ली और असहा दुर्गन्ध से घबराकर पुकारने लगे—"यह क्या हो रहा है? मुझे बन्द क्यों कर दिया? मेरा दम घुट रहा है। द्वार खोलों!" अचानक भगवती मल्ली उनके समक्ष उपस्थित हुई और सम्बोधित किया—"विषयांध नारी प्रेमियों! थोड़ी देर पहले आप सब इस प्रतिमा को एकटक निहार रहे थे। इसकी सुन्दरता पर मुग्ध हो रहे थे और इसे पाने को आतुर! और अब "" अब उसी से घृणा करके नाक बन्द कर लिया? और भागने के लिए उतावले हो रहे हो? यह कैसा सौन्दर्य-प्रेम है आपका?"

सभी राजाओं ने एक साथ चीखकर कहा-''हमसे यह मजाक क्यों कर रही हो? यह दुर्गन्ध हमसे सही नहीं जाती?''

भगवान मञ्जनाथ (७३) Bhagavan Mallinath

अरिष्टनेमि एगर्स्व

ध्वजा



कुम्भ



समुद्र



विमान-भवन



रत्न राशि













ऋषभ 🕒 अजित 🕡 सम्भव 🔪 अभिनन्दन 🕠 सुमित पदाप्रभ

भगवती मल्ली के संकेतानुसार दासियों ने कक्ष के द्वार खोले। छहीं राजा एक-दूसरे को देखकर चिकत थे। तब भगवती मल्ली ने उन्हें उद्बोधन दिया। पूर्व-जन्म का वृत्तांत सुनाया! तो उन्हें भी पूर्व-जन्म का जाति-स्मृति ज्ञान हो गया। ज्ञान होने पर छहीं राजाओं ने भगवती मल्ली से क्षमा माँगी—''अब हमारे सिर पर से मोह का भूत उतर गया। हमें प्रतिबोध दो। हम भी आपके साथ संसार न्यागकर अपनी आत्मा का कल्याण करेंगे।''

छहों राजाओं ने राजा कुंभ से क्षमा माँगी। फिर अपने-अपने पुत्रों की राज्य-भार सौंपकर दीक्षा लेने की तैयारी की! भगवती मल्ली के साथ अनेक स्त्रियों, पुरुषों और राजकुमारों ने भी दीक्षा ली। दीक्षा लेते ही मल्ली भगवती को विपुलमित मनःपर्यवज्ञान उत्पन्न हुआ और उसी दिन सायंकाल केवलज्ञान, केवलदर्शन प्राप्त कर तीर्थंकर बने। भगवान ने अपनी प्रथम धर्म देशना में ''समता धर्म'' पर प्रवचन दिया। प्रथम समवसरण में ही छहों राजाओं ने दीक्षा ग्रहण की। अन्त में सम्मेदिशखर पर चैत्र शुक्ला चतुर्थी के दिन भगवान मल्लीनाथ ने निर्वाण प्राप्त किया।

19. BHAGAVAN MALLINATH

In the Aparvideh area there was a city named Vitshoka. It was ruled by a powerful king Mahabal. He was very intimate with six other kings who were his childhood friends. Influenced by discourses of ascetics, king Mahabal decided to follow the spiritual path. He sought opinion of his six childhood friends with the remark—I want to become an ascetic, do you also?

All the six friends replied, "We have been together during both good and bad times. When we have enjoyed the mundane life in company, it would be shameful if we part company on the spiritual path. We shall become ascetics together and we shall do all spiritual practices together."

The seven kings took Diksha from Varadharma Muni and started the spiritual practices earnestly. Mahabal was bitten by the bug of ego. He thought, "I have always been ahead of my friends. Now, if I do the same practices I will remain at the same level. As such I should do a little more and be ahead as before." With this feeling Mahabal started secretly doing more practices than the others. All the seven friends would formally take vow of some specific penance together but when on conclusion, other friends broke their fast, Mahabal would continue his fast on some pretext. The desire to be above the ordinary inspired this competition. As a result of this deception Mahabal fell from the lofty spiritual level he had attained due to his intense practices and acquired the Karma that would result in being born as a woman (Stri-ved). However, as he still maintained the purity and intensity in his practices he later also earned the

Illustrated Tirthankar Charitra

७४)

सचित्र तीर्थंकर चरित्र

विमल 🤃

सिंह

वृषभ

लक्ष्मी

पृष्पमाला

चन्द

सूर्य

अनन्त















Tirthankar-nam-and-gotra-karma. All the seven ascetics breathed their last after sixty days fast and meditation. They reincarnated as gods in the Anuttar dimension.

Birth of Malli Kumari

The being that was Mahabal, leaving the abode of gods, descended into the womb of queen Prabhavati, wife of king Kumbh of Mithila town. During the third month of pregnancy the queen had a desire to sleep on a bed made up of fragrant flowers of five colours and to smell a bouquet of flowers (Malladam) all the time. It is said that if a pious soul resides in the womb all the desires are fulfilled. On the eleventh day of the bright half of the month of Margshirsh the queen gave birth to a pious and beautiful girl. It was unprecedented that a Tirthankar be born as a girl; everyone was surprised. But even the almighty is helpless when the Karmas precipitate into action.

The mother's craving for flower bouquet inspired the king to name the girl as Malli Kumari. She was very fond of having a bouquet of flowers. Florists from far and near used to bring attractive and beautiful bouquets to present her and get desired gifts in return. Strange yarns about her infatuation for flowers and bouquets spread all around.

Divine Earings

Once a famous and rich merchant, Arhannak, of Champa town, went on a sea voyage with some other people. After earning heaps of wealth when he was returning, a god appeared. In order to test Arhannak's devotion for his religion, the god created a variety of afflictions. Even in the face of death Arhannak did not yield. His devotion for the path shown by Jina was absolutely unwavering. The god was pleased with this unrelenting determination of Arhannak. He gave the merchant a pair of divine earings as gift.

On the way back the ship stopped at Mithila. All the merchants went to king Kumbh's assembly with gifts. Arhannak gifted the divine earings for Malli Kumari. The king and his ministers became astonished at the divine beauty of these earings. Once a joint in these earings broke. King Kumbh called expert goldsmiths to weld this joint but none of the artisans had skill enough to do this work. In annoyance the king exiled many of these artisans. Wherever these artisans went they talked of the divine beauty of Malli Kumari.

Ignorant Artist

Once Mallidinna, the younger brother of Malli Kumari, constructed an entertainment room in the palace premises. One of the working artists was highly talented. This artist had a glimpse of a toe of Malli Kumari who was

भगवान माञ्जीनाथ (७५) Bhagavan Mallinath















महाबीर



ध्यजा



कुम्भ



















ऋषभ अजित सम्भव अभिनन्दन समित पदाप्रभ

standing behind a lattice. This enabled the highly gifted artist to paint a frescoe of the princess on a wall of the room. He was under the impression that the prince will be pleased to look at the exact replica of his sister and richly reward him.

When the room was complete, the prince came with his wives to look at and approve the beautiful paintings, some of which were erotic as well. While he was enjoying these works of art, he came across the painting of Malli Kumari. He could not believe what he saw. Ashamed of himself he said, "My elder sister is here and I am shamelessly enjoying these sensual paintings alongwith my wives." His governess explained, "Prince, You are mistaken. This is not your sister but her life size portrait." The prince carefully examined the painting and was astonished at the realistic work of art and the skill of the artist. However, a feeling of anger overtook the sense of appreciation. He was annoyed at the mindless affrontary of the artist who had painted such a live portrait of his respected elder sister in the entertainment chamber.

The angry prince called the painter and asked him when and how he saw the princess. The artist humbly submitted, "Sire! I just saw one toe of the princess from behind a lattice. But I am endowed with this miraculous skill that when I start painting even a part of a thing I automatically complete the thing perfectly."

This explanation did not pacify the prince. He exiled the artist after amputing his right thumb. The vexed artist made another painting of the princess and sold it at a very high price to king Adinshatru of Hastinapur. Adinshatru was attracted towards Malli Kumari, as many others who had heard about her divine beauty.

Discussion with Choksha

One day a female mendicant named Choksha came to Mithila. In order to influence the royal family she came to Malli Kumari. Choksha was a scholar of Vedas and other scriptures and her interpretation was that keeping the body clean, indulging in charity and the annointment of Tirth (sacred place) were the only religious activities that lead to liberation. She started preaching her ideas to Malli Kumari, who heard all this with patience. When Choksha had nothing more to say, Malli Kumari said in her magnetic voice, "With due respect to your attire, I am surprised at your ignorance, Choksha. Know that every charity is not done with religious or pious intent. Even cleaning the body and annointment of a Tirth are not sacred if they are not done with equanimous and pious feelings or if they cause any destruction of any living organism. A blood stained cloth can never be cleaned by washing it with blood. The basis of religion is a discerning attitude. To an irrational person, even penance causes discomfort and irritation."

Illustrated Tirthankar Charitra (७६) सिम्नत्र तीर्थंकर चरित्र

विमल (े)

सूर्य

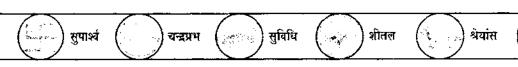
अनन्त 🏈 🕽











This irrefutable logic of Malli Kumari silenced Choksha, but she became angry and decided to take revenge. (ML-1/a)

Choksha decided that, in order to shatter the pride of this princess it would be best if she could be manipulated into marrying some king who already had many wives. Cooking up her plan, she approached the king of Kampilyapur in Panchal state. She gave a titilating description of the divine beauty of Malli Kumari and provokingly said to the king, "Your life and palace both are lacklustre as long as you do not marry and bring this divine beauty to your palace." King Jitshatru was highly impressed. He decided to seek the hand of Malli Kumari in marriage. (ML-1/b)

Change of Heart of the Six Kings

The six friends of Malli Kumari's earlier birth were born in six different royal families and inherited the kingdoms. They were—

- 1. King Pratibuddha of Saketpur,
- 2. King Chandrachhay of Champa,
- 3. King Rupi of Shravasti,
- 4. King Shankh of Varanasi,
- 5. King Adinshatru of Hastinapur, and
- 6. King Jitshatru of Panchal (Kampilyapur).

The fame of the beauty of Malli Kumari inspired all these six kings to send proposals of marriage to king Kumbh. King Kumbh was aware of the fact that Malli Kumari was the future Tirthankar. She was to be the omniscient that is worshipped even by kings of gods. She would never indulge in such mundane ties as marriage. He laughed at the ignorance of the proposing kings and returned the emissaries. These kings felt insulted and marched on Mithila with their armies and lay a seize.

When king Kumbh got the challenge he became worried. Malli Kumari asked about the cause of her father's anxiety. Kumbh replied, "Daughter! All these kings want to marry you. My refusal has irked them and they have surrounded Mithila. I am anxious about what should I do now!"

Malli Kumari was already aware of all these activities through her Avadhi Jnan (the capacity to know all about the physical world). She made a plan to enlighten these friends of her last birth. In the palace garden she got a chamber made and in its centre installed a life size statue that was her exact replica. Its inside was hollow and there was an opening hidden under the neck. Six adjacent chambers were also erected around this central circular chamber. These six chambers had windows opening in the main chamber. These windows were so

भगवान मल्लीनाथ (७७)

Bhagavan Mallinath



मल्लि (













महावीर



वासुपूज्य





कुम्भ



सरोवर



समुद्र



विमान-भवन

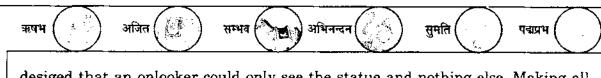


रत्न राशि









desiged that an onlooker could only see the statue and nothing else. Making all these arrangements, Malli Kumari started putting one handful of the food she ate every day inside the hollow statue.

When the stink of decomposed food, coming out of the statue on opening the lid became intolerable, Malli Kumari went to her father. She said to her father, "Stop worrying, father, and inform the kings individually that I want to meet them to discuss about marriage." The king did likewise. Believing that only he had been invited, everyone of the kings accepted the invitation. At the predetermined time they all came one by one and were led to the six chambers allotted for them separately. From the windows in their chambers each one of them gazed at the divinely beautiful statue considering it to be Malli Kumari. Everyone was dreaming of the marriage and the happy moments thereafter. All of a sudden Malli Kumari removed the concealed cover from the hole in the neck of the statue. The obnoxious smell of decomposed food filled the chambers. The hettish smell hit the peeping kings and they were jolted out of their state of day dreaming. Their faces distorted with revulsion.

Panic stricken, the kings shouted, "What is all this? Why have I been locked in this chamber? It is impossible to breath here. Please open the doors." It was then that Malli Kumari appeared and said, "O slaves of passions! You are totally infatuated with female beauty. A moment ago you were admiring this earthly beauty and were nurturing a desire to possess and enjoy it. Now a hatred for the same is evident on your distorted faces. What sort of love for beauty is this?"

The kings shouted, "Why are you trying to make fools of us? It is impossible to tolerate this stink?"

Malli Kumari asked the attendants to open the gates of the chambers. All the six kings rushed out and were surprised to see each other. Finding the right opportunity Malli Kumari said to them, "The stink caused by just a few handfuls of food is intolerable. Mind you, this body is nothing but a statue made of bones and flesh and maintained by the same food. Why such infatuation for such decomposable thing? You are all friends of my last birth. Rise above this infatuation and commence once again the terminated pursuit of purification of the self." (ML-1/c)

All the six kings acquired Jati-smaran Jnan. They sought pardon from king Kumbh as well as Malli Kumari. Resolving to follow the path of renunciation they left for their respective kingdoms.

Malli Kumari also announced her decision to become an ascetic. After the great charity she became an ascetic alongwith three hundred males and equal number of females. Immediately after her Diksha, she acquired Vipulmati Manahparyav Jnan (the ultimate para normal capacity) and started deep meditation. The same afternoon she attained omniscience. In her first discourse

सचित्र तीर्थंकर चरित्र ७८) Illustrated Tirthankar Charitra



सूर्य

सिंह























वासुपूज्य

she discussed on the subject of philosophy of equanimity. The six kings took Diksha during this first discourse. After enhancing the spread of religion for a long period she attained Nirvana on the fourth day of the bright half of the month of Chaitra at Sammetshikhar.



२०. भ्रगवान मुनिसुव्रत

राजगृह के हरिवंशी राजा सुमित्र की महारानी थीं पद्मावती। चौदह महास्वप्न देखकर रानी ने ज्येष्ठ कृष्णा नवमी के दिन महानु पुण्यशाली पुत्र को जन्म दिया।

पूत्र जन्मोत्सव एवं नामकरण के समय राजा ने घोषणा की-''जब से यह पुत्र माता के गर्भ में आया तब से रानी ने विविध प्रकार के व्रत नियम धारण किये और मूनि की तरह त्याग संयममय जीवनचर्या बिताती रही हैं, इस कारण हम पुत्र का नाम ''मुंनिसुव्रत'' रखना चाहते हैं।

युवा होने पर मुनिसुव्रत का पाणिग्रहण हुआ, फिर राज्याभिषेक। जीवन के उत्तरार्ध काल में महाराज मुनिसुब्रत ने राज्य त्यागकर फाल्गुन कृष्णा अप्टर्मा के दिन दीक्षा ग्रहण की। ग्यारह मास के छद्मस्थ काल पश्चात् चम्मा वृक्ष के नीचे प्रभु को केवलज्ञान हुआ। देवताओं ने समवसरण की रचना की। भगवान मुनिसुब्रत ने ''श्रुत धर्म एवं चारित्र धर्म'' पर प्रथम प्रवचन किया। चतुर्विध संघ की स्थापना हुई और अन्त में सम्मेद-शिखर पर मोक्ष की प्राप्ति हुई।

भगवान मृतिसुव्रत का शासनकाल जैन पुराण इतिहास की दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण रहा है। इनकी विद्यमानता में नवम चक्रवर्ती महापद्म हुए। इनके बड़े भाई मुनि विष्णुकुमार थे। जिन्होंने नमुचि महामात्य के अत्याचारों से त्रस्त जैन संघ की रक्षा की। जिसकी स्मृति में रक्षाबन्धन पर्व की परम्परा प्रसिद्ध है।

इन्हीं के शासनकाल में प्रतिबासुदेव रावण, मर्यादा पुरुषोत्तम राम (अष्टम बलदेव) तथा वासुदेव लक्ष्मण हए∤

ध्वजा

पद्म सरोवर

समुद्र

विमान-

भवन



राशि



निर्धम अग्नि

20. BHAGAVAN MUNISUVRAT

The being that was to be Bhagavan Munisuvrat purified its soul during his birth as Surshreshtha, the king of Champa city in Mahavideh. He than reincarnated in the Pranat dimension of gods.

King Sumitra of the Harivamsh clan ruled over Rajgriha town. His wife, queen Padmavati, gave birth to a son, the being that had descended from the

भगवान मृनिस्व्रत

(99)

Bhagavan Munisuvrat



मुनिसुव्रत मल्लि

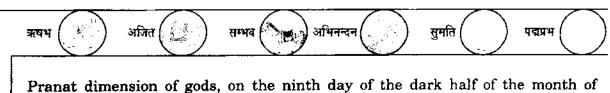












Jyeshtha. After the traditional post-birth rituals the name giving ceremony was celebrated. The king announced that since this being had descended into the womb of queen Padmavati, she took a variety of good vows and lead a life as disciplined as an ascetic. As such the new born be named Munisuvrat (vows like ascetics).

In due course Munisuvrat was married and ascended the throne. After a successful and long reign he became an ascetic on the eighth day of the dark half of the month of Phalgun. He wandered as an ordinary ascetic for eleven months and attained omniscience under a Champa tree. His first discourse was on the subject of "scriptural and applied philosophy". After a long life devoted to spread of true religion he went to Sammetshikhar and got liberated on the ninth day of the dark half of the month of Jyeshtha.

Bhagavan Munisuvrat's period was an important period of Jain pre-history. His illustrious contemporaries and followers included stalwarts like the ninth Chakravarti-Mahapadma, the eighth Prativasudev, Baldev, and Vasudev; Ravan, Rama and Lakshman respectively. The elder brother of Bhagavan Munisuvrat, ascetic Vishnu Kumar, also became famous for his pioneering effort, of saving the Jain organisation from the oppressions of Minister Namuchi; the Rakshabandhan festival is celebrated in the memory of that event.

२१. भ्रशवान नमिनाथ

अपराजित स्वर्ग से च्यवकर एक महान् पुण्यशाली जीव ने मिथिला की राजरानी महादेवी विप्रा के गर्भ में प्रवेश किया। रानी ने १४ शुभ स्वप्न देखकर महाराज विजय को निवेदन किया। स्वप्न पाठकों ने बताया-"महारानी के गर्भ में कोई चक्रवर्ती सम्राट् या धर्म चक्रवर्ती तीर्थंकर का जीव पल रहा है।"

एक बार जब बालक गर्भ में था तब शत्रु राजाओं ने अचानक मिथिला नगरी को चारों तरफ से घेर लिया। शान्तिप्रिय राजा विजय चिन्तित हो उठे। तभी विशिष्ट निमित्त ज्ञानी ने एक उपाय बताया-उसके अनुसार महारानी विप्रा राजप्रासाद की छत पर चढ़ीं और अत्यन्त सौम्य भावों के साथ नगर के चारों तरफ खड़ी शत्रु सेना पर दृष्टि डाली। गर्भस्थ शिशु के शान्तिमय तेजस् परमाणुओं के प्रभाव से माता की दृष्टि में अत्यन्त सौम्यता और तेजस्विता का आविर्भाव हुआ जिसका प्रभाव शत्रु सेना के मन पर पड़ा। शत्रु राजाओं का हृदय बदल गया। विजय करने आये थे, परन्तु स्वयं विजित हो गये और राजा विजय के समक्ष सभी ने समर्पण कर नमन किया।

Illustrated Tirthankar Charitra

60)

सचित्र तीर्थंकर चरित्र











अर

सिंह

वृषभ

लक्ष्मी



पुष्पभाला



सुपार्श्व



(सुविधि



नल 🔍 💫



वासुपूज्य

श्रावण कृष्णा अष्टमी को कनक वर्ण वाले पुत्र का जन्म हुआ। शक्रेन्द्र आदि ने भगवान का जन्म-कल्याणक महोत्सव मनाया।

शत्रु-नमन की उस अद्भुत घटना की स्मृति में बालक का जन्म होने पर माता-पिता ने उनका नाम रखा— "निमनाथ"। यौवन में विवाह हुआ, फिर राज्यामिषेक। दीर्घकाल तक राज्य-भार सँभालने के बाद संसार त्यागकर आषाढ़ कृष्णा नवमी को दीक्षा ग्रहण की। नी मास पश्चात् मिथिला के ही उद्यान में बकुल नामक वृक्ष के नीचे शुभ ध्यान अग्नि से चार घनघाती कर्मों का नाश कर केवलज्ञान प्राप्त किया। सम्यग्दर्शन के स्वरूप पर भगवान की प्रथम धर्म देशना हुई। वैशाख कृष्णा दशमी को सम्मेदशिखर पर भगवान निमनाथ ने मोक्ष प्राप्त किया। आपके समय में दसवें चक्रवर्ती हरिषेण हुए तथा आपके निर्वाण के पश्चात् आपके ही धर्मतीर्थ में ग्यारहवें जय चक्रवर्ती हए।

21. BHAGAVAN NAMINATH

The being that was to be Bhagavan Naminath purified his soul during his birth as king Siddharth of Koshambi town in East Mahavideh. He reincarnated as a god in the Aparajit dimension. This being then descended into the womb of queen Vipra, wife of king Vijay of Mithila. As the queen had seen fourteen auspicious things in her dream at the moment of conception, the augurs informed that the child to be born was going to be a Chakravarti or a Tirthankar.

During the pregnancy period once Mithila was attacked by some very powerful kings. Peace loving king Vijay was at a loss to find a peaceful solution and was worried. An expert augur told the king that the pregnant queen should go to the roof of the palace and look at the attacking armies. The queen followed the instructions and threw a loving glance at the large armies stationed on the fields outside the town. The aura of the pious soul in the womb was so powerful that it cast a pacifying spell on the attackers. The kings who were sure to win the battle, surrendered and bowed before king Vijay.

This incident inspired the king to name the new born as Naminath. Born on the eighth day of the dark half of the month of Shravan, Naminath had a happy childhood. When he became young he was married and later was given the reign of the kingdom. After a long and peaceful reign he became an ascetic on the ninth day of the dark half of the month of Ashadh. After nine months he attained omniscience under a Bakul tree in a garden near Mithila. His first discourse was on the subject of right-perception. After a long period of religious and spiritual activities he went to Sammetshikhar and got liberated on the tenth day of the dark half of the month of Vaishakh.

भगवान नमिनाध

(28)

Bhagavan Naminath



τ



) मुनिसुव्रत











महावीर

ध्यज



कुम्भ









विमान-भवन



रत्न राशि



निर्धूम अग्नि

सुमति

पदाप्रभ

The tenth Chakravarti Harishen was his contemporary and the eleventh Chakravarti Jai came in his religious tradition, though much later.



२२. भ्रगवान अरिष्टनेमि





त्रध्मी



पृथ्यमाला

चन्द्र

सूर्य

भगवान अरिष्टनेमि का जीव पूर्व-भव में "शंख" नाम का राजा था। राजा शंख जितने अदुभूत पराक्रमी बीर थे, उतने ही अधिक दयालु भी थे। जब वे राजकुमार थे तब एक बार उनके राज्य में दस्यू तस्करों का आतंक फैल गया। निरपराध पथिकों को लूटना और उनकी निर्मम हत्या करना, इन तस्करों का धंधा था। राज्य की प्रजा ने राजा श्रीषेण के पास रक्षा की पुकार की, तो राजा ने उन दस्य तस्करों को पकड़ने के लिये सेना को सञ्ज होने का आदेश दिया। तब राजकमार शंख ने स्वयं दस्युओं को पकड़कर आतंक समाप्त करने की जिम्मेदारी ली और अपनी कुशल रणनीति तथा पराक्रम से खून-खरावा किये बिना ही लुटेरे पल्लीपित को पकड़कर पिता के सन्मुख बन्दी बनाकर ले आये। मार्ग में ही उन्हें एक विद्याधर से भी युद्ध करना पड़ा। वह विद्याधर यशोमती नाम की किसी सन्दरी कन्या का अपहरण करके ले जा रहा था। सन्दरी की करुण पुकार पर शंखकुमार ने विद्याधर से युद्ध करके यशोमती को मुक्त कराया। यशोमती के मन में कुमार के प्रति सहज अनुसाग जाग उठा। शंखकुमार ने भी यशोमती को देखा तो उनका मन भी स्नेहसिक्त हो गया। यशोमती का शंखकमार के साथ पाणिग्रहण हो गया।

एक बार शंख राजा ने एक ज्ञानी मुनि से पूछा-"यशोमती के प्रति मेरे मन में इतना गहरा अनुराग क्यों है कि मैं चाहकर भी उसको त्यागकर मुनि-दीक्षा नहीं ले पा रहा हूँ ?" ज्ञानी संत ने वताया-"पिछले छह जन्मों से तुम परस्पर पति-पत्नी के रूप में जन्म लेते रहे हो। यह सातवाँ भव है। इस प्रगाढ़ प्रेम सम्बन्ध के कारण ही यशोमती तुम्हें देखते ही अनुरक्त हो गई थी।"

राजा ने पृष्ठा--"यह प्रगाढ प्रेम बंधन कब ट्टेगा?"

ज्ञानी मृति ने उत्तर दिया-''इसके एक जन्म बाद नीवें जन्म में तुम नेमिनाथ के रूप में और यह राजीमती के रूप में जन्म लेगी। उसी भव में नौ जन्मों की प्रानी प्रीति तोड़कर तुम बाईसवें तीर्थंकर नेमिनाथ बनोगे। राजीमती भी तुम्हारा अनुगमन करके दीक्षा लेगी और मोक्ष प्राप्त करेगी।"

अपने विषय में यह सब-कुछ जानकर शंख राजा का मन विरक्त हो गया। पुत्र की राज्य-भार सींपकर दीक्षा ले ली। अरिहत, सिद्ध, साधु आदि की उत्कृष्ट भक्ति करते हुए तीर्थंकर-नाम-कर्म का उपार्जन किया। अरिष्टनेमि के रूप में जन्म

महाराज शंख का जीव अपराजित विमान में अहमिन्द्र का आयुष्य पूर्णकर हरिवंश के प्रतापी राजा सौरीपुर-नरेश महाराज समुद्रविजय की रानी शिवादेवी के गर्भ में आया। १४ महा शुभ स्वप्नों की सूचना से सभी ने यह जान लिया कि हरिवंश में भावी धर्म चक्रवर्ती तीर्थंकर का जन्म होने वाला है। श्रावण शुक्ला

Illustrated Tirthankar Charitra

(42)

मचित्र तीर्थंकर चरित्र





























वासुपूज्य

पंचमी को शिवादेवी ने भाग्यशाली पुत्र को जन्म दिया। शाश्वत नियमानुसार तीर्थंकर का जन्म होने पर छप्पन दिशा कुमारियाँ आईं, सुतिका कर्म आदि करके भगवान का जन्म उत्सव मनाया। (चित्र AN-I)

बारहवें दिन जन्मोत्सव के निमित्त प्रीतिभोज करके महाराज समुद्रविजय ने बताया—''गर्भकाल में माता ने अरिष्ट रत्नमय चक्रनेमि (रत्नों का चक्र) का दर्शन किया इसलिए बालक का नाम 'अरिष्टनेमि' रखा जाता है।"

भगवान ऋषभदेव आदि २२ तीर्थंकरों का जन्म इक्ष्वाकुवंश में हुआ। किन्तु बीसवें तीर्थंकर मुनिसुव्रत का जन्म हरिवंश में हुआ। उन्हीं के युग में हरिवंश में प्रसिद्ध सत्यवादी राजा वसु (नारद पर्वत की कथा का पात्र) हुआ। युगों बाद इसी हरिवंश में सीरी नाम के प्रतापी राजा हुए, जिन्होंने सौरीपुर नगर बसाया। सीरी राजा के दो पुत्र थे—अंधकवृष्णि तथा भोगवृष्णि। अंधकवृष्णि के दस पुत्र हुए जिनमें समुद्रविजय सबसे बड़े थे और सबसे छोटे थे—वसुदेव।

पूर्व-जन्म की तपस्या के प्रभाव से वसुदेव जी का व्यक्तित्व भी बड़ा सम्मोहक था। वसुदेव जी की बड़ी रानी रोहिणी के एक पुत्र थे-बलराम (पद्म) और छोटी रानी देवकी के पुत्र थे-वासुदेव श्रीकृष्ण। जो क्रमशः नवें बलदेव व नवें वासुदेव हुए।

कंस के कूर कुचक्र, अत्याचारों व प्रतिवासुदेव जरासंध की दुष्ट शासन प्रणाली के कारण उन दिनों भारत का मध्यवर्ती भू-भाग युद्ध व आपसी षड्यंत्रों का अड्डा बन चुका था। इस रात-दिन के संघर्ष व अशान्ति से दूर रहकर शान्तिपूर्वक जीवन-यापन करने की दृष्टि से तथा निमित्त ज्ञानी की भविष्यवाणी के कारण राजा समुद्रविजय, वसुदेव, उग्रसेन, श्रीकृष्ण आदि यादववंशियों ने मथुरा, सौरीपुर आदि को छोड़कर दक्षिण-पश्चिम समुद्र की ओर प्रस्थान कर दिया और सौराष्ट्र प्रदेश में रैवतक पर्वत (गिरनार) के पास आकर विश्राम लिया। यहाँ पर सत्यभामा ने दो युगल पुत्रों को जन्म दिया। देववाणी के आधार पर वासुदेव श्रीकृष्ण ने यहीं पर विशाल द्वारका नगरी का निर्माण करवाया जो अपने वैभव एवं स्थापत्य कला की दृष्टि से स्वर्गपुरी के समान अद्वितीय थी और शत्रुओं के लिए अजेय एवं दुर्भेद्य थी।

अरिष्टनेमि का अद्वितीय बल-पराक्रम

एक बार कुमार अरिष्टनेमि यादव कुमारों के साथ घूमते हुए वासुदेव श्रीकृष्ण की आयुधशाला में पहुँच गये। वहाँ पर वासुदेव का सुदर्शन चक्र, शार्डग, धनुष और पाँचजन्य शंख रखा हुआ था। कुमार अरिष्टनेमि के मन में कुतूहल उठा, उन्होंने पाँचजन्य शंख उठाकर बजा दिया। यद्यपि कुमार अरिष्टनेमि ने शंख को धीमे से बजाया था फिर भी उससे जो ध्वनि विस्फोट हुआ, वह इतना प्रचंड था कि नगर के भव्य भवनों की दीवारें भी धर्राने लगीं और पर्वतमालाएँ प्रतिध्वनि से गूँजने लग गई। अचानक यह कोलाहल सुनकर वासुदेव श्रीकृष्ण दौड़कर आयुधशाला में आये और अपने लघु बंधु कुमार अरिष्टनेमि को बड़ी सहजता के साथ वासुदेव के दिव्य आयुधों के साथ क्रीड़ा करते देखकर स्तब्ध रह गये। वासुदेव ने पूछा—''प्रिय म्रात! क्या यह पाँचजन्य शंख भी आपने ही बजाया?''

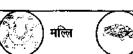
अरिष्टनेमि ने सहजतापूर्वक कहा-"हाँ, भैया ! इसे देखकर बजाने का मन हो गया।"

श्रीकृष्ण एक ओर अपने भाई के अद्वितीय बल पंराक्रम से प्रसन्न थे, तो दूसरी ओर अत्यन्त आश्चर्यचिकत भी। क्योंकि उनकी यह धारणा थी कि संसार में उनके समान दूसरा कोई योद्धा और पराक्रमी

भगवान अरिष्टनेमि

(65)

Bhagavan Arishtanemi













महादीर

ध्वजा



कुम्भ



मुद्र



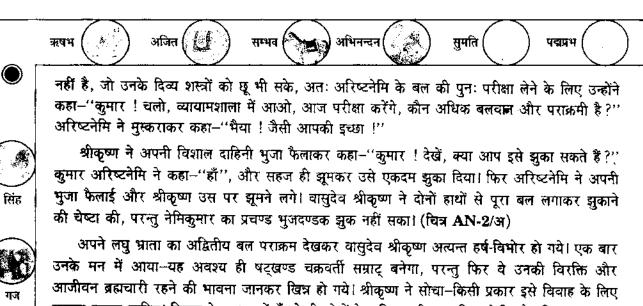
विमान-भवन



रत्न राशि



निर्धूम अग्नि



सहमत करना चाहिए। विवाह के बन्धन में बँधते ही भोगों के प्रति इसकी अनुरक्ति बढ़ेगी और फिर यह संयम की बात भूल जायेगा। श्रीकृष्ण की इस योजना को सफल बनाने की जिम्मेदारी ली सत्यभामा आदि रानियों ने।

एक दिन वसन्त ऋतु में रानियों ने मिलकर अपने प्यारे देवर नेमिकुमार को फाग खेलने के लिए बगीचे में बुला वहाँ हँसी-मजाक के साथ सरोवर में जल-क्रीड़ा करते हुए भाभियों ने देवरानी लाने के लिये नेमिकुमार को मजबूर कर दिया! (चित्र AN-2/ब)

पिता-माता, भाई श्रीकृष्ण आदि सबका अत्यधिक आग्रह देखकर नेमिकुमार विवाह के लिए मौन रहे, तब श्रीकृष्ण ने उनके लिए परम सुन्दरी राजकन्या की खोज चालू की। सत्यभामा ने बताया-"मेरी छोटी बहिन राजुल बहुत ही सुन्दर सुकुमारी है। अपने नेमिकुमार की जोड़ी बहुत अच्छी सजेगी।" श्रीकृष्ण ने राजा उग्रसेन से नेमिकुमार के लिए राजुल की मँगनी की और शुभ-मुहूर्त्त पर यादवों की विशाल बारात प्रस्थित हुई। नगर के समीप पहुँचने पर वर रूप में सजे गजारूढ़ नेमिकुमार के कानों में पक्षियों व पशुओं का करुण क्रन्दन सुनाई पड़ा-"विवाह के शुभ मंगल प्रसंग पर यह करुण क्रन्दन किसका है?" नेमिकुमार ने अपने गजवाहक सारिय से पूछा ! तब तक हाथी आगे पहुँच चुका था! नेमिकमार ने देखा, एक बड़े बाड़े में अनेक जाति के मूक पशु-पक्षी बन्द हैं, और वे तरह-तरह की चीत्कारें, क्रन्दन करके वहाँ से मुक्त होने के लिए छटपटा रहे है। (चित्र AN- 3/अ)

सारिय ने बताया-"कुमार ! बारात में आये मेहमानों के भोजन के लिए इन पशुओं का वध किया जायेगा। मृत्यु को अपने सामने नाचते देखकर ये भय से करुण क्रन्दन कर रहे हैं।"

नैमिक्मार का दयालु हृदय द्रवित हो उठा। ''मेरे कारण इतने निरीह जीवों की हत्या? पंचेन्द्रिय प्राणियों का वध ! ं नहीं ! नहीं ! यह मेरे लिए श्रेयस्कर नहीं है।" उन्होंने तुरंत सारिध को निर्णायक आदेश दिया-''सारिथ ! रुको ! और इन बाड़ों में बन्द सभी पशुओं को मूक्त कर दो।'' चिकत हुआ सारिथ कुमार की तरफ देखता रहा, कुमार ने कहा-"मेरा आदेश है, जाओ ! और पशु-पक्षियों को बन्धन मुक्त करो।"

सारिय ने जैसे ही बाड़े का द्वार खोला, फुदकते-उछलते पशु-पक्षी हर्ष प्रकट करते हुए बाहर निकलकर भागे। मृत्यु के मुँह में जाते-जाते उन्हें जीवनदान मिल गया। (चित्र AN-3/ब)

(&&)

Illustrated Tirthankar Charitra

सचित्र तीर्थंकर चरित्र

विमल









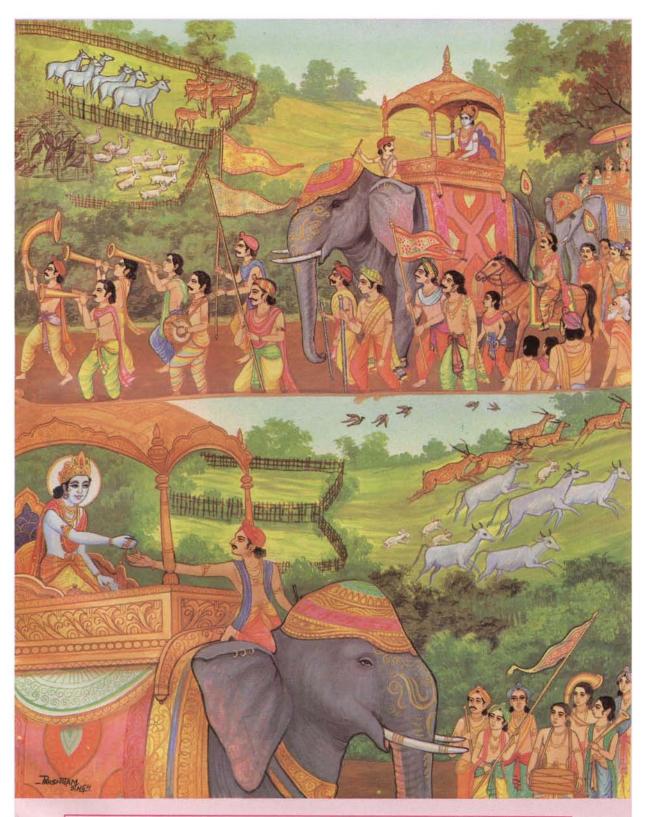
अर



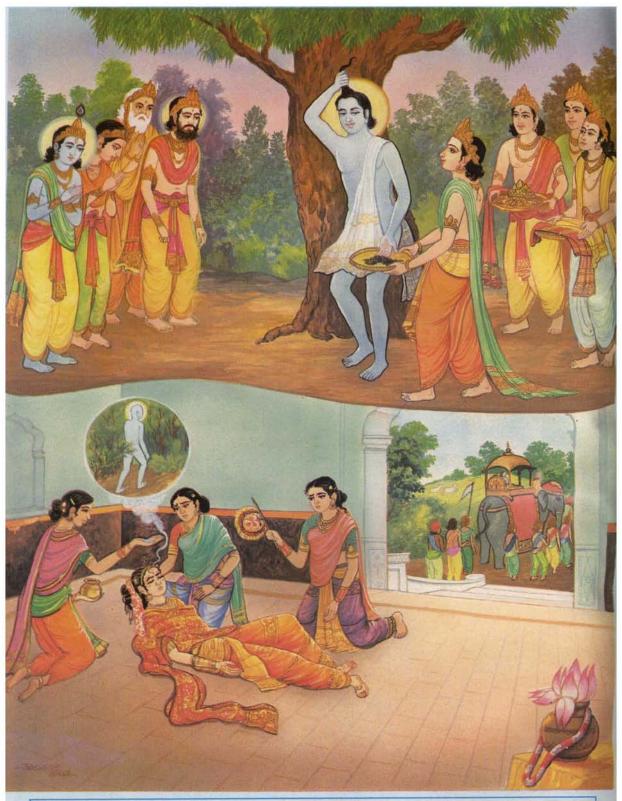
तक्ष्मी

पृष्पमाला

चन्द्र



AN 3 नेमिकुमार की बारात, वध के निमित्त बंद निरीह पशुओं की मुक्ति तथा वैराग्य लेने का निर्णय। The marraige procession of Nemikumar, liberation of mute animals meant to be butchered, and decision to become ascetic



AN 4 (अ) नेमिकुमार के वैराग्य की सूचना से दुःखित राजीमती का मूर्च्छित होना

- (व) नेमिकुमार का केश लोच कर अणगार बनना।
- (a) Rajimati becomes unconscious hearing the shocking news of Nemikumar's renunication (b) Plucking his hair Nemikumar turns ascetic



नेमिकुमार ने अपना बहुमूल्य कण्ठहार, कुण्डल आदि आभूषण सारिध को पुरस्कारस्वरूप दिया और कहा—''अब हाथी को वापस अपने महलों की ओर ले चलो। मुझे यह विवाह नहीं करना है।''

कुमार को तोरण द्वार से वापस लौटते देखकर महाराज समुद्रविजय, वासुदेव श्रीकृष्ण आदि ने समझाने व रोकने की बहुत चेष्टा की। परन्तु महापुरुष कभी अपने निर्णय से डिगते नहीं। अडिग निष्ठावान नेमिकुमार ने उत्तर दिया—"अम्ब तात! जिस प्रकार ये पशु-पक्षी बंधनों में बँधे हुए तड़प रहे थे, और बन्धन मुक्त होते ही प्रसन्न होकर उड़ानें भरने लगे, उसी प्रकार आप और हम, सभी प्रगाद कर्म बंधनों से बँधे हुए हैं। मैं इन बंधनों में बंदी हूँ। सुख बंधन में नहीं, मुक्ति में है। अतः अब मुक्त होने के लिए संयम ग्रहण करना चाहता हूँ। आप लोग मुझे रोकिए नहीं।" और इस प्रकार कहते हुए कुमार वर यात्रा से लौटकर सीधे अपने आवास की ओर चल दिये।

ध्वजा

पदा

सरोवर

समुद्र

विमान-

भवन

रत्न

सशि

निधूम अग्नि

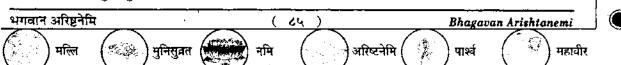
उधर दुल्हन के रूप में सजी प्रियतम के दर्शनों की प्यास लिए राजीमती ने जैसे ही यह सुना कि कुमार अरिष्टनेमि बारात से वापस लौट गये, अब कभी नहीं आयेंगे, तो वह फूट-फूटकर रोने लगी। भाग्य को कोसने लगी। बार-बार मूर्च्छित होती और जब जागती तब विलाप करती रहती। (चित्र AN-4/अ)

एक वर्ष तक वर्षीदान देकर श्रावण शुक्ला षष्ठी के पूर्वाह्न (दोपहर के पहले) समय अरिष्टनेमि हारका नगरी से निकलकर उज्जयंत पर्वत की तरफ बढ़े और वहाँ सहस्राम्न वन उद्यान में अशोक वृक्ष के नीचे सब वस्त्र आभूपणों को त्यागकर पंचमुष्टि लोच करके वे पूर्ण त्यागी अणगार बन गये। वासुदेव श्रीकृष्ण अपने लघु भ्राता कुमार को प्रव्रजित होते देखकर गद्गद् हो गये। हुँधे कण्ठ से वे निकट आकर आशीर्वाद के त्यर में बोले—''हे दमीश्वर! आपने हम सबको छोड़ दिया, अपने शरीर के वस्त्र, आभूषण और केशों का भी त्याग कर दिया। अब आप शान्ति, तप और मुक्ति के मार्ग पर बढ़ते हुए अपने इच्छित कार्य को सिद्ध करें।'' (चित्र AN-4/ब)

प्रव्रज्या ग्रहण के ५४ दिन पश्चात् उसी उज्जयंत शैल शिखर पर वेतस वृक्ष के नीचे ध्यानमम्न हुए अरिष्टनेमि को केवलज्ञान प्राप्त हुआ। देवों ने समवसरण की रचना की। प्रभु की प्रथम देशना हुई। चार तीर्थ की स्थापना कर वे बाईसवें तीर्थंकर बने।

राजीमती का अनुकरणीय त्याग

अरिष्टनेमि के साथ राजीमती का पूर्व नवभवों का प्रगाढ़ प्रेम था। इस प्रेम स्नेहानुराग के कारण वह एक वर्ष तक उनके वियोग में पानी के बिना मछली की भाँति तड़पत्री रही। अरिष्टनेमि के छोटे भाई रथनेमिकुमार ने राजीमती को अपने प्रणय-पाश में फँसाने के अनेक प्रयास किये, परन्तु राजीमती के जीवन में तो अरिष्टनेमि बस चुके थे, वह उनके सिवाय किसी का नाम भी नहीं सुनना चाहती थी। एक वर्ष पश्चात् राजीमती ने सुना, मेरे प्रियतम अरिष्टनेमि दीक्षित होकर कठोर तप करते हुए अब त्रिलोकीनाथ तीर्थंकर बन गये हैं। राजीमती ने भी प्रभु पथ का अनुसरण किया और अनेक राज-कन्याओं के साथ श्वेत वस्त्र धारण कर रैवतिगिरि पर्वत की तरफ चल पड़ीं। प्रभु अरिष्टनेमि से संयम व्रत ग्रहण किया और तप-ध्यान साधना कर अन्त में भव मुक्त हुईं।





भगवान अरिष्टनेमि युग के अनेक प्रसिद्ध तपस्वी क्षमावीर श्रमणों की घटनाएँ जैन इतिहास के पृष्ठों पर आज भी चमक रही हैं, जिनमें बाल मुनि गजसुकुमार, महान तपस्वी ढंढण ऋषि, थावच्या पुत्र श्रमण आदि की घटनाएँ बहुत ही प्रेरणाप्रद हैं।

भगवान अरिष्टनेमि का आषाढ़ शुक्ला अष्टमी को उज्जयंत पर्वत पर एक मास के अनशन के श्राथ मोक्ष हुआ!

अनेक इतिहासिवज्ञ विद्वानों ने यह स्वीकार किया है कि वासुदेव श्रीकृष्ण के चचेरे भाई भगवान अरिष्टनेमि भी एक ऐतिहासिक पुरुष थे। उन्होंने भारतवर्ष में अहिंसा व करुणा का प्रचार किया। माँसाहार के विरुद्ध प्रचण्ड जन-जागति पैदा की।

22. BHAGAVAN ARISHTANEMI

The being that was to be Bhagavan Arishtanemi, in his earlier incarnation, was Shankh, the eldest son of king Shrishen of Hastinapur. One day some citizens and wayfarers came to the king and informed him that the highways approaching Hastinapur and the surrounding area were being terrorised by bandits and smugglers. No traveller or villager was safe from the attack of these bandits. Robbery and murder became a daily routine for them. The citizens requested the king to protect the masses. The king deputed prince Shankh to go and punish the bandits.

Prince Shankh was an accomplished diplomat and strategist. He planned and conducted his campaign in such a way that he apprehended the leader of bandits without any bloodshed. While he was on his way back he heard the cry of help of a young princess abducted by a Vidyadhar (a lower god); prince Shankh challenged the Vidyadhar, defeated him and saved princess Yashomati. When these young people saw each other they fell in love and got married. In due course prince Shankh ascended the throne.

Once a scholarly ascetic visited Hastinapur. King Shankh went for his Darshan, and asked him, "Why am I so deeply in love with Yashomati that all my desires to renunciate come to a nought." The ascetic said, "Your marital ties are many a life-time deep. For last six lives you are being married to each other, this is the seventh birth. That is the reason for such intense and deep feeling of love for each other."

The king asked, "When these ties will be broken?"

The scholarly ascetic replied, "In your ninth incarnation you will be born as Neminath and she as Rajimati. In that birth you will be able to break this tie of

Illustrated Tirthankar Charitra

(\$ک

सचित्र तीर्थंकर चरित्र

विमल











सिंह





वृषभ



लक्ष्मी



पुष्पमाला

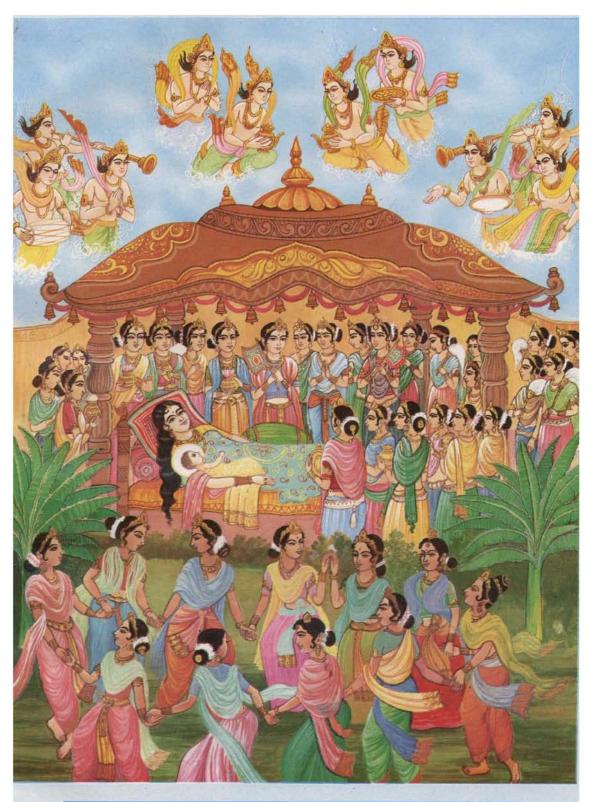
चन्द्र

सूर्य

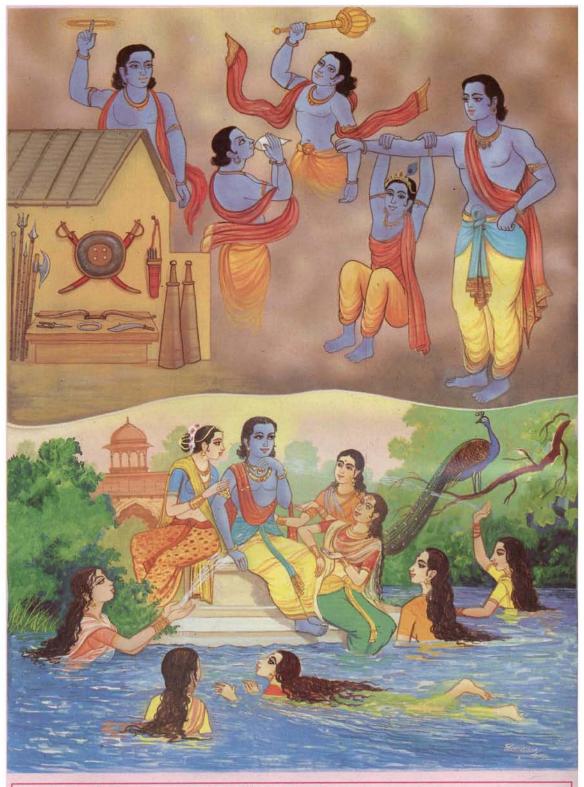








AN 1 तीर्थंकर नेमिनाथ का जन्म कल्याणक (सूतिका कर्म) मनाते हुए—५६ दिशा कुमारियां। Assembly of 56 goddesses of directions performing birth-celebrations (Janma Kalyanaka) of Tirthankar Neminath after post birth cleaning.



AN 2 (अ) श्रीकृष्ण की व्यायामशाला में नेमिकुमार की बल-परीक्षा

(ब) जल क्रीड़ा के समय श्रीकृष्ण की रानियों द्वारा नेमिकुमार को विवाह के लिए सहमत करना।

(a) Trial of strength between Shrikrishna and Nemikumar in his gymnasium(b) Shrikrishna's queens persuading Nemikumar for marraige while playing water games













वासुपूज्य

love and become the twenty second Tirthankar. Rajimati will also follow you on the path of renunciation and get liberated."

The Birth as Arishtanemi

Knowing all this Shankh had a deep feeling of detachment. He gave his kingdom to his son and became an ascetic. As a result of high spiritual practices and deep devotion for Jina he earned the Tirthankar-nam-and-gotra-karma and reincarnated in the Aparajit dimension of gods.

Bhagavan Rishabhdev and twenty one other Tirthankars were born in the Ikshvaku clan. The twentieth Tirthankar Munisuvrat was born in the Harivamsh clan. The great king Vasu was also from Harivamsh clan. After a long time this clan saw another illustrious king Sauri who was the founder of the famous Sauripur town. Sauri had two sons Andhak Vrishni and Bhog Vrishni. Andhak Vrishni had ten sons, the eldest was Samudravijay and the youngest Vasudev.

The being that was Shankh descended from the Aparajit dimension of gods into the womb of queen Shiva Devi, wife of king Samudravijay of Sauripur. The fourteen great dreams indicated that this being was to become a Tirthankar. On the fifth day of the bright half of the month of Shravan queen Shiva Devi gave birth to a son. As per the convention 56 goddesses of directions arrived and performed the birth celebrations after the post-birth cleaning. (AN-1)

During the naming ceremony the king conveyed that as the queen had seen a disc with Arishta gems, the new born will be called Arishtanemi.

Vasudev, the younger brother of king Samudravijay was a charming and handsome person. His senior queen Rohini had a son named Balram (Padma) and junior queen Devaki had a son named Shrikrishna. Balaram and Shrikrishna were the ninth Baldev and Vasudev.

During those times the whole area of central India had become a disturbed area due to prevailing conspiracies among various kingdoms. Cruel Kamsa and oppressive Jarasandh (the Prativasudev) were the worst of these feuding principalities. In order to be away from these everyday problems and as per the advise of an astrologer, the Yadav clan, including Samudravijay, Vasudev, Ugrasen, Shrikrishna etc. migrated from Mathura and Sauripur to the west coast. Shrikrishna constructed the large and beautiful town of Dwarka on the sea coast and near the Raivatak mountain (Girnar). Its grand architecture and strong fortification made it heavenly beautiful and unconquerable.

The Power and Prowess of Arishtanemi

One day while wandering around, youthful Arishtanemi reached the hall of weapons of Vasudev Shrikrishna. Seeing the divine weapons he first lifted the Sudarshan Chakra (the disc weapon) curiously and whirled it playfully. He then lifted the giant bow, Sarang, and bent it as if it was a thin cane. After this he

भगवान अरिष्टनेमि

(03

Bhagavan Arishtanemi















महावीर

ध्वजा



कुम्भ







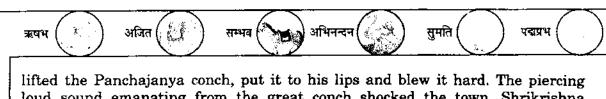








अरिन



loud sound emanating from the great conch shocked the town. Shrikrishna rushed to the armoury. Seeing Arishtanemi playfully handling the giant and heavy weapons belonging to Vasudev, Shrikrishna was astonished. He asked. "Nemi! did you blow the Panchajanya?" Nemi innocently replied, "Yes brother! It is so cute I could not contain myself."

सिंह

वृष्भ

लक्ष्मी

पुष्पमाला

चन्द्र

सूर्य

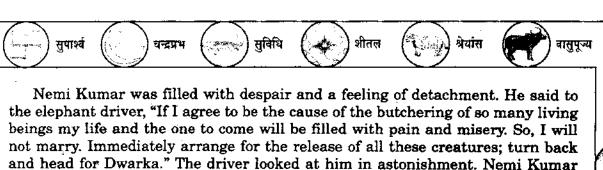
Shrikrishna knew that his weapons were beyond the capacity and strength of any warrior in the world. He was astonished and pleased at the same time, that his joung cousin was so strong and powerful. He wanted to test Nemi's strength further: he invited Nemi to the gymnasium for a friendly trial of strength. First Shrikrishr... raised his arm and held it straight asking Nemi to bring it down. Nemi forced Shrikrishna's arm down without any apparent effort. After this Nemi raised his arm and Shrikrishna, in spite of all his strength could not force it down. He even put all his weight on the outstretched arm but as if it was a beam of steel, the arm of Nemi did not move even a fraction of an inch. (AN-2/a)

Shrikrishna was very pleased knowing about this unprecedented strength of his cousin. He thought that this great individual, much more powerful than him, is capable of becoming a Chakravarti. But how could he become a Chakravarti if he does not change his attitude of detachment for all worldly activities. Shrikrishna formulated a plan. He asked Nemi to marry and start his family life. Nemi still did not show any interest. Shrikrishna now consulted his queens and organised a spring festival. The ladies dragged Nemi Kumar to the pool for water games and there they used all their guile to pursuade him to agree for marriage. Shrikrishna also requested once more. Nemi presented a smiling but thoughtful look. With his divine knowledge he became aware that it was the marriage celebration that would initiate him on the path of liberation. As such he did not oppose the proposal. His silence was taken as a sign of affirmation and it was joyously announced that Nemi Kumar had finally agreed for marriage. (AN-2/b)

Shrikrishna started the search for a suitable match. One of his queens, Satyabhama, informed that her beautiful and delicate younger sister, Rajul, would be an extremely suitable match for Nemi Kumar. Shrikrishna finalised all arrangements. On the arranged date the marriage procession started with Nemi Kumar riding the decorated king elephant. All the kings and princes of the Yadav clan joined the procession with their royal regalia and retinue. When the procession was approaching the destination, Nemi Kumar saw that on the side of the road there were large fenced areas and cages full of wailing animals and of guests attending his marriage. (AN-3/a)

birds. Filled with sympathy and compassion, he asked the elephant driver why those animals and birds were being kept in bondage. The driver informed him that the creatures were collected to be butchered for meat for the large number सचित्र तीर्थंकर चरित्र Illustrated Tirthankar Charitra (66)

शान्ति अर विमल



The driver went and opened the gates of the fenced areas and cages. The animals jumped and ran away into the jungle. They were saved from the torture of death. The driver came back and turned the elephant towards Dwarka. On the way Nemi Kumar took out all valuables and ornaments on his body and handed them over to the elephant driver. (AN-3/b)

The news spread panic in the marriage procession. All the seniors of the Yadav clan tried to change the mind of Nemi Kumar, but in vain. Even Shrikrishna could not dissuade him from his determination. Nemi Kumar said to the elders, "As these animals were prisoners in the cages, we all are prisoners in cages of karma which are much stronger than these fences. See the feeling of joy evident in the animals released from the cages. Know that happiness is in freedom, not in bondage. I want to tred the path of breaking this bondage of Karma and embrace eternal bliss. Please do not stop me."

When Rajimati, dressed as bride, heard of this act of Nemi Kumar she could not tolerate the sting of sorrow. She fainted with shock. When she recovered she started crying and again lost consciousness. (AN-4/a)

After a year long charity, Nemi Kumar sat in a palanguin named Uttarkura. and, passing through the town of Dwarka, arrived in the Raivatak garden. He got down under an Asheka tree and pulled out five fistful of hair after taking off all ornaments and the royal dress. He became an ascetic alongwith one thousand persons on the sixth day of the bright half of the month of Shravan. Shrikrishna was deeply touched by this incident; he blessed his younger cousin and wished him success in his mission. (AN-4/b)

Arhat Neminath spent fifty four days in deep spiritual practices and then went to Vijayant hill (Girnar). On the fifteenth day of the dark half of the month of Ashvin, in the afternoon, he was observing a two days fast and was meditating under a bamboo tree when he became an omniscient. Establishing the four pronged religious organisation (Tirth) he became the twenty second Tirthankar.

When Rajimati recovered from the melancholy she decided to follow the path taken by Neminath. Prince Rathnemi, the younger brother of Neminath, tried his best to seduce Rajimati. But she could not be distracted from her goal. When Rajimati came to know that Neminath had become an omniscient, she went to the Samavasaran of Neminath alongwith many of her friends and took Diksha. She lost herself in penances and other spiritual practices and in the end got liberated.

भगवान अरिष्ट्रनेमि

said, "This is an order."

(29)

Bhagavan Arishtanei















महावीर

ध्यजा





सरोवर





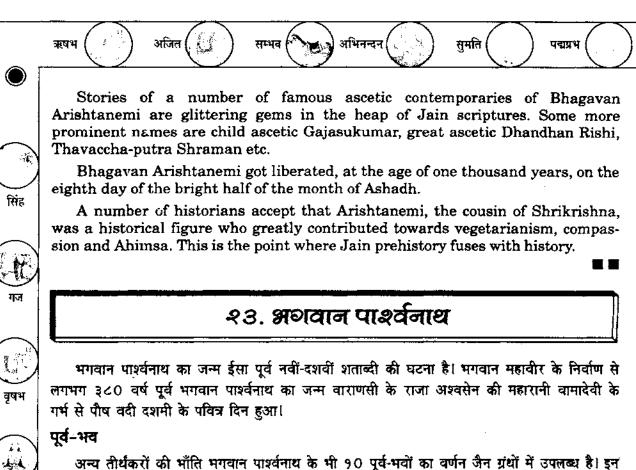
भवन











अन्य तीर्थंकरों की भाँति भगवान पार्श्वनाथ के भी 90 पूर्व-भवों का वर्णन जैन ग्रंथों में उपलब्ध है। इन पूर्व-जन्मों की घटनाओं पर विचार करने से प्रतीत होता है कि भगवान पार्श्वनाथ क्षमा और करुणा के अवतार रहे हैं। हर जन्म में उन्होंने अपने प्रतिरोधी कमठ द्वारा जलाई गई उपसर्ग तथा उपद्रवों की अग्नि पर क्षमा की शीतल जल वर्षा की है और उसे "क्षमा करो, भूल जाओ !" का पाठ पढ़ाने का प्रयत्न किया है।

कमठ और मरुभूति

लक्ष्मी

चन्द्र

सूर्य

पोतनपुर के अरविंद राजा के राजपुरोहित के दो पुत्र थे—कमठ और मरुभूत। कमठ दुराचारी और कोधी स्वभाव का था। मरुभूति शान्त और सदाचारी। पिता की मृत्यु के बाद राजपुरोहित पद का अधिकारी कमठ था, परन्तु उसके दुष्ट स्वभाव के कारण राजा ने मरुभूति को राजपुरोहित का पद दिया। इस कारण कमठ मरुभूति से मन ही मन जलता था। मरुभूति की अनुपरिथित में कमठ ने उसकी पत्नी वसुंधरा से प्रेम सम्बन्ध जोड़ लिया। मरुभूति को इस बात का पता चला तो उसने राजा से शिकायत की। राजा ने कमठ को अपमानित/प्रताड़ित कर देश से निकाल दिया। अपमानित कमठ ने मरुभूति के प्रति क्रोध की गाँठ बाँध ली और वह जंगल में जाकर संन्यासी देश में रहने लगा। कुछ समय बाद मरुभूति के मन में आया—मेरे द्वारा शिकायत करने पर ही राजा ने मेरे भाई कमठ को अपमानित और निष्कासित किया है, इसलिए अब मुझे उनसे क्षमा माँगनी चाहिए। वह कमठ को खोजता हुआ जंगल में एक पहाड़ी के नीचे पहुँचा। कमठ को वहाँ देखकर उसने उसके चरणों में झुककर क्षमा माँगी—''भैया ! मुझे क्षमा कर दो।'' किन्तु दुष्ट स्वभाव कमठ ने अपने वैर का बदला लेने की नीयत से नीचे झुके मरुभूति के सिर पर बड़ा पत्थर पटक दिया। मरुभूति की वहीं पर मृत्यु हो गई। (चित्र P-1/1)

Illustrated Tirthankar Charitra

90)

सचित्र तीर्धंकर चरित्र

विमल 🕒

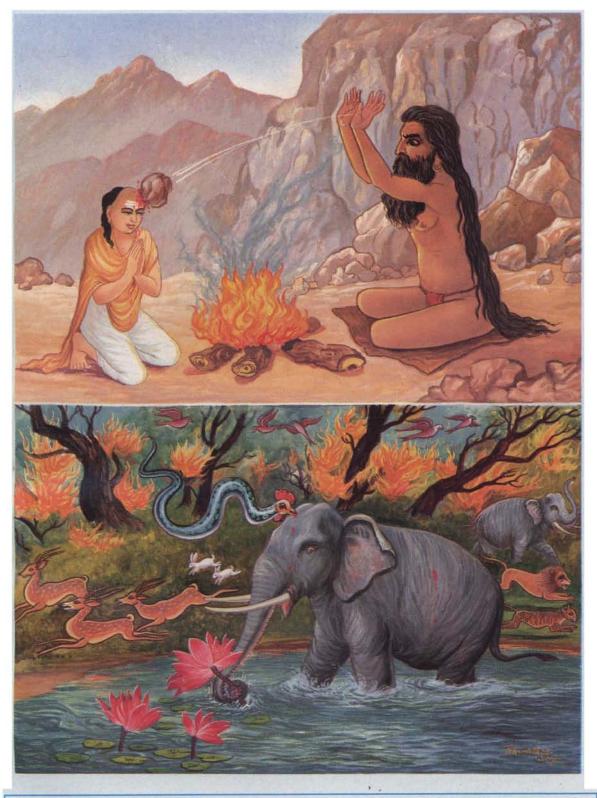
अनन्त



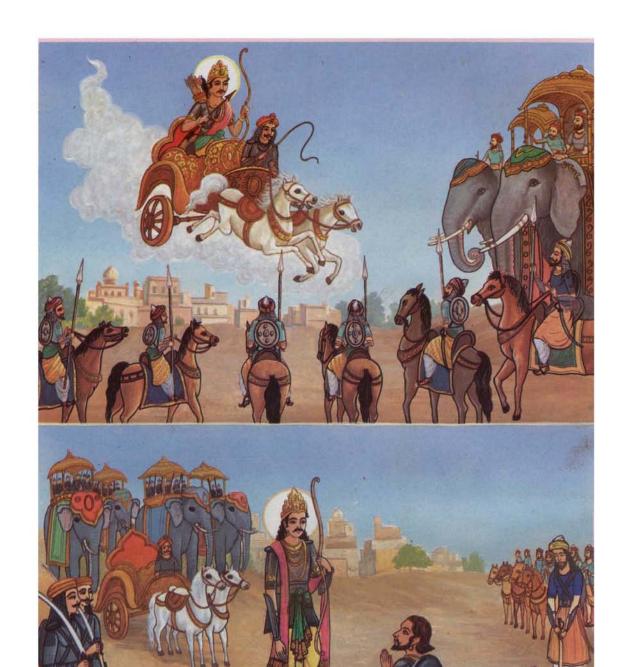




₹ (🗒



P 1 (१) क्षमा मांगते मरुभूति पर कमठ द्वारा पत्थर मारना (२) कुर्कुट सर्प द्वारा यूथपित हस्ती के मस्तक पर दंश।
(1) Kamath hitting bowing Marubhuti with stone (2) Kurkut serpant biting the king elephant on its head



P 2 पार्श्वकुमार द्वारा यवनराज विजय। Victory over Yavan by Parshwa kumar



सपार्श्व

चन्द्रप्रभ





शीतल (६८) श्रे



वासुपूज्य

हाथियों का यूथपति

मरुभूति का जीव मरकर एक जंगल में हाथियों का यूथपित बन गया। क्रोध और आवेग की भावनाओं से जलता हुआ कमठ भी मरकर एक भयंकर विषधर कुर्कुट जाित का उड़ना सर्प बना। एक दिन जंगल में धूमते हुए हाथी को एक मुनि के दर्शन हुए। मुनि का उपदेश सुनकर हाथी को पूर्व-जन्म का ज्ञान हो गया। हाथी ने अपना जन्म सुधारने के लिए खाना-पीना कम कर दिया और शान्तिपूर्वक जीवन बिताने लगा।

एक दिन दुर्बल कृशकाय हाथी एक दलदल में फँस गया। शरीर की शक्ति क्षीण हो जाने से निकल नहीं सका। दलदल में ही रात-दिन फँसा खड़ा रहा। तभी कुर्कुट सर्प उधर आया। उसने हाथी को देखा तो पूर्व-जन्म का वैर जाग उठा। अपने जहरीले डंकों से उसने हाथी को घायल कर दिया। परन्तु हाथी ने समभावपूर्वक उस वेदना को सहन किया। (चित्र P-1/2)

सुवर्णबाहु चक्रवर्ती

इस प्रकार अनेक जन्मों में मरुभूति के साथ कमठ अपने वैर का बदला लेने की दुर्भावना से उसे पीड़ाएँ देता रहा। उसकी हत्या करता रहा। परन्तु मरुभूति का जीव सदा ही क्षमा और समतापूर्वक उन पीड़ाओं को सहन करता रहा।

आठवें जन्म में मरुभूति का जीव (पार्श्वनाथ की आत्मा) सुवर्णबाहु नाम का चक्रवर्ती सम्राट् हुआ। फिर चक्रवर्ती का वैभव त्यागकर मुनि दीक्षा ग्रहण की और घोर तप-ध्यान, अरिहंत-सिद्ध-मिक्त करते हुए बीस स्थानकों की आराधना करके तीर्थंकर-नाम-कर्म का उपार्जन किया।

एक बार मुनि सुवर्णबाहु क्षीरिगिरि के वन में ध्यान करके खड़े थे कि कमठ का जीव, जो वन में सिंह बना था, उसने मुनि को देखते ही क्रोधावेश में आकर उन पर झपट मारी। अत्यन्त समभावों के साथ मुनि ने प्राण त्यागे। प्राणत देवलोक में देव बने।

प्राणत देवलोक से च्यवकर इस महान् भाग्यशाली आत्मा ने माता वामादेवी की कुक्षि से जन्म लिया।

पुत्र जन्मोत्सव के समय राजा अश्वसेन ने बताया कि—''एक अँधेरी रात में रानी वामादेवी ने मेरे पार्श्व में चलते नाग को देखकर मुझे सूचित किया और मेरी रक्षा की, इसलिए बालक का नाम पार्श्वकुमार रखना चाहिए।''

पार्श्वकुमार बचपन से ही अत्यन्त प्रतिभाशाली और जागरूक बुद्धि के थे। साथ ही अमित पराक्रमी भी थे। एक बार कुशस्थलपुर के राजा का दूत महाराज अश्वसेन के पास आया और निवेदन किया—"महाराज! हमारे राजा प्रसेनजित की एक रूपवती कन्या है, प्रभावती! राजकुमारी ने पार्श्वकुमार के अनुपम गुणों की कीर्ति सुनकर उनके सिवाय अन्य पुरुष का वरण नहीं करने की प्रतिज्ञा ले ली है। किन्तु हमारा पड़ीसी किलांग देश का यवनराज राजकुमारी के सीन्दर्य पर आसक्त हो गया है, और उसने धमकी दी है कि या तो मुझे राजकुमारी दो, अन्यथा युद्ध के लिए तैयार हो जाओ। यवनराज ने अपनी विशाल सेना के साथ हमारे नगर को चारों दिशा से घेर लिया है। इसलिए अब आप हमारी सहायता कीजिए।"

महाराज अश्वसेन न्याय और नीति के परम पक्षधर थे। उन्होंने तुरंत ही कुशस्थलपुर की रक्षा के लिए सेना को सज्ज होने का आदेश दिया और स्वयं भी युद्ध के लिए तैयार हुए। पार्श्वकुमार ने पिताश्री से कहा-

ध्यजा

कुम्भ

पदा सरोवर

समुद्र समुद्र

विमान-भवन



स्त्न राशि



निर्धूम अग्नि

भगवान पार्श्वनाथ

(99)

Bhagavan Parshvanath



मल्लि



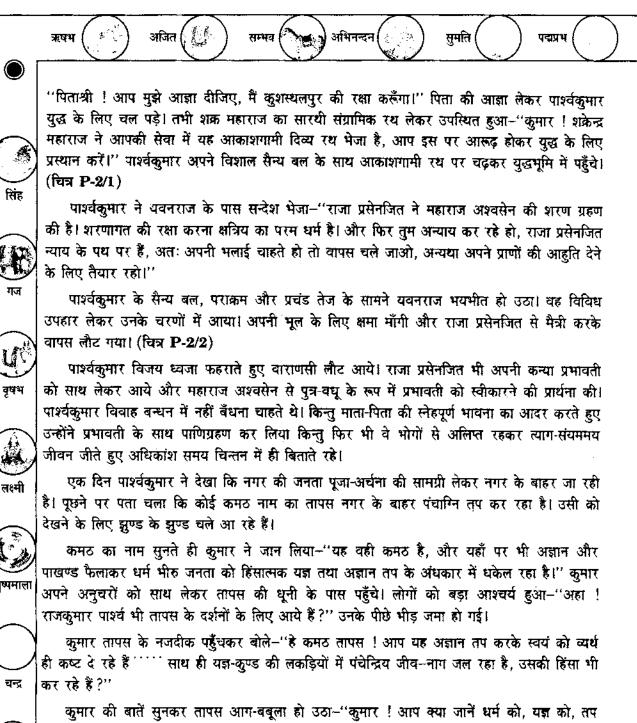












चन्द्र

सूर्य

को ? क्यों व्यर्थ ही आप हमारे यज्ञ और तप में विघ्न डाल रहे हैं ?" (चित्र P-3/1)

पार्श्वकुमार ने कहा-"धर्म और तप का मूल दया है। आपके यज्ञ-कुण्ड में तो एक नाग-युगल जल रहा है।'' तापस ने ऋद्ध होकर कहा—''यह असत्य है।'' तब पार्श्वकुमार ने अपने अनुचरों को आदेश दिया। यज्ञ-कृण्ड की जलती लकड़ियों को हटाकर धीरे से चीरा गया तो उसमें से अधजला एक नाग-युगल (जोड़ा)

(९२

Illustrated Tirthankar Charitra

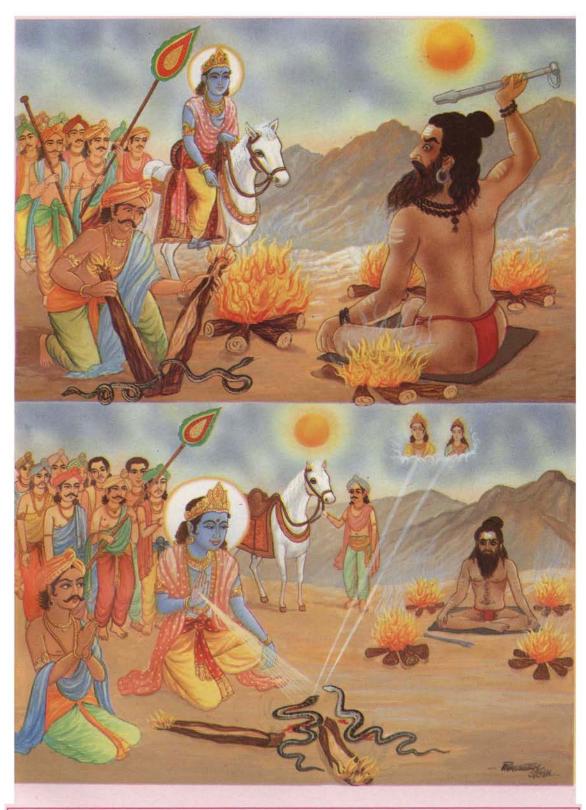
सचित्र तीर्थंकर चरित्र

विमल

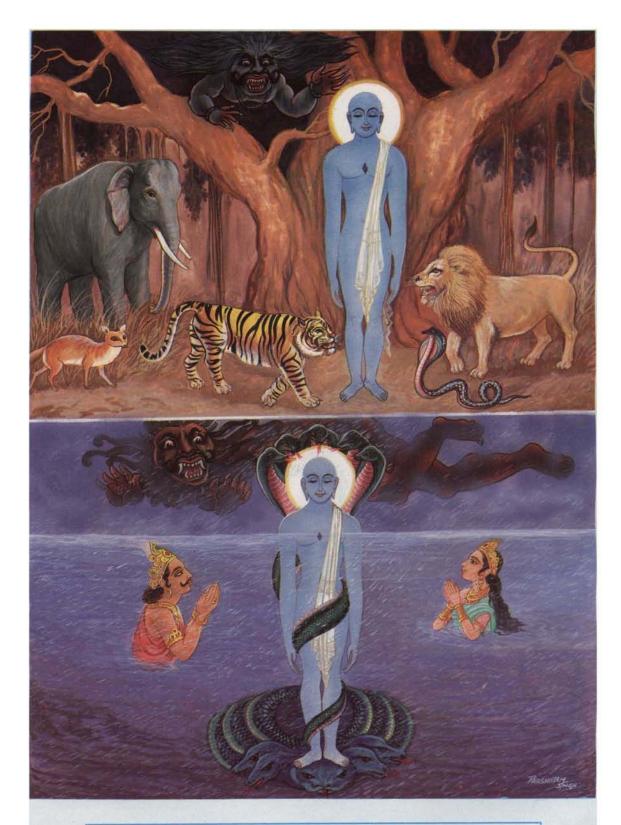




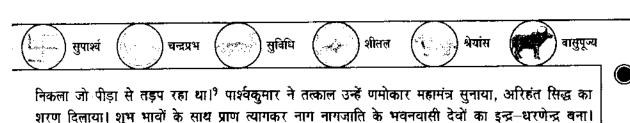




P3 कमठ के अग्नि कुण्ड से सर्प युगल की रक्षा और उनका धरणेन्द्र-पद्मावती वनना। Saving the pair of serpants from the fire of kamath and their reincarnation as Dharnendra—Padmavati



P 4 मेघमाली (कमठासुर) द्वारा उपसर्ग और धरणेन्द्र-पद्मावती का प्रकट होना। The afflictions by Meghmali and appearance of Dharnendra-Padmavati



धरणेन्द्र की रानी पद्मावती हुई। (चित्र P-3/2) इसी प्रसंग से जनता में कमठ तापस की प्रतिष्ठा खत्म हो गई। वह क्रोध एवं रोष से भन्नाता हुआ

अज्ञान तप करता रहा। मरकर असूर कुमारों में मेघमाली देव बना।

इस घटना से पार्श्वकुमार का चिन्तन नई दिशा में मुड़ गया। वे सोचने लगे—"अज्ञान एवं पाखण्डों के चक्कर में पड़ी भोली जनता को धर्म का सच्चा मार्ग दिखाना चाहिए।" अतः वे संसार त्यागकर दीक्षा लेने के लिए प्रस्तुत हुए। इसी बीच एक दिन वे उद्यान में वन-भ्रमण के लिये गये। वहाँ पर भगवान अरिष्टनेमि के विवाह तथा वैराग्य आदि के मिति चित्र देखने से उनका मन शीघ्र ही संयम लेने को उद्यत हो गया। वर्षीदान देकर (पिता की उपस्थित में) पौष कृष्णा एकादशी के दिन अशोक वृक्ष के नीचे आपने दीक्षा ले ली।

एक बार भगवान पार्श्वनाथ कौशाम्ब वन में ध्यानस्थ खड़े थे। उस समय धरणेन्द्र देव भगवान की वन्दना करने आया। भगवान के ऊपर सूर्य की प्रचण्ड धूप गिरती देखकर उसने नागफनों वाला एक छत्र बना दिया। कहा जाता है-इसी कारण उस स्थान का नाम ''अहिछन्न'' प्रसिद्ध हो गया।

एक बार प्रभु पार्श्वनाथ वट वृक्ष के नीचे कामोत्सर्ग करके खड़े थे। उस समय मेघमाली असुरदेव उधर से निकला। प्रभु पार्श्व को ध्यानस्थ देखकर पूर्व-भव का वैर जाग गया। उसने भगवान को ध्यान से विचलित करने के लिए अनेक प्रकार के उपसर्ग किये। सिंह, हाथी, चीता, दृष्टिविष सर्प, बीभत्स वैताल आदि रूप बनाकर ध्यान भंग करने के प्रयत्न किये, परन्तु प्रभु ध्यान में पर्वतराज की भाँति अविचल खड़े रहे। (चित्र P-4/1)

तब मेघमाली असुर ने ऋुद्ध होकर मूसलाधार वर्षा प्रारंभ की। देखते ही देखते गर्दन तक पानी चढ़ गया। तभी धरणेन्द्र देव का आसन कंपित हुआ। वह अपने उपकारी प्रभु पार्श्वनाथ की सेवा के लिए पद्मावती देवी के साथ तुरंत प्रभु के पास पहुँचा। उसने अपने सात फनों का छत्र बनाया और शरीर की कुण्डली बनाकर कमलासन बना दिया। भगवान उस कमलासन पर जल के ऊपर राजहंस की तरह समाधिस्थ खड़े रहे। (चित्र P-4/2)

धरणेन्द्र देव ने दुष्ट मेघमाली को डाँटा और प्रभु के क्षमामय/करुणामय स्वरूप का दर्शन कराया। मेघमाली ने भयभीत होकर भगवान के चरणों में क्षमा माँगी।

इस प्रकार छन्नस्य काल के तिरासी दिन बीत जाने के पश्चात् वाराणसी के आश्रमपद उद्यान में भगवान पार्श्वनाथ धातकी वृक्ष के नीचे आकर ध्यान लीन हुए। विशुद्धतम भाव श्रेणी पर आरोहण करते हुए चैत्र कृष्णा चतुर्थी के दिन भगवान को केवलज्ञान प्राप्त हुआ। उसी स्थान पर देवताओं ने समवसरण की रचना की। भगवान ने धर्म के स्वरूप पर प्रथम प्रवचन दिया। हिंसा-त्याग, असत्य-त्याग, चौर्य-त्याग तथा परिग्रह-त्याग रूप चातुर्याम धर्म द्वारा आत्म-साधना का मार्ग दिखाया।

- 9. त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र आदि ग्रंथों में 'एक महानाग' का उल्लेख है। जबिक उत्तरपुराण आदि ग्रंथों में 'नाग-युगल' का कथन है। 'नाग-युगल' की प्रसिद्धि अधिक है। अतः हमने चित्रों में नाग-युगल ही दिखाया है।
- चउप्पन महापुरिस चरियं-आचार्य शीलांक के अनुसार!
- चातुर्याम धर्म में परिग्रह-त्याग में स्त्री-त्याग (ब्रह्मचर्य) भी सिम्मिलित माना जाता था। क्योंकि धन, धान्य की तरह स्त्री भी एक परिग्रह है। इसलिए ब्रह्मचर्य ब्रत को परिग्रह-त्याग में सिम्मिलित मानकर चातुर्याम (चार ब्रत) धर्म का उपदेश दिया।

भगवान पाइर्वनाथ

(69)

Bhagavan Parshvanath













महावीर



ध्वजा



कुम्भ









विमान-भवन



रत्न संशि



निर्धूम अग्नि



सिंह







लक्ष्मी



पुष्पमाला

चन्द

सूर्य

भगवान की देशना सुनकर राजा अश्वसेन (पिता) भी संसार से विरक्त हुए और माता महारानी वामादेवी, रानी प्रभावती आदि को भी वैराग्य जगा। सभी ने प्रभु के चरणों में दीक्षा ग्रहण की। उस समय के प्रसिद्ध वेदपाठी विद्वान् शुभदत्त आदि अनेकों विद्वानों एवं राजकुमारों आदि ने भी भगवान की देशना से प्रबुद्ध होकर दीक्षा ग्रहण की। भगवान ने श्रायक-श्राविका, साध-साध्वी रूप चार तीर्थ की स्थापना की। शभदत्त प्रथम गणधर बने। भगवान पार्श्वनाथ के धर्मतीर्थ में कुल ८ गणधर हए।

भगवान पार्श्वनाथ का विहार किन-किन प्रदेशों में हुआ, इसका कोई स्पष्ट उल्लेख तो नहीं मिलता है. परन्तु घटनाओं, सम्बद्ध कथाओं से यह पता चलता है कि काशी-कौशल, नेपाल, बंग, कलिंग, अंग (मगध) आदि पूर्व भारत से लेकर विदर्भ, कोंकण, सौराष्ट्र आदि सुदूर पश्चिम-दक्षिण तक भगवान पार्श्वनाथ का विहार क्षेत्र रहा है। नेपाल की उपत्यका में बसी शाक्यभूमि में भी भगवान पार्श्वनाथ के अनुयायी थे। तथागत बुद्ध के काका शाक्य-नरेश एवं श्रेणिक के पितामह, पिता तथा वैशाली के अनेक राजा आदि भगवान पार्श्वनाथ के अनुयायी होने का उल्लेख मिलता है।

२०६ वृद्ध कुमारिकाएँ १

भगवान पार्श्वनाथ के शासनकाल की एक विशिष्ट उल्लेखनीय घटना का वर्णन जैन सूत्रों में मिलता है. जिसका उल्लेख बहुत कम लोगों ने किया है। वह है, उनके शासन में २०६ वृद्ध कुमारिकाओं की दीक्षा। भिन्न-भिन्न नगरों की रहने वाली, जीवन-भर अविवाहित रहकर वृद्धावस्था प्राप्त होने पर अनेक श्रेष्ठी-कन्याओं ने समय-समय पर भगवान पार्श्वनाथ के शासन में दीक्षा ली और तप-संयम की आराधना की। परन्तु उत्तर गुणों में कुछ दोष लगाने के कारण उसकी आलोचना विशुद्धि, किये बिना आयुष्य पूर्ण करके उनमें से चमरेन्द्र. बलीन्द्र, व्यन्तरेन्द्र आदि की अग्रमहिषियाँ (मुख्य रानियाँ) बनीं। उन्होंने भगवान महावीर के समवसरण में सुर ा देव की तरह अपनी विशिष्ट ऋद्धि-प्रदर्शन के साथ दर्शन किये। जिसे देखकर सामान्य जनता तो क्या, स्वयं गणधर गीतम भी आश्चर्य मुग्ध हो गये। गीतम ने भगवान महावीर से उन देवियों के विषय में जब पूछा तो भगवान महावीर ने यह रहस्योद्घाटन किया कि ये विभिन्न इन्द्रों की अग्रमहिषियाँ हैं, जिन्होंने 'पुरुषादानी' भगवान पार्श्वनाथ के शासन में वृद्ध कुमारिका के रूप में दीक्षित होकर तप-संयम की आराधना की, जिस कारण इनको विशिष्ट देव ऋखि प्राप्त हुई।

इन वर्णनों से एक बात स्पष्ट होती है कि भगवान महावीर के युग में भी जन-साधारण में भगवान पार्श्वनाथ के प्रति व्यापक असाधारण श्रद्धा और उनके नाम-स्मरण से लोगों के संकट निवारण एवं कार्य सिद्ध होने का दृढ़ विश्वास व्याप्त था। इसी कारण भगवान महावीर के युग में भगवान पार्श्वनाथ के लिए 'पुरुषादानी' का आदरपूर्ण सम्बोधन प्रचलित था।

अनेक विद्वानों का मत है कि भगवान पार्श्वनाथ का चातुर्याम धर्म उस समय समग्र भारत में प्रमुख धर्म मार्ग के रूप में मान्यता प्राप्त था। तथागत बुद्ध ने भी पहले इसी चातुर्याम धर्म मार्ग को ग्रहण किया, फिर इसी के आधार पर अष्टांगिक धर्म मार्ग का प्रवर्त्तन किया।

भगवान पार्श्वनाथ ३० वर्ष तक गृहस्थ जीवन में रहे, तत्पश्चात् ७० वर्ष तक संयममय जीवन जीते हुए श्रावण शुक्ला पंचमी के दिन १०० वर्ष का पूर्ण आयुष्य भोगकर सम्मेदशिखर पर मोक्ष को प्राप्त हुए।

टेखें-निरमार्वालका वर्ग ४ के दस देवियों के दस अध्ययन।

-ज्ञातासूत्र श्रुतस्कंध २, वर्ग ५ से १०

Illustrated Tirthankar Charitra

(88)

सचित्र तीर्थंकर चरित्र





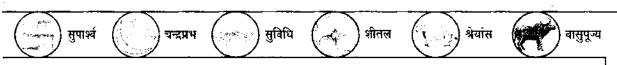












भगवान पार्श्वनाथ के निर्वाण तथा भगवान महावीर के धर्म प्रवर्तन काल के मध्य लगभग २५० वर्ष का अन्तराल माना जाता है। इस काल अविध में भगवान पार्श्वनाथ की परम्परा में चार प्रमुख पट्टधर प्रभावशाली आचार्य होने का उल्लेख मिलता है—

- 9. गणधर शुभदत्त (शुम्भ)
- २. आर्थ हरिदत्त
- ३. आचार्य समुद्र सुरि
- ४. आर्य केशी श्रमण

आर्य केशी श्रमण का समय भगवान पार्श्वनाथ के निर्वाण के १६६ से २५० वर्ष तक का माना जाता है। आप बड़े ही प्रभावशाली आचार्य थे, श्वेताम्बिका के राजा प्रदेशी को आपने ही अपनी अद्भुत प्रभावशाली वाणी द्वारा प्रतिबोधित कर कट्टर नास्तिक से परम आस्तिक जिन भक्त श्रावक बनाया। केशी कुमार श्रमण के विशाल धर्म संघ में ५००-५०० साधुओं के नौ समूह तेलंग, कोंकण, महाराष्ट्र आदि सुदूर देशों में विचरते थे, तथा वे स्वयं एक हजार साधुओं के साथ मगध प्रदेश में विहार करते थे।

23. BHAGAVAN PARSHVANATH

Bhagavan Parshvanath was born about 380 years before the Nirvana of Bhagavan Mahavir or in the 10th century B.C.

Past-Incarnation

Like other Tirthankars, important events of earlier incarnations of the being that became Bhagavan Parshvanath are available in Jain scriptures. Study of these incidents reveals that amnesty and compassion played a major part in his life and progress toward purity of soul. In every incarnation his rival, Kamath, continued to torture him and he continued to forgive and forget.

Kamath and Marubhuti

The soul that was to be Bhagavan Parshvanath was inspired to take the direction of purity in its birth as Marubhuti. He was born to the wife of Purohit Vishvabhuti living in Potanpur city. His elder brother was Kamath. As Kamath was cruel, conceited, and a debauch, in spite of being the elder son it was Marubhuti who succeeded his father on the post of Rajpurohit (the director of ritual ceremonies of the king and state). Attracted toward the beautiful wife of Marubhuti, Vasundhara, Kamath seduced her. When Kamath's wife came to know about the affair, she tried to dissuade him in vain and told Marubhuti about it. Marubhuti made a secret enquiry and conveyed every thing in detail to

जैन धर्म का मीलिक इतिहास, भाग १, पृष्ठ ५२२.

(१५)

Bhagavan Parshvanath



मल्लि

भगवान पार्श्वनाथ



मुनिसुव्रत











महावीर



ध्वजा



कुम्भ

प**द्म** सरोवर



समुद्र



विमान-भवन



स्त्न राशि



निर्धूम अग्नि



the king. Kamath was exiled by the king. He became a mendicant and started doing rigorous penance.

After sometime Marubhuti felt that it was because of his report that Kamath was insulted and thrown out of the state; as such he should go and beg forgiveness from his elder brother. Marubhuti went into the jungle near Kamath and bowed before him seeking his pardon. Instead of getting pacified, Kamath was over powered by the desire of vengeance. He picked up a large stone and hit Marubhuti on the head. Marubhuti died on the spot. (P-1/1)

The King Elephant

सिंह

वृषभ

लक्ष्मी

पुष्पमाला

चन्द्र

सूर्य

The soul of Marubhuti was reborn as an elephant in the forests of Vindhyachal. It became the leader of the herd. One day when an ascetic was standing in meditation in the Vindhyachal area, the king elephant came near him. The memory of its past life precipitated and it became a follower of the ascetic and turned mellow and detached. One day the elephant rushed into and stationed itself in the middle of a pond in order to save himself from a forest fire. The being that was Kamath had taken birth as a serpent of the Kurkut species. When it saw the elephant, the serpent recognised it as its enemy from the earlier birth. The serpent landed on the head of the elephant and stung it. The elephant equanimously tolerated the pain and died peacefully. (P-1/2)

Suvarnbahu Chakravarti

In his third birth the being that was Marubhuti reincarnated as a god in the Sahasrar dimension. From there it descended and was born as prince Kiranveg in Mahavideh area. He furthered his progress towards purity by becoming an ascetic and was killed once again by the Kamath, now born as a snake. His next birth was as a god in the Achyut Kalpa dimension. From there he came to Mahavideh area as king Vajranabh. Kamath was born as a Bhil aborigin who shot Vajranabh, who had become an ascetic now, with an arrow. Reincarnating in the Madhyam Graiveyak dimension of gods, the being that was to be Parshvanath enjoyed the fruits of his pious Karma.

In his eighth birth this being was born in the royal family of Puranpur in the Mahavideh area. After ascending the throne Suvarnbahu conquered six continents and became a Chakravarti. In later part of his life he became an ascetic and did purest of meditations to earn Tirthankar-nam-and-gotra-karma. During this birth also, this being was killed by its old enemy Kamath who was born as a fierce lion. From here this being went to the Pranat dimension of gods.

Descending from the Pranat dimension of gods, the being that was Marubhuti came into the womb of Vama Devi, wife of king Ashvasen of Varanasi. On the tenth day of the dark half of the month of Paush Vama Devi gave birth to

Illustrated Tirthankar Charitra

९६)

सचित्र तीर्थंकर चरित्र



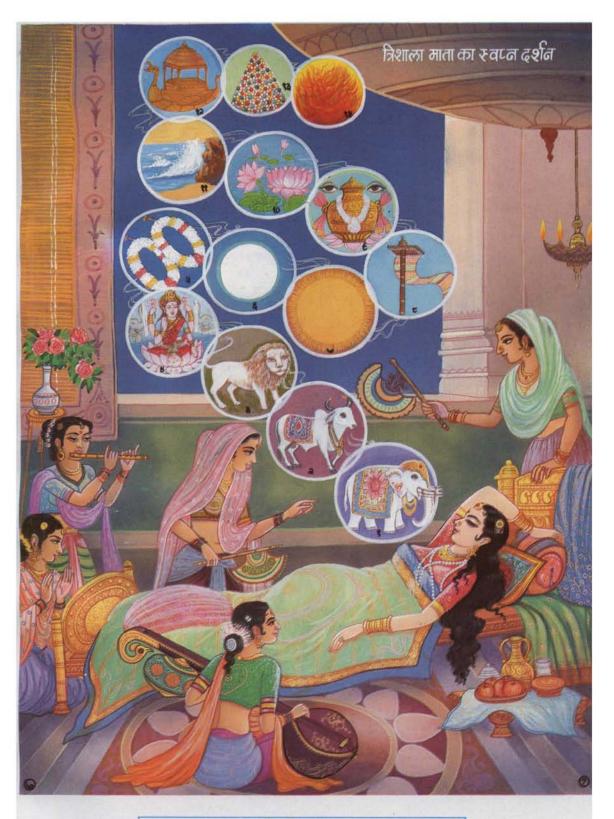




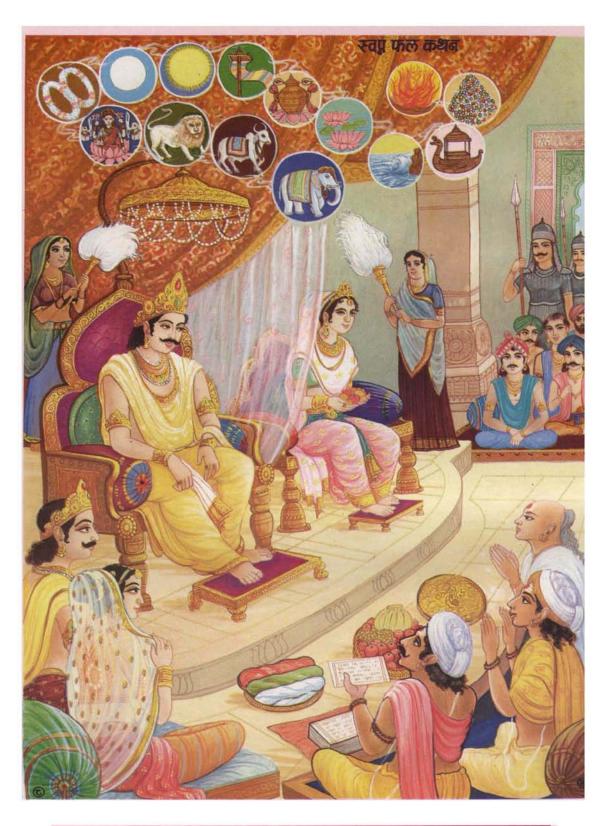








M 5 निद्रामग्न रानी त्रिशला द्वारा चौदह स्वप्न दर्शन। Sleeping queen Trishala and her fourteen dreams



M 6 सिद्धार्थ राजा की सभा में स्वप्न-पाठकों द्वारा स्वप्न-फल कथन। Dream diviners explaining meaning of the dreams in the assembly of king Siddhartha













गसुपूज्य

a son. At the time of his naming ceremony king Ashvasen announced that during her pregnancy Vama Devi one night saw a snake slithering on the bed near his flank. She woke him up and saved him from the impending danger. As such, he was naming the new born as Parshva (flank).

Prince Parshva was very handsome and intelligent. His fame reached Kushasthalpur and princess Prabhavati, daughter of king Prasenjit, determined to become his wife. Before a proposal for marriage could be sent the king of Kalinga lay a seize of Kushasthalpur and sought the hand of Prabhavati in marriage. King Prasenjit, aware of the might of Yavanraj sent a messanger to Varanasi for help. King Ashvasen got irritated at the misconduct of Yavanraj and ordered his army to march. Prince Parshva requested his father to let him command the army in this battle. Ashvasen was well aware of the ability and provess of prince Parshva; he accepted Parshva's proposal without any hesitation. (P-2/1)

Before the prince started for the battle field the king of gods sent a divine and air worthy chariot for Parshva. After reaching the battle field and prior to giving the orders to attack, Parshva sent a message to Yavanraj that now Prasenjit was under the protection of king Ashvasen, and as such he should break his seize of Kushasthalpur or face the great army of Varanasi and divine powers of Parshva. Although the youthful Yavanraj and some of his younger ministers were provoked, a senior minister informed him that the king of gods himself sided Parshva. He not only had divine powers but also the flying chariot of Indra. To fight Parshva was to embrace certain defeat. Yavanraj accepted the advice of the senior minister and surrendered before prince Parshva without a fight. He offered rich gifts to Parshva and became a friend of Prasenjit. (P-2/2)

Victorious Parshva Kumar returned to Varanasi. King Prasenjit also came to Varanasi with his daughter Prabhavati and requested king Ashvasen to marry Parshva Kumar with Prabhavati Parshva was averse to the bond of marriage. However, his parents persuaded him and he could not hurt their feelings. He was married to Prabhavati but led a simple and detached life.

One day prince Parshva was enjoying a view of the town from the balcony of his palace. When he saw groups of men and women, carrying items for worship, passing by, he asked out of curiosity if it was some day of religious ceremonies. His attendants informed him that some mendicant named Kamath is doing a harsh penance named Panchagni Tap (five fire penance). The citizens are going to pay homage to him with all these presents Prince Parshva also proceeded to witness this strange scene. As he was endowed with three levels of knowledge since birth, Parshva perceived every thing worth knowing about this person at once. This was the same being that had been nurturing an intense feeling of vengeance for him for many births. After completing his age in the hell he was born in a poor family. Driven by hunger and poverty he had become a mendicant

भगवान पार्श्वनाथ

(99)

Bhagavan Parshvanath















महावीर

ध्वजा



कुम्भ





समुद्र



विमान-भवन











and was influencing the ignorant masses with his harsh but ill conceived oenance.

When prince Parshva came near the mendicant he saw that some logs of wood were burning all around the mendicant. Inside one of the logs was a pair of serpents, writhing in pain due to the intense heat of the burning flames. Moved by a feeling of compassion the prince said to the mendicant, "Burning a five sensed being in fire, what sort of self improvement do you strive for?" The mendicant replied angrily, "Prince! You are a child; go and enjoy your princely games. It is mendicants like me who know about religion not you. How can you claim that some being is burning in the fire around me?" (P-3/1)

All the efforts to persuade him that a pair of serpents was burning in the fire went in vain Parshva then ordered his attendants to draw the specific log aside and split it. As soon as the attendants did that, a pair of serpents, partially scorched, fell on the ground writhing in pain. Realizing that they were about to die, prince Parshva said to them that they should not be annoyed with the ignorant mendicant and should remain equanimous during the last moments of their lives. He also recited the Namokar Mantra. As a result of equanimous thoughts and hearing the Namokar Mantra, after death the pair was born as the king and queen of the gods of the Nag Kumar clan (Dharanendra and Padmavati). (**P-3/2**)

The mendicant became angry and kept on adding more fuel to the fire of vengeance. After death he reincarnated as the evil god Meghmali.

This incident inspired Parshva Kumar to step on the right path and show the path to the masses misled by such ignorant hypocretes. While he was contemplating this, he one day went to a garden and chanced to see some frescoes about the incidents of life of Bhagavan Arishtanemi. These vivid paintings pushed him to the decision of becoming an ascetic. He sought permission of his father and started the year long charity. On the eleventh day of the dark half of the month of Paush he became an ascetic under an Ashok tree.

One day Parshva-muni was standing in meditation in Kaushamb jungle. God Dharanendra arrived there to pay homage. When he saw scorching sun rays falling on the meditating ascetic, he covered Parshva-muni with a canopy of snake hoods. It is said that this area later became famous as Ahichhatra.

One day Parshva-muni was standing in meditation under a banyan tree in an Ashram outside a village. The evil god Meghmali, the Kamath of earlier birth, through his evil powers became aware of this. Driven by the animosity of earlier births, Meghmali arrived at the spot where Parshva-muni was standing in meditation. He took the form of a ghost and tried to disturb Parshva-muni with his extremely loud and fearsome laughter. When Parshva-muni remained unmoved, Meghmali inflicted pain on him by attacking in the form of various

Illustrated Tirthankar Charitra

(96)

सचित्र तीर्थंकर चरित्र



चन्द्र

सूर्य























वासु**पू**ज्य

animals. Parshva-muni tolerated all these afflictions with equanimity. Meghmali's anger reached its peak. (P-4/1)

Now he created dark and dense clouds in the skys. The sky was completely covered by dark rain-bearing clouds. With fearsome rumbling and thunder and lightening it started raining heavily. Meghmali caused so much rain that it flooded the whole area. Parshva-muni tolerated the torment of this torrential rain like the Meru mountain. The water level rose and it reached the tip of Parshvanath's nose. He was still unmoved in his meditation. At this peak of the affliction, the throne of god Dharanendra trembled. He came to know about the incident through his divine powers and reached the spot with Padmavati. One of these snake-gods created a platform under the feet of Parshva-muni and the other a canopy of its multiple hoods over his head. Dharanendra admonished Meghmali who then fell at the feet of Parshva-muni and sought his forgiveness. (P-4/2)

After eighty three days of penance and spiritual practices Parshva-muni came to Ashrampad garden in Varanasi and stood in meditation under a Dhataki tree. With fast increasing purity he attained omniscience on the fourth day of the dark half of the month of Chaitra. The gods created the divine pavilion. Bhagavan Parshvanath gave his first discourse on the form of religion. He propagated the four dimensional religion (Ahimsa, truth, non-stealing and non-possession) for upliftment of the soul.

Inspired by the discourse of Bhagavan Parshvanath, many members of his family including his father Ashvasen, mother Vama Devi, and wife Prabhavati took Diksha from him. Many other princes and scholars including the famous Vedic scholar Shubhdatta also took Diksha after hearing to his discourse. Bhagavan Parshvanath established the four pronged religious organisation. He had eight chief disciples with Shubhdatta being the first and most senior.

Although no detailed mention is available about the areas visited by Bhagavan Parshvanath, it can be surmised from various incidents and related stories that he covered a considerably wide area of the subcontinent. It appears that he visited Kashi-kaushal (Uttar Pradesh), Nepal, Bang (Bengal), Kalinga (Orissa), Anga (Magadh), Vidarbh, Konkan, Saurashtra etc. Among his followern were Shakya kings, rulers of Magadh (grandfather and father of king Shrenik) and many others.

206 Spinsters

In Jain scriptures there is a mention of an incident of Bhagavan Parshvanath's period that has not been much talked about. It is the initiation of 206 old spinsters in his ascetic organisation. At different times many old spinsters from merchant families from a number of towns took Diksha into Bhagavan Parshvanath's organisation and indulged in spiritual practices. But due to some faults in minor codes of discipline and death before doing equired

भगवान पार्श्वनाध

(99)

Bhagavan Pershvanath















महावीर

ध्वजा



कुम्भ





समुद्र



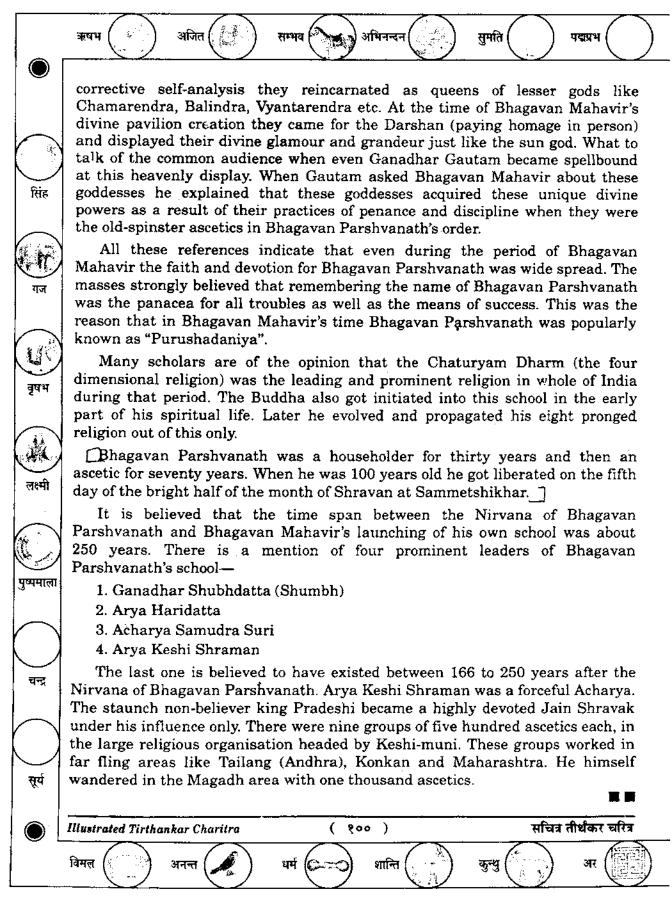
विमान-भवन

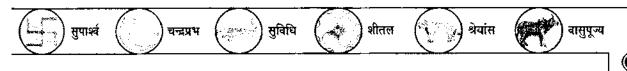












२४. भ्रगवान महावीर

पूर्व-भव

भगवान महावीर जैन धर्म के चौबीसवें (चरम-अंतिम) तीर्यंकर थे। उनका व्यक्तित्व सम्पूर्ण विकित्सत व्यक्तित्व था। उस व्यक्तित्व में आत्मा की अनन्त आभा देदीप्यमान थी। आत्मा के समस्त गुण, समस्त शक्तियाँ सम्पूर्ण रूप में जाग्रत हो चुकी थीं। वे अनन्त बली थे तो अनन्त करुणामय भी थे। सम्पूर्ण आत्म-बल जाग्रत हो जाने से ये देव-दानवों से भी अपराजेय थे। इस प्रकार एक अखण्ड अपराजेय और सम्पूर्ण विकित्तित मानवीय व्यक्तित्व था तीर्थंकर महावीर का। उन्होंने पूर्व-जन्मों में तप-संयम आदि की दीर्घकालीन साधना द्वारा आत्मा को तीर्थंकर या अरिहंत पद के योग्य बनाया। इस दृष्टि से भगवान महावीर के पूर्व-जन्मों की घटनाएँ अति महत्त्वपूर्ण हैं। सबसे पहली घटना है प्रथम बोधि लाभ।

प्रथम बोधि लाभ की घटना वर्द्धमान महावीर के वर्तमान जन्म से २६ जन्म पूर्व अर्थात् सत्ताईसवें भव की है। नयसार ग्राम चिन्तक के जन्म की कथा इस प्रकार है—

प्रथम बोधि लाभ : नयसार

अपर महाविदेह की जयन्ती नगरी में एक राजा थे शत्रुमर्धन। राज्य के चारों ओर घने जंगल और हरी-भरी पहाड़ियाँ थीं, जिनकी रखवाली का काम करता था—नयसार। नयसार ग्रामचिन्तक (मुखिया) के पद से सम्मानित था।

एक बार राजभवन का निर्माण करने के लिए अच्छे काष्ठ की आवश्यकता हुई तो राजा ने नयसार को जंगल से इमारती लकड़ियाँ लाने का आदेश दिया। नयसार सैकड़ों कर्मचारियों को साथ लेकर जंगल से लकड़ियाँ काटकर लाने में जुट गया। मध्यान्ह के समय धूप तेज हो जाने पर वह भोजन के लिए एक वृक्ष की छाया में बैठ गया। परन्तु उसका ध्यान भोजन की तरफ नहीं था। वह मन ही मन कुछ सोच रहा था कि दूर पहाड़ की तलहटी में कुछ श्रमण आते हुए दिखायी दिये। नयसार उठा, श्रमणों के आने की दिशा में कुछ दूर पहुँचा, श्रमण भी उधर ही आ रहे थे, नयसार ने श्रमणों को नमस्कार किया।

मुनिजन प्रचण्ड धूप से बहुत थक चुके थे, मारे प्यास के गला भी सूख रहा था। धीमे स्थर में बोले-"भाई ! इस अटवी में रास्ता भूल गये, सुबह से अब तक चल ही रहे हैं।"

नयसार मुनियों को अपने साथ वृक्ष की शीतल छाया में ले आया। कुछ देर विश्राम कर लेने के बाद उसने कहा—''महाराज ! मेरे लिए आया हुआ शुद्ध भोजन तैयार है। घड़े में ठण्डा मीठा मठा (छाछ) मरा रखा है। कृपया कुछ भिक्षा ग्रहण कर मुझे कृतार्थ कीजिए।''

मुनियों ने नयसार की विनम्न और पवित्र भावना देखकर शुद्ध प्रासुक भोजन ग्रहण कर लिया। नयसार के हृदय का कण-कण पुलक उठा।

कुछ समय विश्राम करके मुनियों ने उसे दया, अनुकम्पा, सरलता, विनम्रता और समताभाव का आचरण करने के लिए सरल और व्यावहारिक उपाय बताये।

भगवान महाबीर : पूर्व-भव (१०१) Bhagavan Mahavir : Past-Incarnation



ध्वजा



कुम्भ

पदा सरोवर



समुद्र



विमान-भवन



रत्न राशि



निर्धूम अग्नि







मुनिसुव्रत

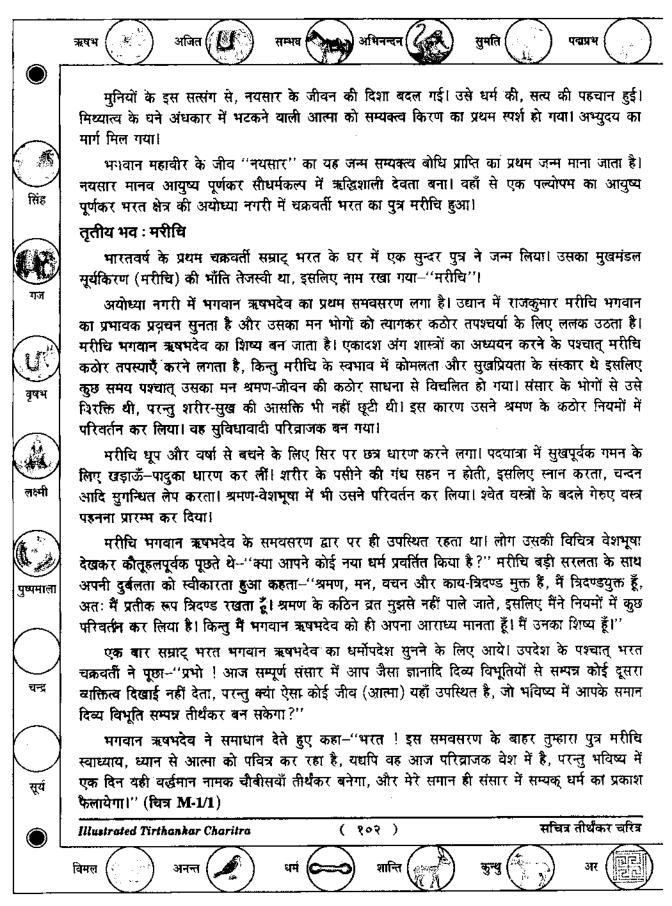


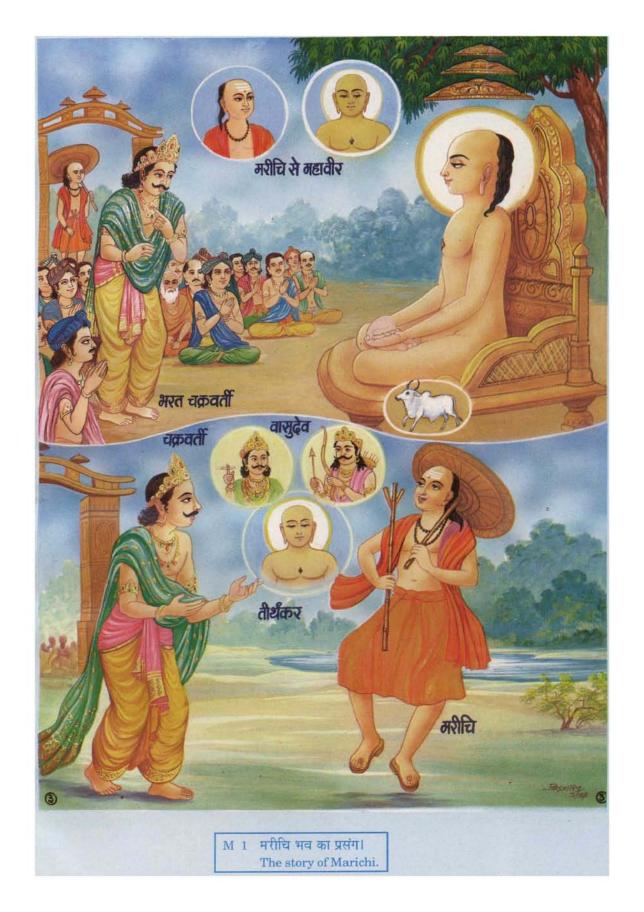
नमि

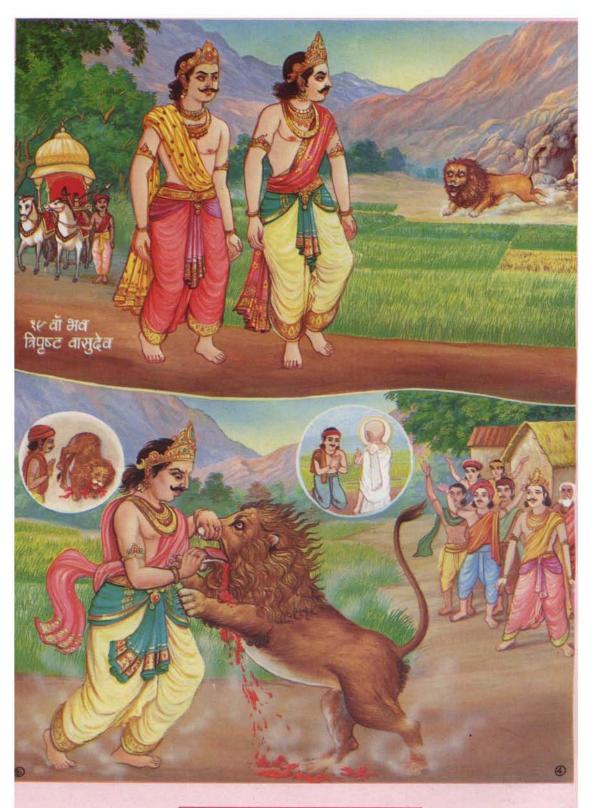












M 2 त्रिपृष्ठ वासुदेव भव का चरित्र। The story of Triprishtha Vasudev













भगवान ऋषभदेव की भविष्यवाणी सुनते ही सम्राट् भरत के हर्ष का आर-पार नहीं रहा। वे मरीचि को यह बधाई देने के लिए नंगे पाँव ही समवसरण के वाहर दौड़ते हुए आये और हर्षावेग में कहने लगे-"मरीचि ! तुम धन्य हो। तुम महानु भाग्यशाली हो ! भगवान ऋषभदेव ने बताया है-तुम ही इस अवसर्पिणी काल के अन्तिम तीर्थंकर वर्द्धमान महावीर बनकर संसार में धर्मोद्योत करोगे। हजारों-लाखों जीवों का कल्याण करोगे। इससे पहले तुम वासुदेव भी बनोगे, चक्रवर्ती भी और अन्त में धर्म चक्रवर्ती वर्द्धमान महावीर ! भावी तीर्थंकर वर्द्धमान ! तुम्हें कोटि-कोटि प्रणाम।"

मरीचि मारे खुशी के नाचने लगा। हर्ष में उन्मत्त होकर उछलने लगा।

"अहा ! मैं कितना महानू हूँ ! कितना महानू है मेरा कुल और वंश ! मेरे दादा प्रथम तीर्थंकर, मेरे पिता प्रथम चक्रवर्ती और मैं बन्ँगा वासुदेव, चक्रवर्ती और फिर अन्तिम तीर्थंकर।" (चित्र M-1/2)

मरीचि का हर्ष सीमाएँ तोड़कर अहंकार में पहुँच गया। जमीन पर उसके पाँव नहीं टिक रहे थे। उछलता-नाचता आने-जाने वालों के सामने यही कहता-''देखो, मेरा कुल कितना श्रेष्ठ है ! मेरा वंश कितना उत्तम है !''

कूल की भहानता का यह गर्व उसके मन में एक जाति-मद बनकर रह गया, और जाति-मद निश्चित ही आत्मा के पतन का कारण होता है। मरीचि ने कपिल नाम के एक राजकुमार को अपना शिष्य बना लिया, और परिव्राजक परम्परा का प्रवर्त्तन किया।

विश्वभूति

मरीचि भव के बाद के १२ जन्मों का विवरण पढ़ने से यह पता चलता है कि उसने छह भव देव लोक के और छह भव मनुष्य के किये, जिनमें वह त्रिदण्डी परिव्राजक बना।

अनेक जन्मान्तरों के बाद १६वें भव में मरीचि की आत्मा ने राजगृह नगर में राजा विश्वनंदी के छोटे भाई युवराज विशाखभृति के पुत्र विश्वभृति के रूप में जन्म लिया। इस जन्म में मृनि दीक्षा लेकर उग्र तपश्चरण किया।

त्रिपृष्ट वासुदेव

विश्वभृति का जीव आयुष्य पूर्णकर महाशुक्र देवलोक में गया और वहाँ से पोतनपुर के राजा प्रजापित की रानी मुगावती के पुत्र रूप में (१८वाँ भव) उत्पन्न हुआ। नाम रखा गया-त्रिपुष्ठ। विश्वभृति मृनि के जन्म में की हुई तपस्या और सेवा, वैयावृत्य आदि के फलस्वरूप त्रिपुष्ठ अदुभृत पराक्रमी, साहसी और तेजस्वी राजकुमार बना। प्रतिवासुदेव राजा अश्वग्रीव ने भी त्रिपृष्ठकुमार के बल विक्रम की चर्चा सुनी तो उसका जी धड़क उठा। उसने राजनिमित्तज्ञ से पूछा-''मेरी मृत्यु कैसे होगी?'' निमित्तज्ञ ने बताया-''जो वीर आपके चण्डमेघ दूत को अपमानित/प्रताड़ित कर देगा तथा तुंगगिरि पेर्वतों में रहने वाले खुँखार केसरी सिंह को मार डालेगा, उसी व्यक्ति के हाथों आपकी मृत्यू होगी।"

अश्वग्रीव का मन धड़कने लगा। परीक्षा के लिए उसने चण्डमेघ दूत को राजा प्रजापति के पास भेजा। राजकुमार त्रिपुष्ठ ने चण्डमेघ दुत के अवज्ञापूर्ण व्यवहार पर रुष्ट होकर उसे धक्के देकर राजसभा से बाहर फिंकवा दिया।

कुछ ही दिनों बाद राजा प्रजापति के पास अश्वग्रीय ने आदेश भेजा-"तुंगगिरि के वन में शालिक्षेत्र की रक्षा के लिए आप तुरन्त चले जाइए!"

भगवान महावीर : पूर्व-भव

(\$03)

Bhagavan Mahavir: Past-Incarnation















महावीर





सरोदर



समुद्र



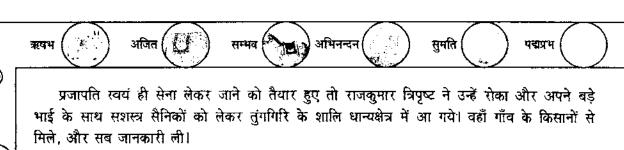
विमान-भवन



रत्न राशि



अग्नि



गाँव वालों ने कुमार को सिंह की गुफा और उसके आने का रास्ता बता दिया। त्रिपृष्ठकुभार शस्त्रों से सिज्जित होकर रथ पर बैठे और चल पड़े। सिंह की गुफा के पास सैनिकों ने हल्ला मचाया, गुफा में सोया सिंह जाग उठा, उसने सामने खड़े मनुष्यों को देखा तो क्रोध में उफनकर दहाड़ता हुआ कुमार की तरफ झपटा, कुमार ने भी सिंह को सामने आते देखा—"अरे! यह तो पैदल ही दीड़ रहा है, तो मैं फिर रथ पर क्यों चढ़ूँ? इसके पास तो कोई शस्त्र भी नहीं है, तो फिर मैं शस्त्र से क्यों लडूँ? पैदल के साथ पैदल और निःशस्त्र के साथ निःशस्त्र युद्ध होना चाहिए।" यह सोचकर राजकुमार त्रिपृष्ठ रथ से उतर पड़े, शस्त्र फेंक दिये और सिंह के सामने बढ़ गये।

बिजली की भाँति झपटकर आते हुए सिंह ने जैसे ही कुमार पर आक्रमण किया-कुमार ने उसका जबड़ा पकड़कर यों चीर डाला जैसे कोई पुराना कपड़ा चीर देते हैं। सिंह की चीखभरी भयंकर दहाड़ से पहाड़ियाँ गूँज उठीं, दूर-दूर खड़े सैनिकों के रोंगटे खड़े हो गये। (चित्र M-2/1)

जब घायल सिंह सिसक रहा था, तब वासुदेव के सारिथ ने उसे मधुर शब्दों में सान्त्वना दी! जिससे सिंह को शान्ति अनुभव हुई। सारिथ के प्रति अनुराग जगा। सारिथ का जीव आगे चलकर गणधर गौतम बना और सिंह का जीव एक कृपक। गौतम को देखकर वह कृषक पूर्व अनुरागवश उनका शिष्य बन गया। परन्तु भगवान महावीर को देखकर उसके बद्ध-वैर के संस्कार जाग गये, और वह वापस लौट गया। (चित्र M-2/2)

कानों में शीशा

त्रिपृष्ट वासुदेव को संगीत का बहुत शौक था। एक बार संध्या के समय सभा में बैठे थे, मनोरंजन का कार्यक्रम चल रहा था। मधुर संगीत सुनकर वासुदेव त्रिपृष्ठ मुग्ध हो गये। सभी सभासद मंत्र-मुग्ध से संगीत सुनने में लीन थे। सम्राट् ने अपने शय्यापालक (शयनागार के परिचारक) से कहा—''मुझे नींद आ जाये तो संगीत बन्द करा देना।'' सम्राट् को संगीत सुनते-सुनते ही नींद की नीठी झपकियाँ आने लगीं। (चित्र M-3/1)

रात्रि का नीरव शान्त समय, संगीत के उस मधुर मोहक वातावरण में सभी बेभान से थे। सम्राट् का आदेश शय्यापालक को याद नहीं आया, पूरी रात संगीत सभा चलती रही। सम्राट् नींद में लीन थे। उषाकाल होने को आया, तो सम्राट् की आँखें खुलीं, देखा, संगीत का रंग वैसा ही जमा हुआ है। सभी संगीत की मस्ती में झूम रहे हैं। त्रिपृष्ठ वासुदेव को क्रोध आ गया, शय्यापालक को डाँटते हुए कहा—"मैंने कहा था, मुझे नींद आने लगे तो संगीत बन्द करा देना। तुमने क्यों नहीं किया?" शय्यापालक ने घिघियाते हुए निवेदन किया— "महाराज! भूल हो गई, संगीत के आनन्द की वर्षा हो रही थी, सो बन्द कराना भूल गया।"

आज्ञा-भंग होने पर त्रिपृष्ठ वासुदेव का क्रोध बढ़ गया। वे शय्यापालक की ढीठता पर आग-बबूला हो उठे। अपने सेवकों से कहा—''इसको संगीत बहुत प्रिय है न? अपने स्वामी की आज्ञा से भी ज्यादा इसके कानों को संगीत अच्छा लगता है, तो जाओ, शीशा उबालकर इसके दोनों कानों में डाल दो। आंज्ञा की अवहेलना करने का यही दण्ड दो इसे!'

Illustrated Tirthankar Charitra

(808)

सचित्र तीर्थंकर चरित्र

विमल 🤃 🚉











् सिंह



गज



तक्ष्मी

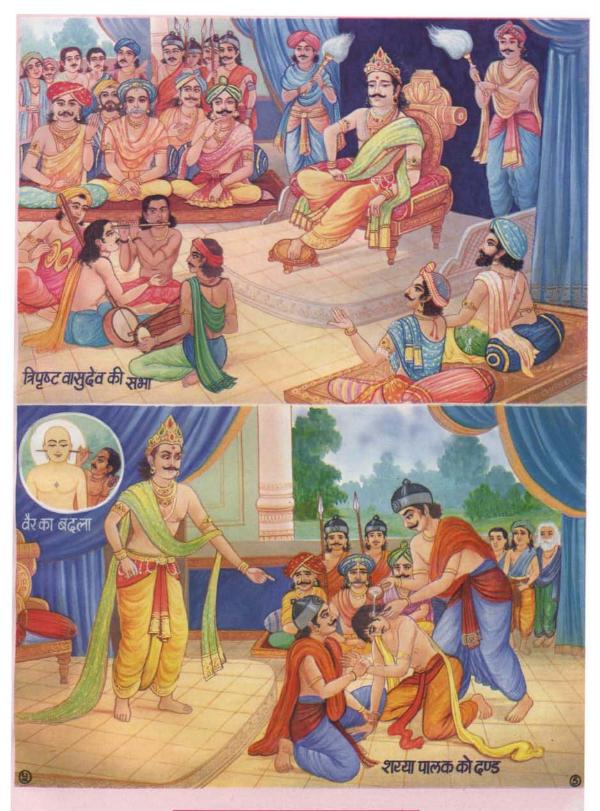


---पुष्पमाला

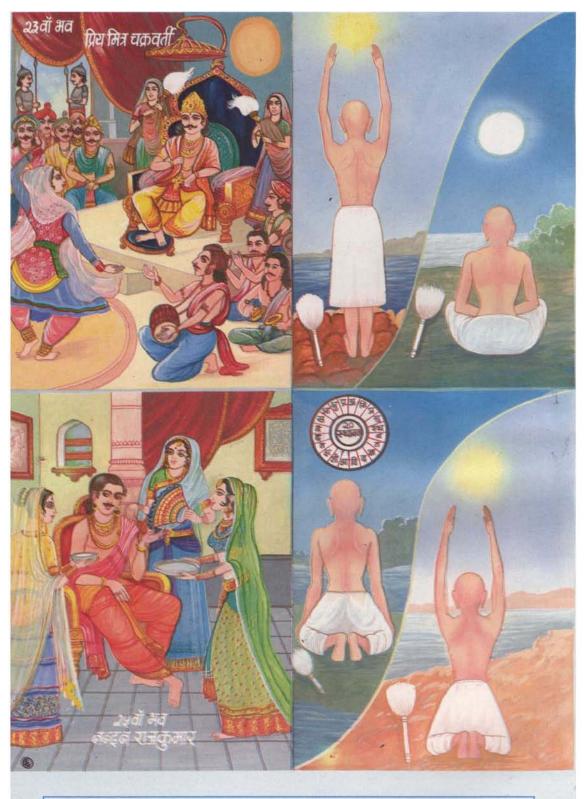
> — चन्द्र

्र सूर्य

_



M 3 त्रिपृष्ठ वासुदेव भव का चरित्र। The story of Triprishtha Vasudev



M 4 (9) प्रियमित्र चक्रवर्ती का भव (२) नन्दनमुनि का त्याग और साधना।

(1) Priyamitra Chakravarti (2) The detachment and spiritual practice of Nandan Muni



वासुदेव की आज्ञा का पालन हुआ। भयंकर वेदना से छटपटाते हुए चीखते शय्यापालक के प्राण पखेरू उड़ गये। (चित्र M-3/2)

उचित दिशा: प्रियमित्र चक्रवर्ती

महाविदेह क्षेत्र में मूकानगरी, धनंजय राजा की धारणी रानी, नयसार का जीव यहाँ राजकुमार के रूप में जन्म लेता है। कुमार का नाम प्रियमित्र रखा गया। अद्मुत शीर्य, पराक्रम के साथ ही कुमार के हृदय में करुणा और संवेग के संस्कार भी जाग्रत हुए। असीम पुण्य बल का स्वामी प्रियमित्र क्रमशः चक्रवर्ती बनता है। पिछले जन्मों के क्रोध, अहंकार आदि के संस्कार क्षीण हो जाने से प्रियमित्र यहाँ पर उदार, विनम्न और दयालु वृत्ति का एक आदर्श चक्रवर्ती शासक कहलाया। छह खण्ड का साम्राज्य प्राप्त होने पर भी प्रियमित्र का हृदय भोगों से विरक्त होने की कामना करता रहता था।

एक दिन सम्राट् प्रियमित्र ने पोट्टिलाचार्य का दर्शन किया, प्रवचन सुना। प्रवचन से अन्तर चेतना में छुपे धार्मिकता और सात्विकता के पवित्र संस्कार जाग उठे। अपने निश्चय में अडिग प्रियमित्र चक्रवर्ती छह खण्ड का विशाल साम्राज्य त्यागकर अकिंचन श्रमण बन गया। प्रियमित्र ने एक कोटि वर्ष तक ध्यान, तप-संयम आदि की उत्कृष्ट आराधना की। यह भगवान महावीर का तेईसवाँ भव था। पोट्टिलाचार्य का शिष्य होने के कारण इनका दूसरा नाम ''पोट्टिल" भी प्रसिद्ध हो गया। आयुष्य पूर्णकर प्रियमित्र मुनि महाशुक्र कल्प में देव हुए। (चित्र M-4/1)

नन्दन मुनि की अद्भुत साधना

महाशुक्र कल्प का आयुष्य पूर्ण होने पर नयसार का जीव भरत क्षेत्र की छत्रानगरी में जितशत्रु राजा की रानी भद्रा का अंगजात ''नन्दन'' नाम से प्रसिद्ध होता है।

नन्दन राजकुमार के हृदय में बच्पन से ही भोग-विलास, रंग-राग, खेल-कूद के प्रिति निर्वेद भाव रहता है। रूपवती रानियों का प्रेम और भौतिक सुखों की भरमार भी राजकुमार को संसार में नहीं फँसा सकी। उनके मन में दयानुता और सेवा-भक्ति के विशेष संस्कार जाग्रत होने लगते हैं। आपद्ग्रस्त दीन-जीवों के प्रित उसके मन में करुणा का सागर हिलोरें मारता है। अध्यात्म-ज्ञान, तत्त्व-चिन्तन और सत्य के प्रित उत्कृष्ट जिज्ञासा से वह युवावस्था में गंभीर दार्शनिक जैसे बने रहते हैं।

नन्दन राजकुमार के मन में भोग से विरक्ति और त्याग के प्रति सहज अभिरुचि होने के कारण वे एक दिन गृह त्यागकर दीक्षा लेते हैं, और कठिन तपश्चरण करके समाधि तथा ध्यान की निर्मलता बढ़ाते हुए देह में ही देहातीत भाव से रहने लगते हैं। नन्दन मुनि एक अद्भुत घोर तपस्वी का जीवन जीते हुए एक लाख वर्ष तक निरन्तर मास-मासखमण की तपस्या करते हैं। अर्थात् पूरे संयम-साधना काल में उन्होंने एक लाख साठ हजार मासखमण तप किये। (चित्र M-4/2)

आगमों में अध्यात्म-साधना की उच्चता और उज्ज्वलता के बीस स्थान बताये गये हैं जिनकी उत्कृष्ट आराधना करके कोई भी जीव तीर्थंकर-नाम-कर्म का उपार्जन कर सकता है।

नन्दन मुनि भी निरन्तर बार-बार इन पवित्र बीस स्थानकों की आराधना—समाराधना करते रहते हैं और उत्कृष्ट लीनता, तन्मयता, तन्निष्ठा के क्षणों में रमण करते हुए तीर्थंकर-नाम-कर्म का बन्ध कर लेते हैं।

तपस्वी नन्दन मुनि आयुष्य पूर्णकर प्राणत देवलोक (२६वाँ भव) में महान् ऋद्धि सम्पन्न देव बनते हैं।

भगवान महाबीर : पूर्व-भव (१०५) Bhagavan Mahavir : Past-Incarnation



ध्वजा



कुम्भ



समुद्र



विमान-भवन



रत्न राशि



निधूम अग्नि





















24. BHAGAVAN MAHAVIR

PAST-INCARNATION

Bhagavan Mahavir was the last and the twenty fourth Tirthankar of this era in the Jain tradition. He had a highly developed multifaceted personality. He scintil-lated with the infinitely intense glow of the pure soul. All the virtues and powers of his soul were completely awakened and active. He had infinite power but, at the same time, he also had infinite compassion. Possessing ultimate powers of the soul, he was unconquerable even by gods and demons. Thus Tirthankar Mahavir was an undefeatable, fully developed and absolutely composite human being.

But the seeds of this grandeur and greatness of Bhagavan Mahavir were sown in the remote past. He had been doing rigorous penance, indulging in altruism and practising deep meditation in many of his past incarnations. From this angle the incidents from earlier incarnations of this supreme soul are very important and inspiring. The first incident in this sequence is known as "the first touch of righteousness". It is from the 27th birth before the final birth of the soul of Bhagavan Mahavir. The story of this birth as the village elder Nayasar, goes like this—

First Glimpse of Right Knowledge: Nayasar

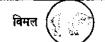
In the twenty seventh birth before being born as Bhagavan Mahavir, this soul was a village elder and forester working for king Shatrumardhan of Pratisthan city in the west Mahavideh area. He used to bring all the wood required for construction purposes from the forest. One day at noon time all the workers were taking rest after their lunch. Nayasar also sat under a tree in order to take the food he had brought along. Before starting to eat he saw some ascetics wandering at the foot of nearby hills. Nayasar thought that these ascetics are wandering without food or water in this scorching sun. If they happen to come this side, I will offer a part of my food to them. I will be benefitted by this simple act of serving guests and my day will become purposeful.

Innocent Nayasar waited looking at the approaching ascetics. With deep devotion he offered them this pure food. When they proceeded towards the town, Nayasar accompanied them for some distance to show the way. When Nayasar bowed before the ascetics before taking their leave, they gave him sermons of the true path, the simple code of compassion, pity, simplicity, humility and equanimity. Devoted and respectful, Nayasar got enlightened and the seed of righteousness (Samyaktva) sprouted in his mind. As this is the starting point of

Illustrated Tirthankar Charitra

१०६

सचित्र तीर्थंकर चरित्र

















itis











लक्ष्मी



पुष्पमाला

















r (4)) s



वासुपूज्य

the spiritual evolution, the moment when a soul lost in the darkness of illusion got the first glimpse of spiritual light, the counting of the earlier incarnations of the soul that became Bhagavan Mahavir begins here.

The Third Birth: Marichi

After completing his age (the age of a being, according to Jainism, is a fixed period determined by actions in the immediately preceeding birth), the soul of Nayasar was reborn as a god in the Saudharm Kalpa. He then took birth as Marichi, the son of Chakravarti (sovereign of six continents) Bharat in the city of Ayodhya. After hearing the first discourse of Bhagavan Rishabhdev he became a Shraman. But as he could not sustain the rigorous ascetic codes, he abandoned the dress of a Shraman, made desired relaxations in the harsh code of Shraman conduct, and became a Tridandi Parivrajak (a class of mendicants). He started keeping an umbrella and a pair of wooden slippers. He also used to take bath and apply fragrant pastes like sandal wood paste. However, he still believed the path of Rishabhdev to be the best. He would sit just outside the divine pavilion (Samavasaran) of Rishabhdev and when asked about his strange dress, he would innocently accept his weaknesses and preach to the people around, inspiring them to accept the religion of Shramans.

One day Bharat Chakravarti asked Bhagavan Rishabhdev, "Prabho! Is there any great being (soul) present in this congregation who will become a Tirthankar like you?" Rishabhdev replied, "Bharat! Outside this religious congregation sits your son Marichi dressed as a Parivrajak. After penances and other practices for many reincarnations, he will become the last Tirthankar of this cycle of time. During his passage from Marichi to Mahavir, he will also be born as Triprishtha Vasudev (the lord of three regions) in one birth and in another reincarnation as Priyamitra Chakravarti." (M-1/1)

Hearing about the astoundingly bright future of the soul of his son Marichi, Emperor Bharat burst with joy. He went to Marichi with the happy news and said, "Marichi! You are extremely lucky, I greet you as the future Tirthankar."

Marichi was overjoyed hearing the prophecy of Bhagavan Rishabhdev. His happiness was boundless. But at the same time, thoughts of the glory of his clan stirred his conceit. Filled with pride for his clan, he uttered, "How great is my clan and what a superior family is that to which I belong! My grandfather is the first Tirthankar, my father is the first Chakravarti, and I will became a Vasudev, a Chakravarti, and finally the last Tirthankar of this cycle of time. How great, indeed!" And thus Marichi almost burst with conceit. Slowly he slid down from the heights of spiritual excellence, and was drawn into the whirlpool of the egoism of racial supremacy. (M-1/2)

भगवान महावीर : पूर्व-भव

(608)

Bhagavan Mahavir : Past-Incarnation

















महावीर

ध्यजा



कुम्भ





समुद्र



विमान-भवन



रत्न राशि





सुमति अजित पद्मप्रभ ऋषभ

According to the Jain tradition, Marichi was the founder of the Parivrajak school. Marichi used to say that the Shramans were free of the distortions of mind, speech, and body, but the Parivrajaks had these. As such, the Parivrajaks started keeping a trident, there symbol. In his last days he made prince Kapil his disciple. From that point on the derivative Parivrajak school gradually distanced itself from the Shraman school.

Vishvabhuti

सिंह

वृषभ

लक्ष्मी

पुष्पमाला

चन्द

सूर्य

The soul of Marichi moved from the human dimension to that of gods and back again alternatively for twelve incarnations. When born as human he became Parivrajak many a time and observed numerous austerities. In his sixteenth reincarnation he was born as prince Vishvabhuti the nephew of king Vishvanandi of Raigrih. He became an ascetic and did harsh penance before breathing his last. In the seventeenth reincarnation he took birth as a god in the Mahashakra dimension of gods and in eighteenth as Triprishtha Vasudev.

Triprishtha Vasudev

Queen Mrigavati of king Prajapati of Potanpur gave birth to an extremely powerful son. He was named Triprishtha.

Prajapati was an ordinary king of a subordinate kingdom of the Prativasudev Ashvagriv (See appendix). Triprishtha was a very brave and valorous young man. When the fame of his powers and strength reached Ashvagriv he became apprehensive. He asked his astrologer about how he would meet his end. The astrologer said, "The man who would crush your powerful emissary-Chandamegh and also kill the ferocious lion of Tunga mountain will be the messanger of death for you."

One day Ashvagriv sent Chanda to Potanpur. When this emissary misbehaved, Triprishtha threw him out. Then an order was issued to Prajapati, "A ferocious lion has created havoc in the Shali area. Immediately proceed to that area and protect the farmers from the lion." When Prajapati prepared to go, prince Triprishtha requested, "Father! When we are available you need not take the trouble to proceed for this insignificant venture. Your sons can easily take care of that petty beast."

Triprishtha and his elder brother Baldev Achal Kumar went to that forest and enquired about the lion from the local populace. As directed, they proceeded toward the den of the lion. Disturbed by the noise of the village folk, the lion came out of its den and charged towards the princes. Looking at the approaching lion Triprishtha thought, "The creature is alone moving on its feet, why do I need my bodyguards and the chariot? When it does not carry any weapon, why should I? I will face it alone and bare handed." Triprishtha got down from the chariot

सचित्र तीर्थंकर चरित्र (806) Illustrated Tirthankar Charitra

अनन्त

शान्ति

and threw away his weapons. He fought alone and bare handed with the ferocious men-eater. In the end he caught hold of the jaws of the lion and tore it apart. Standing at a safe distance, the farmers jumped with joy and hailed the prince. The driver of the chariot of the prince went near the writhing lion, said a few words of sympathy, and covered its wounds with medicinal herbs. The dying moments of the beast became peaceful. This act infused a feeling of affection for the driver in the mind of the dying lion. (M-2/1)

When the driver reincarnated as the chief disciple of Bhagavan Mahavir, Indrabhuti Gautam, this lion was born as a farmer. When the farmer saw Gautam he was infused with a feeling of fraternity and respect for Gautam. He became Gautam's disciple. But when he happened to see Bhagavan Mahavir, the dormant feelings of fear and vengeance surfaced. Bhagavan Mahavir then revealed the cause of these dormant feelings by narrating the story of his earlier life. (M-2/2)

Prince Triprishtha conquered the evil king, Prativasudev Ashvagriv, and established his own empire over three continents. He became the first Vasudev of this cycle of time.

Lead in the Ears

Once the Vasudev was enjoying a musical concert in his assembly. When his eyelids became heavy with slumber he instructed his bed attendant, "When I am asleep stop the programme?"

After a few minutes Triprishtha closed his eyes and went to sleep. Everyone present was engrossed in the lilting music. The concert went on throughout the night. Suddenly Vasudev was awake. When he heard the music concert still going on, he turned crimson with anger. He shouted angrily at the attendant, "Why the music has not been stopped yet?" With folded hands the bed attendant submitted, "Everyone was lost in the intoxicating waves of the melodious music. Pardon me, Sire! I too became lost." The negligence in following his instructions added fuel to the fire of Triprishtha's anger. Directing all his anger on the negligent aide, he said, "Pour molten lead in the ears of this music buff. Let him realize the consequences of ignoring the instructions of his master for the sake of his love for music." Vasudev's order was carried out. Writhing with extreme and intolerable agony the bed attendant died on the spot. (M-3/1)

The soul in the form of Triprishtha accumulated the bondage of tarnishing Karmas due to its extremely cruel attitude. It had to suffer the excruciating result in the form and life as Mahavir. The aide reincarnated as a farmer and hammered nails in Mahavir's ears when he did penance as a Shraman. As a result of the intoxication of power, passion for grandeur, and cruelty of attitude,

भगवान महावीर : पूर्व-भव (१०९) Bhagavan Mahavir : Past-Incarnation

मल्लि (🐲) मुनिसुव्रत 🕬





ध्यजाः

पदा

सरीवर

समुद्र

विमान-

भवन

रत्न राशि

निध्म

अग्नि

ऋषभ

twenty third birth. (M-3/2)

अभिनन्दन

सुमति

पद्मप्रभ

सिंह

The Right Direction: Priyamitra Chakravarti

After seeing many auspicious dreams, the queen of Dhananjay, the ruler of Mukanagari, gave birth to a son. He was named as Priyamitra. As a result of his virtuous Karmas and his bravery he conquered all the six continents and became a Chakravarti. He enjoyed all these pleasures and grandeur befitting a Chakravarti. In the end, he got detached and became a Shraman by taking Diksha (the formal act of renouncing the mundane life style) from Pottilacharya. For about ten million years he indulged in serving the guru, studying and pondering over the scriptures, meditation, and a variety of austere penances. Through these he continued to wipe out the tarnishing Karmas acquired during previous lives. Living his age, he was reborn as a god in the Mahashukra Kalpa from where, in his next incarnation, he was born as the son of king Jitshatru of Chhatranagari. (M-4/1)

Triprishtha Vasudev, after living his age was reborn in the seventh hell. In his twenty first incarnation he became a lion; in the twenty second he again went to the fourth hell, and after that he was born as Priyamitra Chakravarti in the



Austere Practices : Nandan Muni

The life of prince Nandan (son of king Jitshatru) was like a lotus flower in the swamp of passions and mundane indulgences. The attraction of the beauty and love of beautiful damsels did not divert him from his spiritual quest. Finally he became a disciple of Pottilacharya. Becoming an ascetic, he started purifying his soul with the fire of penance. He undertook the tough practice of the twenty step penance that includes discipline, penance, devotion for Arihant, service of the ascetic, and other such purifying acts (See appendix 2). As a result of these practices, he earned the Tirthankar-nam-and-gotra-karma (the Karma that would make him a Tirthankar in future birth). He spent about a hundred thousand years as a Shraman with perfect discipline. During this period he did one hundred and sixty thousand one month fasts. Living his age with austure practises, deep meditation, and unselfish service, he reincarnated as a god in the Pranat Pushpottar Viman (a specific dimension of gods). This was the birth preceding his reincarnation as Mahavir. (M-4/2)



लक्ष्मी

वृषभ

पुष्पमाला

चन्द्र













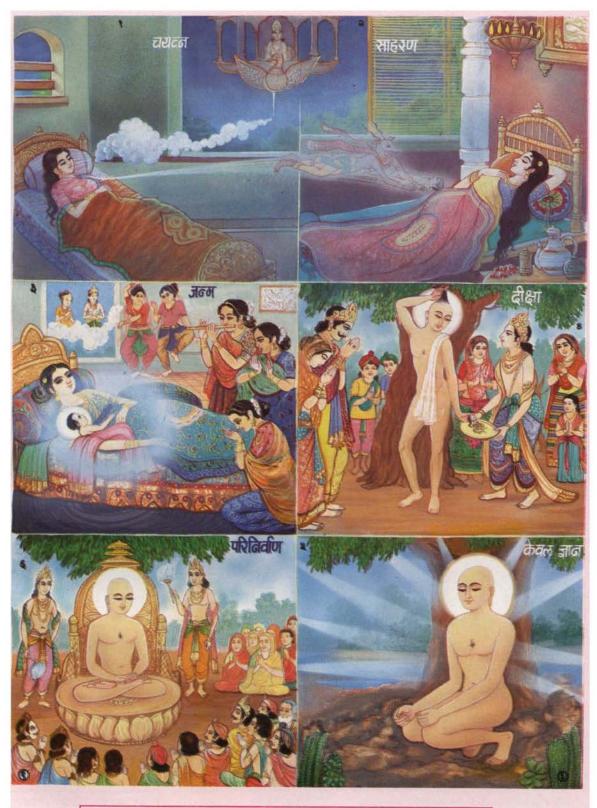
(११०)



सचित्र तीर्थंकर चरित्र







चित्र संख्या ६ Illustration 6 तीर्थंकरों के पंच-कल्याणक। Five auspicious events in a Tirthankar's life.













गृहस्थ-जीवन

सुविधि

जन्म से पूर्व की परिस्थितियाँ

वि. सं. ५४२ पूर्व (ईस्वी सन् ५९९ पूर्व) भारतवर्ष के पूर्वांचल में, एक आलोक पुँज का जन्म हुआ था जिसका नाम था—''वर्द्धमान महावीर''।

भगवान पार्श्वनाथ के समय तक भारतवर्ष में राजतंत्र की प्रधानता थी, परन्तु गणतंत्र का स्वरूप भी प्रकट होने लग गया था। गणतंत्र के विकास की वह आदि बेला थी। उनके परिनिर्वाण के पश्चात् गणतंत्र राज का विस्तार होने लगा और वैशाली गणराज्यों की राजधानी के रूप में विकसित हुई। महाराज चेटक, जो भगवान पार्श्वनाथ की परम्परा में दृढ़ आस्था रखते थे, वैशाली गणराज्य के अध्यक्ष थे।

गंगा के उत्तरी तट पर बसे लिच्छवी क्षत्रियों का एक विशाल पराक्रमी समूह गणराज्य का समर्थक था। उग्र, भोग, राजन्य, इक्ष्वाकु, लिच्छवि, ज्ञात तथा कौरव ये छह राजवंश इस गणराज्य के प्रमुख सदस्य थे, जिनके नौ राजा थे।

दूसरा गण समूह था-मल्ल। मल्ल गणतंत्र दो भागों में बँटा था-उत्तर-पश्चिम तथा दक्षिण-पूर्व। उत्तर-पश्चिम की राजधानी कुशीनगरी थी तथा दक्षिण-पूर्व की राजधानी पावा थी। मल्ल गणराज्य के नी राजा भी गणतंत्र के पक्क समर्थक थे। नौ मल्ल, नौ लिच्छवी, यों अठारह गणराजाओं का एक सुसंगठित गणराज्य था वज्जी संघ। वैशाली गणराज्य के लिच्छवी, सूर्यवंशी क्षत्रिय थे-जो मर्यादा पुरुषोत्तम राम के वंशज कहलाते थे। भगवान महावीर एवं उद्ध के उदय से पूर्व यह विदेह नाम से प्रसिद्ध थे, किन्तु धीरे-धीरे लिच्छवी नाम अधिक प्रचलित हो गया। फिर भी उनका सांस्कृतिक स्वरूप विदेह के रूप में ही सदा प्रसिद्ध रहा है। जैन साहित्य में महाराज चेटक को विदेहराज कहा गया है और चेटक राजा की बहिन त्रिशला विदेहदित्रा कहलाती थी। इसलिए भगवान महावीर को भी विदेह सुकुमाल कहा गया है। ये उपनाम विदेह राज्य की धार्मिक और सांस्कृतिक गरिमा के प्रतीक हैं।

वैशाली का राज-परिवार

वैशाली के उत्तर भाग में एक उपनगर था-कुण्डपुर सिन्नवेश। कुण्डपुर के दक्षिण भाग में ब्राह्मणों की बन्ती थी, जिनका प्रमुख नायक था-ऋषभदत्त। देवानन्दा उसकी पत्नी थी। यद्यपि ऋषभदत्त वेद-वेदांग का विद्वान् धनाढ्य ब्राह्मण था, फिर भी भगवान पार्श्वनाथ का पक्षा उपासक था।

कुण्डपुर के उत्तर भाग में ज्ञातवंशी क्षत्रियों की बस्ती थी इसलिये यह क्षत्रिय कुण्डपुर कहलाता था। सिद्धार्थ यहाँ के नायक थे। सिद्धार्थ के पराक्रम और अपार ऐश्वर्य के कारण उन्हें राजा और नरेन्द्र आदि सम्मानजनक सम्बोधनों से पुकारा जाता था। वैशाली गणराज्य में उनका अत्यधिक प्रभाव था।

वैशाली गणाध्यक्ष चेटक की बहिन त्रिशला राजा सिद्धार्थ की रानी थी। चेटक का ज्येष्ठ पुत्र सिंहभद्र (सिंह सेनापति) वज्जी गणतंत्र का प्रधान सेनानायक था।

भगवान पहावीर : गृहस्थ-जीवन

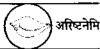
(999)

Bhagavan Mahavir : Life as Householder













महावीर

ध्वजा



कुम्भ

पदा सरोवर

समुद्र

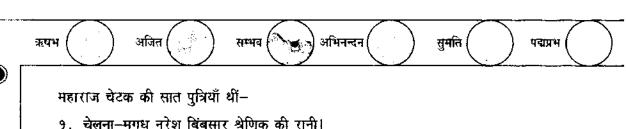
विमान-भवन



रत्न राशि



निर्धूम अग्नि



- २. शिवा-अवन्तीपति चण्डप्रद्योत की रानी।
- मगावती—कौशाम्बी (वत्स देश) नरेश शतानीक की रानी।
- ४. पद्मावती-चंपापति दिधवाहन की रानी (चन्दनबाला की भाता)।
- ५. प्रभावती-सिन्धु-सीवीर देश के राजा उदायन (उदाई) की रानी।
- ६. ज्येष्ठा-भगवान महावीर के ज्येष्ठ भ्राता राजकुमार नन्दिवर्धन की रानी।
- ७. सुज्येष्ठा-बाल ब्रह्मचारिणी। भगवान महावीर की शिष्या बनीं।

जैन एवं बौद्ध साहित्य में प्रसिद्ध वीर पात्र अजातशत्र (कृणिक) एवं वत्सराज उदायन महाराज चेटक के सगे दौहित्र थे।

स्वप्न दर्शन : पूर्वालोक

एक रात माता त्रिशला सुरम्य शयन-कक्ष में, कोमल शय्या पर लेटी हुई अचानक १४ शुभ स्वप्न देखकर जाग्रत हो उठती हैं। उसका अंग-अंग पुलिकत प्रफुल्लित रोमांचित-सा हो जाता है। (चित्र M-5)

शय्या त्यागकर त्रिशलादेवी भद्रासन पर बैठ जाती हैं। सोचती हैं-एक साथ इतने दिव्य शुभ स्वप्न ! ंंंं आज जीवर्न में पहली बार ऐसे विलक्षण स्वप्न देखे हैं मैंने ंंं इनका क्या शुभ फल होगा ? फिर महाराज सिद्धार्थ के शयन-कक्ष में आकर उन्हें शुभ स्वप्न बताये!

स्वप्न सुनकर महाराज सिद्धार्थ अत्यन्त प्रफुल्लित हुए। गद्गद् स्वर में बोले-''देवी ! आपके स्वप्न कल्याणकारी हैं। हमें अर्थ-लाभ, भोग-लाभ, सुख-लाभ और पुत्र-लाभ होगा और राज्य की भी वृद्धि होगी। आप भाग्यशालिनी हो, जो एक साथ इतने शुभ स्वप्न देखे हैं। इन शुभ स्वप्नों का अर्थ सूचित करता है-आप जिस पुत्र-रत्न को जन्म दोगी, वह संसार में अति विशिष्ट अद्वितीय व्यक्तित्व वाला होगा। इस धरती पर जितने भी शुभ लक्षण शुभ तत्त्व हैं, उन सबकी संचित निधि के रूप में होगा यह पुत्र-रत्न।

प्रातःकालीन कार्यों से निवृत्त होकर महाराज सिद्धार्थ व देवी त्रिशला सभामण्डप में आकर विराजमान हुए। पास ही छोटे भाई सुपार्श्व, उनकी रानी आदि भी बैठे थे।

वैशाली के प्रसिद्ध स्वप्न-पाठक राजसभा में आये। महाराज सिद्धार्थ एवं देवी त्रिशला ने अष्टांग निमित्त के जाता स्वप्न-पाठकों का अभिवादन किया। उच्च आसन पर विठाकर महाराज ने उनसे कहा-

9. आचारांग सूत्र तथा कल्पसूत्र आदि ग्रंथों के अनुसार नयसार का जीव प्राणत देवलोक से च्यवकर आषाढ़ शुक्ला षष्ठी के दिन हस्तोत्तरा नक्षत्र का योग आने पर ऋषभदत्त ब्राह्मण की पत्नी देवानन्दा के गर्भ में अवतरित हुआ तभी देवानन्दा ने उसी रात १४ महान् शुम स्वप्न देखे, भावी के शुभ संकेतों से उसका रोम-रोम प्रफुल्लित हो गया। किन्तु ८२ दिन बीतने के बाद एक दिन अचानक देवानन्दा की ख़ुशियाँ लुट गई। वे महान् शुभ स्वप्न लौटते दिखाई दिये। उसी रात राजा सिद्धार्थ की रानी त्रिशला देवी शुभ रूग्न देखती हैं। आगम में उल्लेख है कि शक्रेन्द्र महाराज की आज्ञा से हरिणैगमेषी देव ने माता देवानन्दा का गर्म, त्रिशलादेवी की कृक्षि में साहरित कर दिया। -आचारांग सूत्र श्रुतस्कंध २, अ. २४

走走

वृषभ

सिंह

लक्ष्मी

पुष्पभाला

चन्द्र

सूर्य

Illustrated Tirthankar Charitra

११२)

सचित्र तीर्थंकर चरित्र



















"अष्टांग निमित्त शास्त्र के वेता विद्वज्जन ! आज रात्रि की शुभ बेला में अंतिम प्रहर के समय प्रियकारिणी विदेहदित्रा देवी त्रिशला ने १४ शुभ स्वप्न देखे हैं। आप अपने शास्त्र एवं अनुभव ज्ञान के आधार पर इन शुभ स्वप्नों का फल कथन करके हमारी जिज्ञासा को शान्त कीजिए।"

निमित्तवेत्ताओं ने देवी त्रिशला के श्रीमुख से स्वप्न सुने। पंडितों ने चिन्तन कर स्वप्न का शुभ फल इस प्रकार बताया-

"राजराजेन्द्र महाराज सिद्धार्थ ! स्वप्नशास्त्र के अनुसार ७२ शुभ स्वप्न होते हैं। उनमें ४२ सामान्य फल देने वाले और ३० शुभ फल देने वाले हैं। भाग्यशालिनी देवी त्रिशला ने १४ महास्वप्न देखे हैं दे अतिशय शुभ तथा दिव्य फल की सूचना करते हैं। इन स्वप्नों के अनुसार देवी त्रिशला एक चक्रवर्ती पुत्र की माता होंगी किन्तु।

महाराज ! शास्त्रों के अनुसार चक्रवर्ती सम्राट् तो १२ हो चुके हैं, धर्म-चक्रवर्ती तीर्थंकर अभी एक और होंगे : । इसलिए सभी लक्षण और परिस्थितियाँ इस सत्य को उद्घाटित करते हैं कि आपका लोकमंगलकारी पुत्र धर्म-चक्रवर्ती होगा : : ।''

राजा सिद्धार्थ ने स्वप्न-पाठकों को भरपूर दान दक्षिणा दी और सत्कार सम्मानपूर्वक विदा किया।
 (चित्र M-6)

जन्म-कल्याणक : जन-कल्याणक का उद्घोष

वसन्त का महीना, प्रकृति अपने संपूर्ण सैन्दर्य के साथ विकसित थी। दिशाएँ स्वच्छ और निर्मल थीं। शीतल सुगन्धित पवन मन्द-मन्द गित से प्रकृति के कण-कण को आनन्दित कर रही थी। मध्य रात्रि का शान्त नीरव समय। धरती और आकाश पर चारों ओर दूधिया चाँदनी छितराई हुई थी। चैत्र शुक्ला त्रयोदशी की शुभ तिथि। उस पुण्य घड़ी में माता त्रिशला ने एक दिव्य शिशु को जन्म दिया।

शिशु क्या था, एक दिव्य प्रकाश पुँज था। धरती पर प्रथम चरण रखते ही क्षण-भर के लिए समूचा संसार आलोक से जगमगा उठा। प्रकाश की वह दिव्य किरण देखने के लिए जैसे अंधों को भी आँखें मिल गई। नरक की घोर तिमझा में प्रकाश फेल गया। नारक जीव अपनी वेदना भूल गये। कलह, संघर्ष और युद्ध वन्द हो गये। जन्म-भर के भूखे-प्यासे जन जैसे अमृत पीकर अपूर्व तृष्ति का अनुभव करने लगे। सर्वत्र शीतल सुगन्धित आरोग्यदायी हवाएँ बहने लगीं। असाध्य रोगी भी आरोग्य का अनुभव करने लग गये। जन्मजात वैरियों के मन में भी मैत्री की लहरें उठने लगीं। तीनों लोकों में एक अज्ञात आनन्द की हिलोरें उठ रही धीं, शिशु के जन्म लेते ही समूचे संसार के वातावरण में कुछ समय के लिए अद्भुत परिवर्तन आ गया।

भगवान के जन्म का मुखद संवाद मुनकर समस्त देवलोकवासी हर्ष से नाचने लगे। सर्वप्रथम देवराज शक्रेन्द्र ने आकर भगवान को नमस्कार किया, फिर रत्न कुक्षि धारिणी माता त्रिशला की तीन बार प्रदक्षिणा की। सभी देव-देवियाँ, गंधर्व, किन्नरियों ने मिलकर गीत गाये, नृत्य किया और तीर्थंकर देव का जन्म-कल्याणक उत्सव मनाया।

सर्वप्रथम छप्पन दिशाकुमारियों ने सूतिका कर्म किया तथा देवताओं ने भगवान का जन्म उत्सव मनाया। शक्रेन्द्र आदि देवताओं ने मिलकर मेरु पर्वत पर ले जाकर भगवान का जन्म अभिषेक किया, जन्म महिमा की।

भगवान महाबीर : गृहस्थ-जीवन

(११३)

Bhagavan Mahavir : Life as Householder



ध्वजा



कम्भ



समुद्र



वेमान-भवन



रत्न राशि



निधूम अग्नि





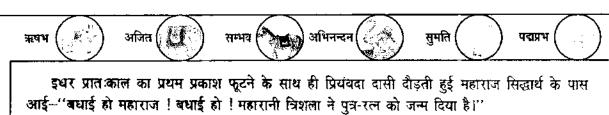












हर्ष-उल्लास से पुलिकत होकर महाराज ने राजचिह्न को मस्तिष्क पर रखकर बाकी शरीर पर पहने मूल्पचान आमूषण उतारकर प्रियंवदा दासी को उपहार में दे डाले। साथ ही जीवन-भर के लिए उसे दास-कर्म के बंधन से छुटकारा दे दिया।

इस प्रकार भाग्यशाली पुत्र के जन्म का शुभ संवाद सुनाने वाली दासी जीवन-भर के लिए दरिद्रता एवं दासता के बन्धनों से मुक्त हो गई।

अद्भुत जन्म उत्सव

महाराज सिद्धार्थ ने महामात्य को बुलाकर कहा-"नगर के उत्सव आयोजन अधिकारी को कहो-राजकुमार के जन्म उत्सव का अपूर्व आयोजन करें।"

महाराज की आज्ञा होते ही क्षत्रियकुण्ड नगर की गिलयों, राज-पथों आदि की सफाई की गई। सुगन्धित जल छिड़का गया। स्थान-स्थान पर पुष्पमालाएँ, बन्दनवारें टाँगी गई। घर-घर बधाइयाँ बाँटी गई। लोग खुशियों से नाचने-गाने लगे। मंगल गीतों की ध्वनियों से क्षत्रियकुण्ड की चारों दिशाएँ गूँजने लगीं।

महाराज सिद्धार्थ के मन में एक कल्पना उठी, महामात्य को बुलाकर कहा—"अमात्यवर ! हमारे कुल में पुत्र-जन्म के उत्सव का परम्परागत आयोजन तो हमेशा होता ही है, आज भी होगा, परन्तु आज कुछ नया, कुछ विलक्षण होना चाहिए।"

महामात्य ने निवेदन किया—"महाराज ! आप आज्ञा दीजिए, आप जैसा चाहते हैं, वैसा ही होगा ""।" महाराज सिद्धार्थ ने कहा—"आज बन्दीगृहों से समस्त बन्दियों को मुक्त कर दो, समस्त कर्जदारों के कर्ज माफ कर दो। जिनके पास आवश्यक सामग्री खरीदने के साधन नहीं हैं, उन्हें वस्तु खरीदने के लिए धन दो। व्यापारियों से कहो अन्न, वस्त्र आदि वस्तुएँ आधे मूल्य में दी जायें। उनका घाटा राजकोष से पूरा कर दिया जायेगा। नगर में जो यृद्ध, अपंग, दरिद्र हैं उन्हें राजकीय दानशालाओं से भोजन, वस्त्र आदि दिये जायें। रोगी तथा यृद्ध दासों को दास्य-कर्म से मुक्त कर दिया जाये। इस प्रकार समस्त नगरवासी आज दरिद्रता, दीनता, सुधा एवं बन्धनों की पीड़ा से मुक्त होकर स्वतंत्रतापूर्वक खुशियाँ मनाएँ।"

राजा सिद्धार्थ का आदेश क्रियान्वित हुआ। उत्सव अलैकिक उल्लास के साथ दस दिन तक मनाया गया! लोग धन्य-धन्य कह रहे थे—आज संसार की ताप संताप से मुक्ति क्लिने वाला कोई महापुरुष अवतरित हुआ है।

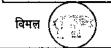
पुत्र के नामकरण की पूर्व बेला में महाराज सिद्धार्थ ने प्रियकारिणी महारानी त्रिशला से विचार-विमर्श करते हुए कहा—''देवी! जब से यह बालक आपके गर्भ में आया उसी दिन से हमारे कुल में, राज्य के कोषागार में, राजस्व की आय में. हमारी सेना के बल आदि में, राज्य के धन्य भंडार में तथा भवन, वैभव आदि में चतुर्मुखी अभिवृद्धि होती रही है, इसलिए हम इस पुण्यशाली बालक का नाम ''वर्द्धमान'' रखना चाहते हैं।

महारानी त्रिशला ने हर्षित होकर कहा-"महाराज ! आपका विचार यथार्थ है। यह भाग्यशाली बालक सभी प्रकार की अभिवृद्धि करने वाला होगा।" (चित्र M-7)

Illustrated Tirthankar Charitra

(११४)

सचित्र तीर्थंकर चरित्र



अनन्त 🐙







आ (हिंह

सिंह

वृषभ

लक्ष्मी

पुष्पमाला

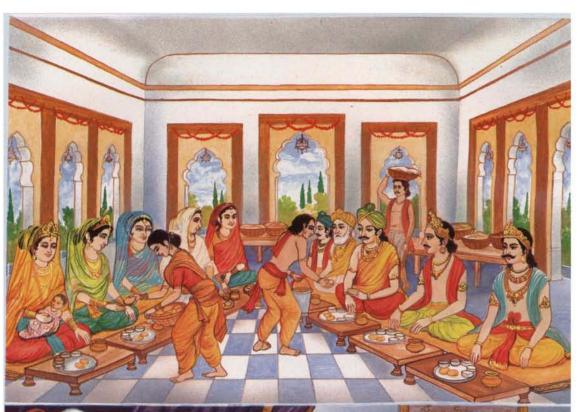
्र चन्द्र

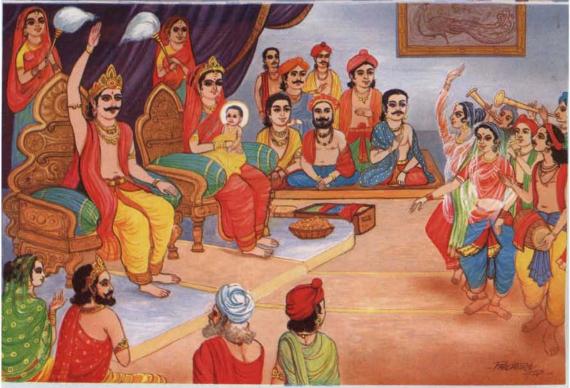
चन्द्र

्र सूर्य



M 7 चतुर्मुखी वृद्धि देखकर सिद्धार्थ राजा व त्रिशला रानी द्वारा नामकरण विमर्श। Alround development and contemplation of name by king Siddhartha and queen Trishala





M 8 प्रीतिभोज का आयोजन तथा नामकरण। The great feast and name announcement





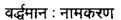












जन्म के बारहवें दिन राजा सिद्धार्थ ने एक विशाल प्रीतिभोज का आयोजन किया, जिसमें अपने समस्त मित्र, स्वजन-परिजनों को आमंत्रित किया। सभी को भोजन, वस्त्र आदि से सम्मानित करके राजा सिद्धार्थ ने उनके समक्ष अपने विचार व्यक्त किये-''जब से यह बालक देवी त्रिशला के गर्भ में आया है, उसी दिन से हमारे परिवार में परस्पर प्रीति, सदुभाव, सम्मान, लक्ष्मी, धन, धान्य, मणि-सुवर्ण आदि की अभिवृद्धि हुई है। प्रजा में आरोग्य, सुख-शान्ति, सौहार्द बढ़ा है। इस प्रकार इस पुत्र-रत्न के आगमन से हमारी श्री, समृद्धि, आरोग्य कीर्ति निरन्तर वर्द्धमान रही है जिस कारण देवी त्रिशला एवं मैंने यह विचार किया है कि इस बालक का गुण संपन्न नाम 'वर्द्धमान' रखा जाये।"

राजा सिद्धार्थ के प्रस्ताव का सर्वानुमति से अनुमोदन किया गया। (चित्र M-8)

अभयमूर्ति वर्द्धमान

एक वार शक्रेन्द्र ने देवसभा के बीच चर्चा करते हुए कहा-"संसार में आज कुमार वर्द्धमान जैसा साहसी, पराक्रमी और अभयमूर्ति दूसरा कोई नहीं है। एक शंकाल देव ने देवेन्द्र के कथन को अतिशयोक्ति कहकर उपहास किया, और कुमार वर्द्धमान के साहस की परीक्षा लेने के लिए धरती पर आया।

वर्द्धमान अनेक समवयस्क वालकों के साथ ज्ञातखंड वन में आमलकी क्रीड़ा खेल रहे थे। इस खेल में एक विशाल वृक्ष को लक्ष्य बनाकर सभी बालक वृक्ष की तरफ दौड़ते हैं। दौड़ने वालों में से जो बालक सबसे पहले वृक्ष पर चढ़कर उत्तर आता है वह विजयी कहलाता है।

वर्द्धमान बच्चों के साथ दौड़े, सबसे पहले वृक्ष पर चढ़ गये। तभी नीचे खड़े बच्चों ने देखा-एक भयंकर काला नाग वृक्ष के तने से लिपटा हुआ ऊपर की ओर फन फैलाकर फुंकार रहा है।

क्मार वर्द्धमान ने वृक्ष के तने पर लिपटे काले नाग को देखा. भयाक्रान्त बच्चों की चीख-चिल्लाहट भी मुनी, उन्होंने साथी बालकों से कहा-''शान्त रही ! इरो मत !'' और ऊपर से ही सीधी छलाँग लगाकर नीचे कूद आये। नाम भी फुंकारता हुआ वर्द्धमान पर झपटा तो कुमार ने विचित्र फूर्ती से नाग का फन पकड़ लिया और हाथ का एक झटका देकर रस्सी के टुकड़े की तरह खेल के मैदान से एक तरफ ले जाकर छोड़ दिया। (ঘির M-9/1)

अब दूसरा खेल प्रारंभ हुआ। इस क्रीड़ा का नाम था तिंद्षक क्रीड़ा। इस खेल में एक वृक्ष को लक्ष्य वनाकर सभी बाल खिलाड़ी दौड़ते और जो वालक सबसे पहले वृक्ष को छू लेता वह विजयी होता। विजेता वालक दूसरे बच्चों की पीठ पर सवार होकर खेल प्रारंभ होने के स्थान तक जाता। परीक्षा लेने आया देव भी वालक बनकर बच्चों की टोली में मिल गया। खेलते-खेलते हारकर वर्द्धमान को अपनी पीठ पर बैठाया, कुछ दूर चलकर ताड़ जैसा विशाल रौद्र रूप बनाता हुआ आकाश में उड़ने लगा। अन्य बालक चिल्लाने

भय के मारे काँपने लगे। तभी कूमार वर्द्धमान ने उसकी पीठ पर कसकर एक मुक्का मारा, मुक्के की मार लगते ही दैत्य के मुँह में चीख निकली, असह्य पीड़ा से वह कराह उठा। तत्काल अपना रीद्र रूप समेटकर धरती पर आ गया। वर्द्धमान झट से उसकी पीठ से नीचे उतरे। देखा तो दैत्य हवा में गायब हो गया। फिर देव रूप में उपस्थित होकर वर्द्धमान से क्षमा माँगने लगा। (चित्र M-9/2)

भगवान महावीर : गृहस्थ-जीवन

(११५)

Bhagavan Mahavir : Life as Householder













समुद्र



भवन



राशि



अग्नि













आठ वर्षीय बालक वर्द्धमान के साहस, सूझ-बूझ और निर्भीकता की चर्चा दूर-दूर तक फैल गई। स्वर्ग मे भी उनके अद्वितीय पराक्रम की प्रशंसा होने लगी।

पाठशाला में इन्द्र द्वारा परीक्षा

वर्द्धमान आठ वर्ष पूर्ण कर नवें वर्ष में प्रवेश कर रहे थे।

माता-पिता ने सोचा, वर्द्धमान को क्षत्रियोचित शस्त्र-विद्या और शास्त्र-विद्या दोनों का ही ज्ञान कराना चाहिए। इसलिए पाठशाला में भेजा गया। पाठशाला में जाकर उन्होंने एक सामान्य विद्यार्थी की भाँति आचार्य को सम्मानपूर्वक अभिवादन किया। ज्ञानी होते हुए भी विद्यादाता गुरु को पूर्ण सम्मान दिया। आचार्य ने वर्णमाला का पहला पाठ वर्द्धमान को पंद्राया। वर्द्धमान चुपचाप सुनते रहे। कुछ समय वाद आचार्य ने वर्द्धमान को बुलाकर पूछा-''कुमार ! तुम चुपचाप बैठे हो, पाठ याद नहीं करते।''

कमार ने सम्पूर्ण वर्णमाला सुना दी, आचार्य चिकत होकर देखते रह गये। तभी एक तिलकधारी वृद्ध ब्राह्मण पाठशाला में आया। आचार्य ने समागत विद्वान का सम्मान किया। ब्राह्मण ने व्याकरण के कुछ जटिल प्रश्न आचार्य से पूछे। आचार्य उत्तर नहीं दे सके। वे मौन होकर भूमि की ओर देखने लग गर्ये। ब्राह्मण मुस्कराकर बोला-''आचार्य ! आप जाने दीजिए। आपका यह नया विद्यार्थी मेरी शंकाओं का सही समाधान कर देगा। आप आज्ञा दें, तो मैं इनसे पूछ लूँ।"

आचार्य ने बालक वर्द्धमान की तरफ देखकर कहा-"ठीक है ! आप कुमार से पूछिए ?" वृद्ध ब्राह्मण ने बालक वर्द्धमान से व्याकरण के जटिल सूत्र, अक्षरों के पर्याय, उनके विकल्प आदि पूछे, तो बालक वर्द्धमान ने निःसंकोच धारा प्रवाह उन सबके सटीक उत्तर दे दिये। आचार्य तो दाँतों तले अंगुली दबाकर दिग्मूढ़ से देखते रह गये।

तभी वृद्ध ब्राह्मण मुस्कराये-"आचार्य ! आपको पता है राजकुमार वर्द्धमान के रूप में इस युग का ज्ञान-सर्य आपके समक्ष उपस्थित है। ये ही इस यूग में भावी तीर्थंकर महाज्ञानी भगवान महावीर होंगे।"

कहा जाता है-देवराज ने अपने प्रश्नों और वर्द्धमान द्वारा प्रदत्त उत्तरों को संकलित कर एक ग्रन्थ बनाया-"ऐन्द्र व्याकरण"! (चित्र M-10)

परिवार परिचय

राजा सिद्धार्थ जिस ज्ञातकुल के अधिनायक थे-वह ज्ञातकुल भगवान ऋषभदेव का इक्ष्याकुवंशीय कुल था। भगवान ऋषभदेव का गोत्र भी काश्यप था। सिद्धार्थ का गोत्र भी काश्यप था। गीरव की वात यह है कि २२ तीर्थंकर इक्ष्वाकृवंशीय काश्यप गोत्री हुए हैं।

देवी त्रिशला वैशाली गणाध्यक्ष चेटक की बहिन थीं। त्रिशला का दूसरा नाम विदेहदत्ता (दिन्ना) तथा प्रियकारिणी प्रसिद्ध था। (चित्र में सबसे ऊपर)

राजा सिद्धार्थ के छोटे भाई वर्द्धमान के पितृव्य (काका) का नाम सुपार्श्व था तथा राजा सिद्धार्थ के ज्येष्ठ पुत्र का नाम था-नन्दिवर्धन। भाभी का नाम ज्येष्ठा था। (चित्र में मध्य में)

वर्द्धमान की एक बहिन भी थी सुदर्शना। सुदर्शना का विवाह किसके साथ कब हुआ इसका उल्लेख नहीं मिलता है, किन्तु सुदर्शना का पुत्र जमालि राजकुमार प्रसिद्ध है। (चित्र में नीचे-दायें)

Illustrated Tirthankar Charitra

(११६)

सचित्र तीर्थंकर चरित्र

विमत्त







सिंह

गज

U वृषभ

लक्ष्मी



पुष्पमाला

चन्द्र

सूर्य















कुमार वर्द्धमान का अन्तः करण अपार ऐश्वर्य रूपी सरोवर में, जल में स्थित कमल की माँति सांसारिक भावनाओं से अलिप्त और संयम की शुचिता से पूर्ण पवित्र था। अपार ऐश्वर्य एवं राज वैभव का आकर्षण कभी उनके मन को नहीं मोह सका। माता-पिता के अत्यधिक स्नेहाग्रहवश महासामन्त समरवीर की रूपवती गुणवती कन्या यशोदा से पाणिग्रहण करना पड़ा। यशोदा से एक पुत्री का जन्म हुआ जिसका नाम प्रियदर्शना रखा गया। (चित्र में नीचे-बायें) शिक्षा आदि पूर्ण करने पर प्रियदर्शना का विवाह क्षत्रिय कुमार जमालि के साथ सम्पन्न हुआ। (चित्र M-11)

आचारांग सूत्र के अनुसार वर्द्धमान के तीन नाम बहुत प्रसिद्ध हुए-

- वद्धमाणे—वर्द्धमान नाम माता-पिता ने रखा।
- २. समणे-स्वाभाविक सन्मति होने के कारण समण-श्रमण।
- महावीरे-महावीर नाम उनकी अप्रतिम वीरता, निर्मीकता, परीषह, सिहण्णूता देखकर देवताओं ने रखा। सन्मति-अत्यन्त निर्मल बुद्धि होने के कारण महावीर का नाम "सन्मति" प्रसिद्ध हुआ। माता-पिता का स्वर्गवास

वर्द्धमान यों तो प्रारंभ से ही वैराग्यमयं जीवन जी रहे थे। उनके मन में संसार त्यागकर दीक्षा लेने की उत्कृष्ट भावना थी। परन्तु माता का अत्यधिक स्नेह होने के कारण उन्होंने संकल्प ले रखा था-"माता-पिता जब तक विद्यमान रहेंगे मैं दीक्षा की बात नहीं कलँगा।"

जब वर्द्धमान लगभग २८ वर्ष के हुए तो राजा सिद्धार्थ तथा माता त्रिशला बहुत वृद्ध हो चुके थे। जीवन के अंतिम समय में उन्होंने संलेषणा-संथारा कर देह त्याग किया। माता-पिता के स्वर्गवास पश्चात वर्द्धमान ने बड़े भाई नन्दिवर्धन को दीक्षा लेने का अपना संकल्प बताया। नन्दिवर्धन बोले-"भाई ! अभी माता-पिता के शोक से मेरा हृदय बहुत दुःखी है, तुम्हारा वियोग होने से मेरा दुःख और भी गहरा हो जायेगा। इसलिए मेरा स्नेहाग्रह मानकर दो वर्ष तक और रुको।"

बड़े भाई की बात का सम्मान कर वर्द्धमान दो वर्ष तक फिर घर में रहे। परन्त इस दो वर्ष के समय में घर में ही साधु की भाँति अत्यन्त संयम व ध्यान में लीन रहते। वे अपने महा अधिनिष्क्रमण (दीक्षा) की पूर्व तैयारी में लगे रहे।

वर्द्धमान का दीक्षा संकल्प जानकर नव लोकान्तिक देवों ने आकर उनसे प्रार्थना की-"हे धर्मोद्योतकारी सर्य ! आपका यह संकल्प महान है। संसार को आत्म-कल्याण का मार्ग दिखाइए।" (चित्र M-12/1)

राजकुमार वर्द्धमान ने एक वर्ष तक वर्षीदान दिया। वे प्रातःकाल एक प्रहर तक निरन्तर दान देते। जिसमें गरीब, अमीर, जो भी उनके समक्ष आकर याचना करता उसे वे वस्त्र, धन आदि मन इच्छित वस्तु प्रदान करते थे। एक वर्ष तक निरन्तर महामेघ की भाँति दान की वर्षा करने के पश्चात् महामिनिष्क्रमण को प्रस्तृत हुए। (चित्र M-12/2)

भगवान महावीर : गृहस्थ-जीवन ।

(889)

Bhagavan Mahavir : Life as Householder







मुनिसुव्रत







महावीर

ध्वजा





सरोवर



समुद्र



विमान-भवन



स्त्न राशि



निर्धूम अग्नि

सुमति पद्मप्रभ ऋषभ

LIFE AS HOUSEHOLDER

Conditions before the Birth

सिंह

वृषभ

लक्ष्मी

पुष्पमाला

चन्द्र

सूर्य

About 2594 years back (599 B.C.) in the eastern region of India, a bright source of spiritual light dawned. He became famous as Vardhaman Mahavir.

During the period of Bhagavan Parshvanath, the feudal system of rule prevailed in India. However, the beginnings of democratic system had started appearing on the political scene. It was the dawn of the localized republics. After his Nirvana the republics started expanding and Vaishali emerged as the capital of the federation of small republics. Maharaj Chetak, a staunch follower of the Parshya Tradition, was the president of the Vaishali republic and the federation.

On the northern shore of the Ganges a large and powerful group of Lichhavi Kshatriyas favoured democratic system. The six prominent clans that formed this republic were-Ugra, Bhog, Rajanya, Ikshvaku, Lichhavi, Jnat, and Kaurav. and nine chiefs represented them.

Another union was named Malla and it was divided into two parts-northwestern and south-eastern. The capital city of north-west was Kushinara and that of south-east was Pava. The nine chiefs of the Federation of Malla republics were also staunch supporters of the democratic system. Nine Mallas and nine Lichhavis combined to form a well organized apex union called the Union of Vajji Republics. The Lichhavis of the Vaishali republic were Suryavanshi Kshatriyas. the descendents of Maryada Purushottam Ram. Before the advent of Bhagavan Mahavir and the Buddha, these were famous as the Videhas, but later, the name Lichhavi became more popular. Still, as a cultural group they always retained their identity as the Videhas. In the Jair literature Maharaj Chetak has been mentioned as Videhraj, his sister, Trishla, as Videhdinna. Mahavir has also been mentioned as Videh Sukumal. All this is indicative of the higher religious and cultural status of the state of Videh.

The Royal Family of Vaishali

To the north of Vaishali, there was a suburb named Kundpur Sannivesh. There was a colony of Brahmans in the southern parts of Kundpur. The chef of these Brahmans was Rishabhdatta and his wife was Devananda. Although a rich Brahman and a scholar of the Vedas and Vedangas, Rishabhdatta was a devotee of Bhagavan Parshvanath.

In the northern parts of Kundpur there was a colony of Kshatriyas of the Jnat clan. The colony was known as Kshatriya Kundpur. Siddharth was the chief here. Because of his great valour and wealth he was respectfully addressed as Raja or Narendra. He was a highly influential member of the Vaishali republic

Illustrated Tirthankar Charitra

(११८)

सचित्र तीर्थंकर चरित्र





























Trishla, the sister of president Chetak of Vaishali, was married to Siddharth; she was also known as Videhdinna and Priyakarini, Chetak's elder son Simhabhadra (commander Simha) was the commander-in-chief of the army of the Vajji republic.

Maharaj Chetak had seven daughters—

- Chelana—Queen of king Bimbsar Shrenik of Magadh.
- Shiva—Queen of king Chandapradyot of Avanti.
- Mrigavati—Queen of king Shatanik of Kaushambi.
- 4. Padmavati-Queen of king Dhadhivahan of Champa (mother of Chandanbala).
 - 5. Prabhavati—Queen of king Udayan (Udayi) of Sindhu-Sauvir.
- 6. Jyeshtha-Wife of prince Nandivardhan, elder brother of Bhagavan Mahavir.
 - Sujveshtha—Did not marry. Became ascetic in Mahavir's organisation.

Ajatshatru (Kunik), the famous warrior character in Jain and Buddhist literature, and king Udayan of Vats were own grandsons of Maharaj Chetak.

Dreams: The Premonition

One night mother Trishla is sleeping in her soft and cozy bed. Suddenly she dreams of auspicious things and gets up. She is filled with an hitherto unexperienced joy and ecstasy. (M-5)

She leaves the bed, sits on a chair and contemplates, "So many divine and auspicious things together in my dream. I had such astonishing dream for the first time in my life, what does this indicate, indeed some benefits in the near future?" She goes to king Siddharth and tells him about the dreams.

King Siddharth beams with joy and says, "Devi! Your dreams are bounteous. We will gain wealth, pleasures, happiness, and a son. We shall also have territorial gains. The interpretation of these dreams indicates that the son born to you will be the embodiment of the combined virtues of all the virtuous things and signs existing on this earth. (In scriptures like Acharang and Kalpasutra, it is mentioned that the descent of the soul that was to be Mahavir was originally into the womb of Devananda Brahmani. The foetus was then transplanted into the womb of Trishla Kshatriyani by god Harinaigameshi under instructions from Shakrendra.)

After their morning chores, Maharaj Siddharth and Devi Trishla came and took their seats in the assembly hall. His younger brother Suparshva, his wife and other members of the royal family also took their seats nearby.

भगवान महाबीर : गृहस्थ-जीवन

११९)

Bhagavan Mahavir : Life as Householder

















महावीर





























Famous dream readers of Vaishali arrived into the assembly hall. Maharaj Siddharth and Devi Trishla greeted the dream readers and scholars of eight pronged system of augury, and offered them high seats. The king said to them, "Scholars of augury! Last night in the early hours of the morning, Priyakarini, Videhdinna Devi Trishla saw 14 auspicious dreams. Kindly interpret these dreams on the basis of your knowledge and experience of the science of augury and satisfy the curiosity of all of us."

The augurs listened to the details of the dreams from Devi Trishla and beamed with joy. Pondering over, they interpreted the dreams as follows—

"O king of kings! Maharaj Siddharth! According to the science of dreams there are 72 auspicious dreams. Out of these, 42 indicate of ordinary benefits and remaining 30 of great benefits. The dreams the fortunate Devi Trishla has seen are the fourteen great dreams that indicate extremely auspicious and divine gains in the near future. According to these dreams Devi Trishla will give birth to a son who will become a Chakravarti, but

Maharaj! According to the scriptures there already have been 12 Chakravartis, the prescribed number for this cycle of time. However, one Dharm-Chakravarti (Emperor of religion) is still to be born. As such, all the signs and circumstances point at the fact that your son, the benefactor of mankind, will be a Dharm-Chakravarti."

King Siddharth amply rewarded the dream-readers and sent them home with due honour. (M-6)

The Auspicious Birth

सिंह

वृषभ

लक्ष्मी

पुष्पमाला

चन्द्र

सूर्य

It was spring time and the nature was in full bloom. The atmosphere was clean and pure. Cool and fragrant breeze infused joy in every particle in the nature. In the soundless quietitude of the midnight, the sky was fluorescent with milky moonlight. The auspicious date was the thirteenth of the bright half of the month of Chaitra. The moon was in conjunction with the Uttaraphalguni Nakshatra (lunar mansion), the sign of victory. At that auspicious moment Mother Trishla gave birth to a divine child.

The child was the embodiment of divine light. As soon as it was born, the world was filled with radiant light. It appeared as if, to behold this divine light even the blind were blessed with eyes. This light penetrated even the oppressingly dense darkness of the hell. The hell beings forgot their pain. Quarrels, fights, and battles stopped. Those suffering from a life time of hunger and thirst experienced a divine feeling of fulfilment. All around cool and fragrant breeze started blowing. Patients of chronic ailments felt cured. Natural enemies

























सुविधि







वासुपूज्य

too had a surge of a feeling of mutual goodwill and love. All the three worlds (heaven, earth and hell) were filled with waves of happiness. With the birth of the child, the whole atmosphere underwent a strange change for sometime.

Hearing the news of the birth of Bhagavan Mahavir all the inhabitants of the dimensions of gods danced with joy. First of all, the king of gods, Shakrendra, came and bowed before the Bhagavan and then circumambulated mother Trishla three times. All the gods-goddesses and lower gods (Gandharva, Kinner etc.) sang and danced and celebrated the birth of the Tirthankar with gaiety.

According to the Kalpasutra, on the night of the birth of the child, first of all 56 divine maidens from all directions (Disha Kumaris) performed the first cleaning and other necessary post birth duties. Shakrendra and other gods, then, took the child to the peak of the Meru mountain and gave him the first bath and annointment. They sang songs in honour of the divine birth.

At dawn a maid named Priyamvada rushed to king Siddharth and announced, "Congratulations Sire! Many congratulations! Queen Trishla has given birth to a male child."

Filled with joy and ecstacy the king gave away all the ornaments on his body, save state emblems, to Priyamvada. He also released her from slavery. Thus, a slave woman was freed of her life long slavery just because she was the bearer of the good news of the birth of the Tirthankar.

Strange Celebrations

King Siddharth called his prime minister and ordered, "Tell the officer-incharge of celebrations to organize unique and special birth celebrations."

After the kings order, all the highways, roads, and lanes in the town of Kshatriyakund were cleared, perfumed water was sprayed, and buntings, garlands, and leaves were lavishly put everywhere. Sweets and gifts were distributed. People danced with joy. The whole town echoed with felicitous songs and music.

Maharaj Siddharth had an inspiration. He called the prime minister and said, "The celebrations of child birth in the royal family are part of the tradition. However, on this particular occasion I want something new, something unique."

The minister humbly submitted, "Sire! Express your wish and it will be carried out like an order."

King Siddharth said, "Today announce a general anmesty. Free all the prisoners; right off all the debts; distribute money to the needy; allow fifty per cent subsidy on all purchases from all traders; open centres for distribution of food and clothes to the poor, old, and invalid; and liberate old and sick

(

Bhagavan Mahavir : Life as Householder

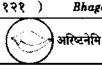
मिल्ल



भगवान महावीर : गृहस्थ-जीवन .











महावीर

ध्यजा















रत्न राशि







slaves. Thus let the townsfolk join the celebrations free from misery, hunger and bondage.

The order of king Siddharth was carried out. The celebrations continued for ten days with unprecedented enthusiasm. People hailed the occasion and muttered, "Some divine great soul has descended on the earth to liberate the world from pain and misery."

When the name giving ceremonies approached, king Siddharth said to Devi Trishla, "Devi! There has been a continued increase in our wealth, power and happiness. As such I think we should name the child as Vardhaman (ever increasing)."

Queen Trishla consented with joy, "Maharaj! You are absolutely correct. This child is certainly going to accelerate our alround development." (M-7)

Vardhaman : The Name

On the twelfth day after the birth of the child, king Siddharth organized a great feast and invited all his relatives and friends. After meals and other state courtesies, king Siddharth addressed the guests, "Since the day this child was conceived, our family has been blessed with increasing goodwill, respect, wealth, and mutual affection. Cash, gold, and gems have increased in our treasury. The public has gained health, peace, happiness, and goodwill. Thus since the moment this soul has descended, there has been a continued enhancement in our glory, wealth, health, and fame. As such I and Devi Trishla have thought of a befitting name for this child 'Vardhaman'."

King Siddharth's suggestion was unanimously approved and the child was formally named Vardhaman. (M-8)

Fearless Vardhaman

One day Shakrendra, while talking in the assembly of gods, stated, "There is no person mor brave, courageous and strong than prince Vardhaman." Praising an eight year old boy's bravery in the assembly of gods was a strange thing. A skeptic god jokingly said that Shakrendra was exaggerating. And he proceeded to test prince Vardhaman.

Vardhaman was playing with children of his age in the Jnatkhand jungle. The game was to race to a target tree, climb up, and come down. The first one to reach the ground was the winner.

Vardhaman ran the race and was first to climb the tree. Just then the boys on the ground, saw a ferocious cobra slithering up around the trunk of the tree and hissing with its raised hood. The boys started trembling with fear and ran away.

मचित्र तीर्थंकर चरित्र Illustrated Tirthankar Charitra १२२) विमल





सिंह





वृषभ



लक्ष्मी



पुष्पमाला

चन्द

सूर्य





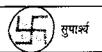






अर

















From a safe distance they shouted, "Vardhaman, do not come down. There is a black serpent on the tree-trunk.

Vardhaman, on his way down saw the snake and also heard the call of his friends. He shouted back, "Be quiet, and don't be afraid." He jumped down. The snake followed and, hissing, it leapt at Vardhaman. With astonishing agility, the prince caught the snake by its hood and with a jerk threw it away like a piece of rope. (M-9/1)

After this, the boys started playing another game called Tindushak. This game was also a race to a target tree. The winner was to ride piggy-back on the loosers and return to the base. The god who had come to test Vardhaman also joined the group in the disguise of a boy. In the game when Vardhaman won, the god got Vardhaman on his back and started back for the base. On way he transformed himself into a giant. With the prince on his back the god flew in the sky. The boys shouted with fear. Vardhaman, undaunted, hit the giant with his mighty fist. The god cried with pain and landed back on the ground. Vardhaman jumped from his back. The culprit disappeared and in his place appeared a god, who begged Vardhaman's pardon. (M-9/2)

Test by Indra in the School

When Vardhaman entered the ninth year of his age, his parents thought that it was time to impart martial and formal education befitting a Kshatriya boy to him. They decided to send him to school.

When he went to the school he offered his respects to the teacher just like any other ordinary student. In spite of having all worldly knowledge since his birth, by offering respect to his teacher, Vardhaman honoured the age old traditional ideals. The teacher gave him the first lesson of the alphabets. Vardhaman listened silently. After sometime the teacher called him and asked, "Prince! You are just idling, why don't you repeat the lesson and memorize it?" In reply, Vardhaman recited the full alphabets. The teacher was surprised.

While he was trying to fathom the surprising capacity of the little boy, an old Brahman, with a Tilak on his forehead, entered the school. The teacher greeted him and offered a seat. The Brahman asked some complex questions on grammar. The teacher could not reply and remained silent looking down in disgust. The Brahman smiled and said, "Acharya! Please do not bother yourself. May be, this new student of yours will solve my problem. If you allow me, I may ask him?"

The teacher consented and the old Brahman put the complex questions before Vardhaman. Little Vardhaman, without hesitating, gave correct and appropriate answers. The teacher stared dumbfounded at the little boy. The old Brahman

भगवान महाबार : गृहस्थ-जीवन

(१२३)

Bhagavan Mahavir : Life as Householder















महावीर

ध्यज



कुम्भ







विमान-भवन

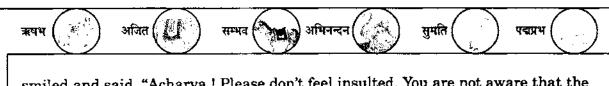












smiled and said, "Acharya! Please don't feel insulted. You are not aware that the sun of knowledge of this era is present before you as prince Vardhaman. He is the future Bhagavan Mahavir, the omniscient."

It is believed that Indra compiled his questions and Vardhaman's answers into a book named Aindra Vyakaran (the grammar of the Indra). (M-10)

The Family

Jnat clan to which king Siddharth belonged, was same as the Ikshvaku clan to which belonged Bhagavan Rishabhdev. Siddharth and Rishabhdeboth also belonged to the Kashyap family. It is a matter of pride for the Ikshvaku clan and Kashyap family that 22 Tirthankars came from the same family.

Devi Trishla was the sister of Chetak, the president of the Vaishali republic. Because of the paternal connection with Videh area she was also known as Videhdatta (dinna); her third name was Priyakarini. (in figure, top)

Vardhaman's uncle or king Siddharth's younger brother was Suparshva. Siddharth's elder son was Nandivardhan. Nandivardhan's wife was Jyeshtha. (in figure, middle)

Vardhaman also had a sister named Sudarshana. When and to whom Sudarshana was married is not mentioned anywhere. However, her son Jamali was famous figure. (in figure, below-right)

Although surrounded by unlimited wealth and grandeur, prince Vardhaman's mind and attitude was completely detached and purified by the fire of discipline. It was like a lotus flower in a pond. The power and the glory of the kingdom never attracted him. Even his marriage to Yashoda, daughter of prince Samarvir, was due to the affectionate persuation and pressure by and from his parents. Yashoda gave birth to a daughter, who was named Priyadarshana. (in figure, below-left) Prince Jamali married Sudarshana. (M-11)

According to Acharang Sutra, three names of Vardhaman became very famous-

- 1. Vaddhamane—This name, Vardhaman, was given by his parents.
- 2. Samane—Saman or Shraman indicates his natural unblemished intellect.
- 3. Mahavir—This indicates his unique bravery, courage, and tolerance. This name was given by the gods.

Another of his names was Sanmati. Because of his purity of thoughts he also became famous by this name. Other names of Bhagavan Mahavir, found in canonical literature are—Jnatputra, Vaishalik, Vir, Ativir, Antya Kashyap etc.

Rife













्र चन्द्र

्र सूर्य





Illustrated Tirthankar Charitra





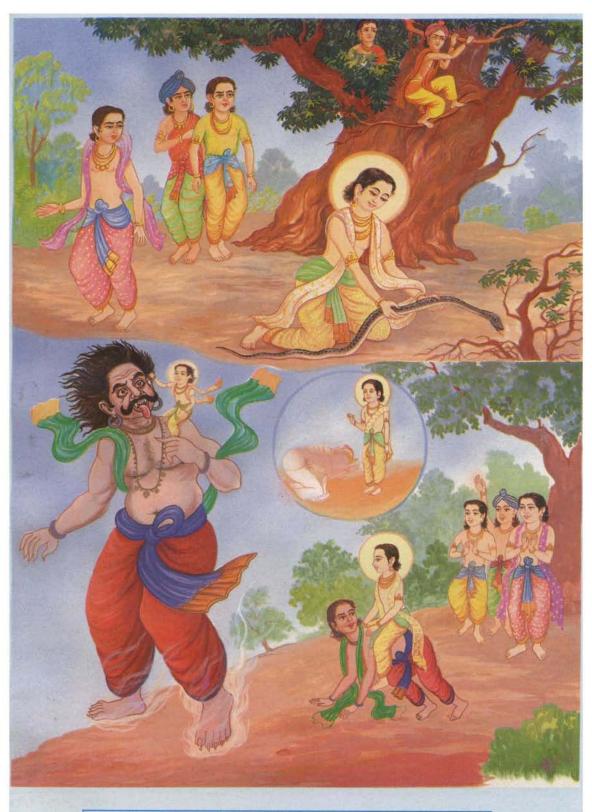


१२४)

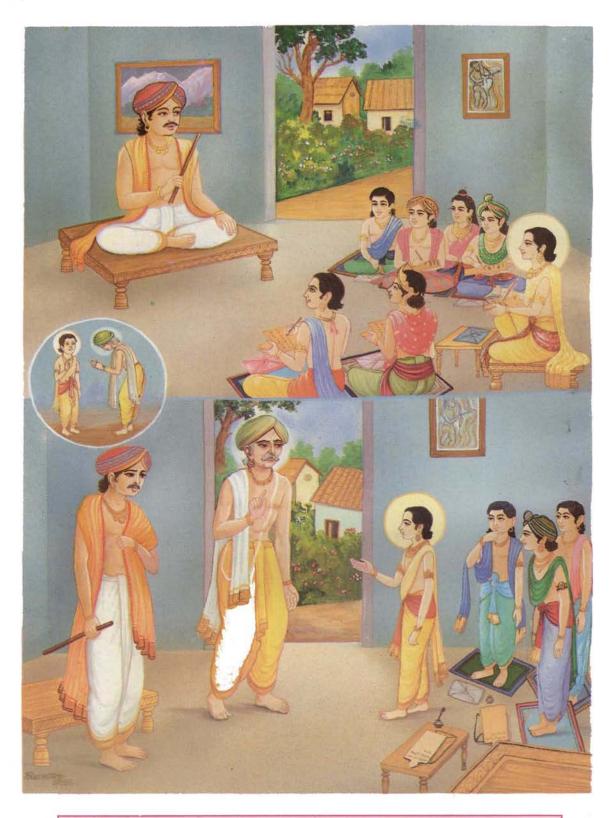




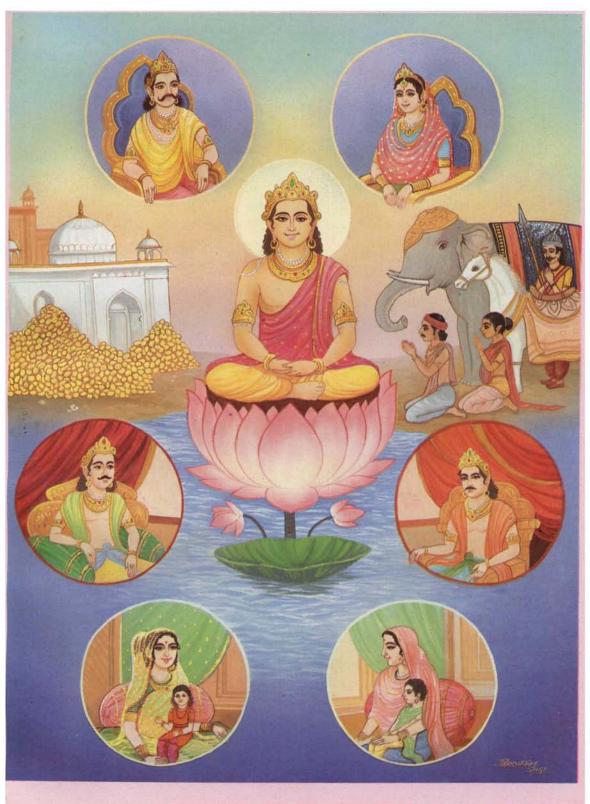
सचित्र तीर्थंकर चरित्र



M 9 देव द्वारा बालक वर्धमान के धैर्य व साहस की परीक्षा। Divine test of child Vardhaman's courage and presence of mind

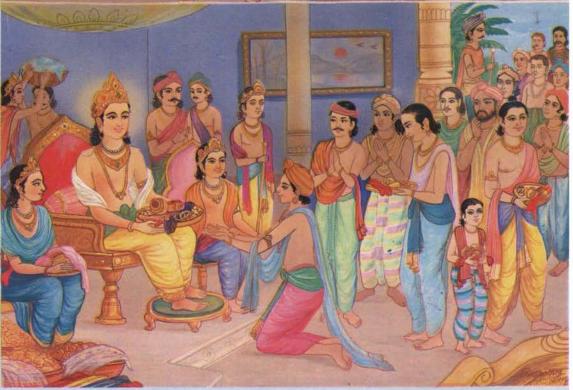


M 10 पाठशाला में वर्द्धमान द्वारा ब्राह्मण वेशधारी इन्द्र के प्रश्नों का समाधान। In school Vardhaman replies to questions by Indra disguised as a Brahman scholar



M 11 वर्द्धमान महावीर का परिवार परिचय। Family of Vardhaman Mahavir





M 12 (१) नव लोकान्तिक देवों द्वारा दीक्षा संकल्प का अभिनन्दन। (२) वर्षीदान।
(a) Felicitation of the resolution of renunciation by nine gods (b) The year long great charity













Death of the Parents

Detached from all mundane activities and desirous of becoming an ascetic in order to pursue the spiritual goal, Mahavir was keeping the matter pending due to his earlier resolution-"As long as the parents are alive I shall not think of taking Diksha."

When Mahavir became 28 years old his parents took the last vow of continued meditation without food. They gradually purified their souls and left their mortal bodies with a serene mental state. After their death Vardhaman told his elder brother, now king Nandivardhan, about his decision to become an ascetic. Nandivardhan replied in choking voice, "Prince! Loss of parents followed by your renunciation; how will I be able to bear these shocks at the same time. Honour my desire and postpone your programme for two years.

Vardhaman accepted his elder brother's request and stayed back for two more years. But during this period he lived like an ascetic. Indulging in spiritual practices with due discipline, he prepared himself for his impending renunciation.

Knowing about his resolve for renunciation, gods from the edge of the universe arrived and put forth the formal request, "O benefector of the world! Your resolve is great. Please proceed on the path of renunciation and propagate religion for the welfare of the world." (M-12/1)

Prince Vardhaman gave charity three hours everyday for one year. Rich or poor, whoever came to Vardhaman was awarded whatever he desired. At the end of one year Vardhaman was ready for renunciation. (M-12/2)





ध्वजा





समुद्र



विमान-भवन



रत्न सशि



निर्धम अग्नि

भगवान महावीर : गृहस्थ-जीवन

(१२५)

Bhagayan Mahavir : Life as Householder











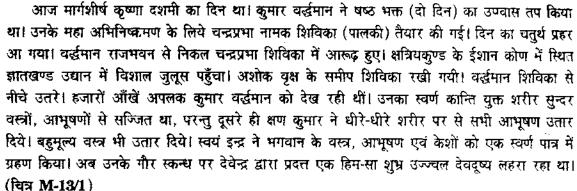






श्रमण-जीवन

महा अभिनिष्क्रमण



पूर्व दिशा की ओर अभिमुख होवार वर्द्धमान ने अपने हाथों पंचमुष्टि लोच किया, फिर धीर गम्भीर स्वर में 'नमो सिद्धाणं'-सिद्ध भगवान को नमस्कार करते हुए संयम जीवन की प्रतिज्ञा ग्रहण की-''करेमि सामाइयं सव्यं सावञ्जं जोगं पच्चक्खामि ं मैं जीवन-भर के लिये समभाव की साधना स्वीकार करता हूँ। समस्त पापकारी प्रवृत्तियों को त्यागता हूँ।''

भगवान महावीर ने अपने साधक जीवन का कठोर संकल्प स्वीकारते हुए प्रतिज्ञा की—''मैं अपने साधक जीवन में प्रत्येक स्थिति में समभाव से रहूँगा। मानव, तिर्यंच, देव-दानव आदि द्वारा किया हुआ कोई भी परीषह/उपसर्ग चाहे जितना भी भीषण हो, मैं पूर्ण समभाव के साथ उन्हें सहन कहँगा। जब तक केवलज्ञान नहीं प्राप्त कर लूँ मेरे अविचल और अडिंग चरण सिद्धि के आग्नेय पथ पर सतत अविराम बढ़ते रहेंगे ''।'' सभी ने अत्यन्त भक्तिपूर्वक श्रमण वर्द्धमान को वन्दन किया। (चित्र M-13/2)

दरिद्रता धुल गई

दो दिन के निर्जल उपवास के साथ कठोर संयम द्रात का संकल्प ग्रहण करके महाश्रमण अपनी मस्ती में मस्त, स्वस्थ मन, वचन के साथ बिना रुके, बिना पीछे मुझे सीधे, कंकरीले-पथरीले पथ पर चल रहे हैं। चलते ही जा रहे हैं।

पीछे से अचानक एक दीन स्वर पुकारता है। महाश्रमण वर्द्धमान के चरणों की गित मंद होती है। एक कृशकाय जर्जर देह वाला वृद्ध ब्राह्मण लाठी के सहारे तेज गित से चलता-हाँफता आकर महाश्रमण के चरणों में गिर पड़ता है। दयनीय चेहरे से वेदना बरस रही है। कंठ से दीन स्वर फूट रहा है—''कुमार वर्द्धमान! मेरा भी उद्धार कर दो, मुझे भी कुछ देकर जाओ, मेरी दरिद्रता दूर कर दो।''

महाश्रमण महावीर ने देखा, ब्राह्मणकुण्ड निवासी सोम शर्मा है यह। किसी समय महाराज सिद्धार्थ के दरबार में आया करता था। दयालु महाराज धन-धान्य, वस्त्रादि से ब्राह्मण की भरपूर सहायता करते थे। तब सुखी था यह, किन्तु महाराज के स्वर्गवास के पश्चात् इसे कभी नहीं देखा!

Illustrated Tirthankar Charitra

(१२६)

सचित्र तीर्थंकर चरित्र













Îtie

गज

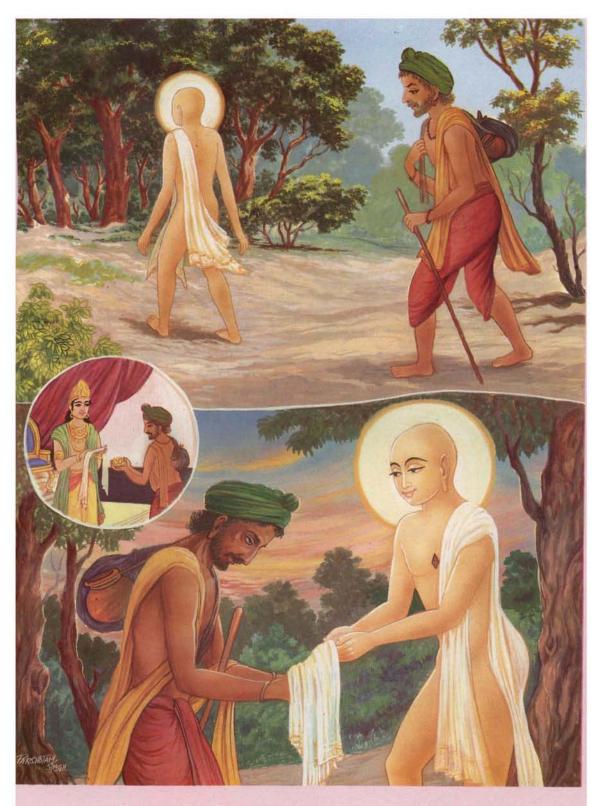
्रा वृषभ

लक्ष्मी

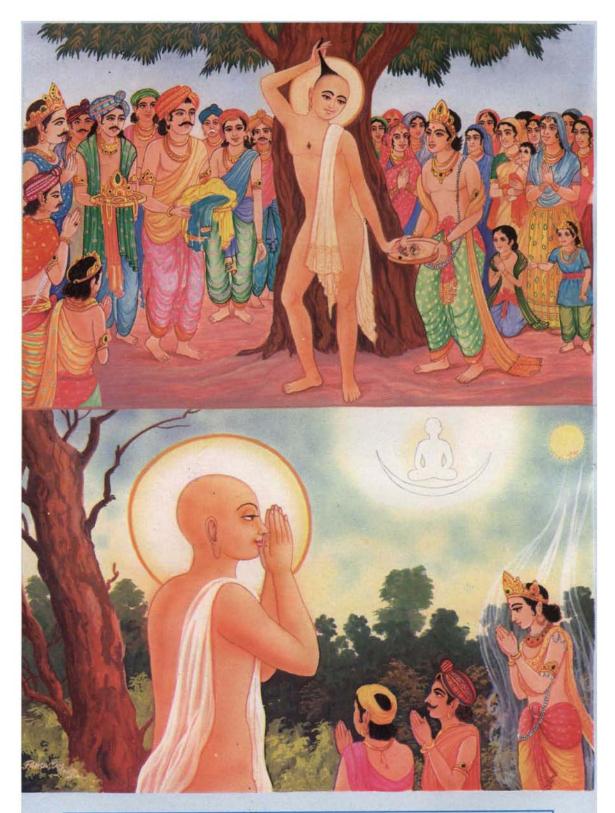
पुष्पमासा

् चन्द्र

सूर्य



M 14 सोमशर्मा ब्राह्मण को वस्त्रदान। Presenting the only peice of cloth to Brahman Somasharma.



M 13 राजसी वस्त्राभूषण उतारकर केश लोच तथा सिद्धों को नमस्कार सहित कठोर दीक्षा संकल्प। Plucking of hair after shedding regal dress and ornaments, and the tough resolution after salutations of Siddhas.















सोम शर्मा कहता है—"राजकुमार ! आप तो जानते ही हैं, महाराज सिद्धार्थ के स्वर्गवासी होने के बाद मैं इधर-उधर जनपदों में भटकता रहा, देश-देश की धूल छानता रहा। दो वर्ष भटक-भटककर आज ही प्रातःकाल घर पर आया हूँ। आते ही मेरे परिवार वालों ने बताया—"आपने एक वर्ष तक दान की मेघ वर्षा की, कल्पवृक्ष की भाँति सभी को मनोवाछित दान दिया, परन्तु मैं भाग्यहीन बचा रहा, आपके दानी कर-कमलों से एक कण भी प्राप्त नहीं कर सका, कुमार ! घर पर आते ही ुन पता चला कि आप आज ही सब राज-ऐश्वर्य त्यागकर श्रमण बन गये हैं " कुमार वर्द्धमान ! मुझ दीन पर दया करो, मेरी दरिद्रता को अपने मेघवर्षी हाथों से धो डालो।"

महावीर का कोमल करुणाशील मानस ब्राह्मण की दयनीय दशा देखकर पसीज गया। अपने कंधे पर रखे देवदूष्य वस्त्र का एक पट (खण्ड) ब्राह्मण के हाथों में थमा दिया। देवदूष्य को पाकर ब्राह्मण की प्रसन्नता का आर-पार नहीं रहा।

इस वस्त्र को लेकर सोम शर्मा वस्त्र रफू करने वाले कारीगर के पास आकर इसका मोल पूछने लगा। रफूगर ने पूछा—''ब्राह्मण देवता ! यह दिव्य देवदूष्य आपको कहाँ मिला? यह तो उसका एक पट है, यदि एक पट और ले आओ, तो मैं इसका पूर्ण वस्त्र तैयार कर दूँगा। एक लाख स्वर्ण-मुद्रा में कोई भी श्रीमंत इसे खरीद लेगा।''

लालची सोम शर्मा दौड़कर पुनः श्रमण महावीर के निकट आया और उनके पीछे हो लिया। लगभग एक वर्ष बाद महावीर के कंधे से देवदूष्य का दूसरा टुकड़ा गिर पड़ा। ब्राह्मण ने चुपके से उसे उठा लिया और रफूगर के पास लीटा। सोम शर्मा ने वस्त्र पट ठीक करवाकर महाराज नंदिवर्धन को एक लाख स्वर्ण-मुद्रा प्राप्त करके दे दिया। (चित्र M-14)

प्रथम उपसर्ग : पुरुषार्थ का पाठ

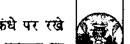
श्रमण महावीर ज्ञातखण्ड वन से निकलकर एक लम्बे सँकरे सुनसान मार्ग पर चल पड़े तो चलते गये। रास्ते में एक छोटी-सी वस्ती "कूर्मारग्राम" आ गया जिसका नाम आज कामन छपरा है। सूर्यास्त बेला नजदीक जानकर भगवान महावीर इसी गाँव के बाहर एक वृक्ष के नीचे ठहर गये। दोनों हाथ घुटनों की तरफ नीचे झुकाए, नाक के अग्र भाग पर दृष्टि स्थिर कर भगवान महावीर वृक्ष की भाँति स्थिर ध्यानलीन हो गये।

ग्वाला गाँव की तरफ चला गया। बैल घास चरते-चरते वन में दूर बहुत दूर निकल गये। कुछ समय के बाद ग्वाला अपना काम कर वापस लौटा, आस-पास बैल दिखाई नहीं दिये। श्रमण महावीर से पूछा-''भिक्खु, मेरे बैल कहाँ गये?'' महावीर तो मौन, ध्यानस्थ। कुछ भी उत्तर नहीं मिला। उधर दोनों बैल घूमते-घामते भगवान महावीर के निकट ही आकर बैठ गये। प्रातः सूर्योदय का समय हुआ, ग्वाला भटकता-भटकता वापस

भगवान महावीर : श्रमण-जीवन

(१२७)

Bhagavan Mahavir: The Life as an Ascetic



कुम्भ

ध्यजा

पद्म सरोवर

समुद्र



विमान-भवन



रत्न राशि



निर्धूम अग्नि







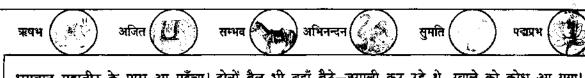
मुनिसुव्रत











भगवान महावीर के पास आ पहुँचा। दोनों बैल भी वहाँ बैठे-जुगाली कर रहे थे, ग्वाले को क्रोध आ गया। सोचा-''यह साधु नहीं, कोई चोर है।'' आव देखा न ताव उसने बैलों को बाँधने की रस्सी से ही महावीर को पीटना शुरू कर दिया।

"ठहरों ! मूर्ख अज्ञानी, क्या कर रहे हो ?" एक कड़कती रौबदार आवाज सुनाई दी। ग्वाला सहम गया। सामने खड़ा था एक दिव्य तेजस्वी पुरुष। ग्वाला उस देव पुरुष को देखते ही डर गया।

"तुम्हें मालूम है, जिन्हें तुम चोर समझकर बेरहमी से पीटते जा रहे हो, वो कौन हैं ? मूर्ख, कितना घोर अनर्थ कर रहे हो तुम ! ये तुम्हारे बैलों के चोर नहीं महाराज सिद्धार्थ के पुत्र-श्रमण महावीर हैं। महान् तपस्वी ध्यान योगी प्रभु महावीर।" (चित्र M-15/1)

ग्वाला गिड़गिड़ाकर प्रभु के चरणों में गिर गया। क्षमा माँगने लगा।

देवराज इन्द्र ने प्रमु महावीर की वन्दना की-"प्रभी ! ये अज्ञानी लोग आपको नहीं पहचान पाते, मूढ़तावश बार-बार आपको इस प्रकार की यंत्रणाएँ, पीड़ाएँ देने की धृष्टता करते रहेंगे। आप अकेले हैं। जंगल में ध्यान करते हैं, इस प्रकार की अप्रिय घटनाएँ बार-बार घटती रहेंगी।"

"प्रभु ! मुझे अनुमति दीजिए, मैं सतत आपश्री की सेवा में रहकर कष्टों का निवारण करता रहूँगा।"

महाश्रमण महावीर बोले-''देवराज ! आप जानते हैं, प्रत्येक साधक स्वयं के ही पुरुषार्थ, पराक्रम-बल वीर्य के भरोसे कहा ज्ञान और निर्वाण लक्ष्मी को प्राप्त करता है दूसरों के सहारे नहीं ```।''

श्रद्धाभिभूत दवेन्द्र श्रमण महाबीर की वन्दना कर लीट गये। (चित्र M-15/2) श्रुलपाणि यक्ष का उपसर्ग

भगवान महावीर वेगवती नदी के तट पर बसे एक सुनसान छोटे से गाँव में पहुँचे। उसके आस-पास का वातावरण बहुत ही भयावह, रौद्र और हृदय को कँपा देने वाला था। गाँव के बाहर सूखी नदी के किनारे एक छोटी-सी टेकरी थी, उस टेकरी पर शूलपाणि यक्ष का मन्दिर था। उसके आस-पास अनेकों नर-कंकाल पड़े मौत को भी इरा रहे थे। जगह-जगह हिंडुयों के ढेर लगे थे। श्रमण भगवान महावीर ने उपयुक्त स्थान समझकर ठहरने के लिए ग्रामवासियों से अनुमित माँगी। तो एक वृद्ध व्यक्ति ने काँपते हुए कहा--''आपको मालूम है, यह उस शूलपाणि दैत्य का मंदिर है, जो मनुष्य की हिंडुयों के ढेर पर खड़ा होकर अट्टहास करता है। जिस दुष्ट दैत्य ने वर्द्धमान नामक इस सुन्दर नगर को आज हिंडुयों का किला ''अस्थिकग्राम'' बना दिया है, वह अपने मंदिर में रात को किसी भी मनुष्य को ठहरने नहीं देता। यदि कोई ठहर भी जाये तो वह प्रातः जीवित नहीं बचता। आप इस भय-भैरव व काल-कोठरी में किसलिए ठहरना चाहते हैं?

श्रमण महावीर स्वयं अभय थे, इस धरती पर भय की जड़ काटकर अभय का कल्पवृक्ष उगाना चाहते थे, इसलिए इस भय-भैरव स्थान को ही उन्होंने चुना और संध्या होते-होते वे यक्ष मन्दिर के एक भाग में ध्यान-मुद्रा में खड़े हो गये।

रात्रि होते ही भयंकर हुँकार करता हुआ, एक हाथ में त्रिशूल लिये शूलपाणि यक्ष मन्दिर के अहाते में प्रकट हुआ।

Illustrated Tirthankar Charitra

(१२८)

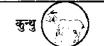
सचित्र तीर्थंकर चरित्र



अनन्त 🍂







· (圖)

His

(AC

गज

ada.

लक्ष्मी

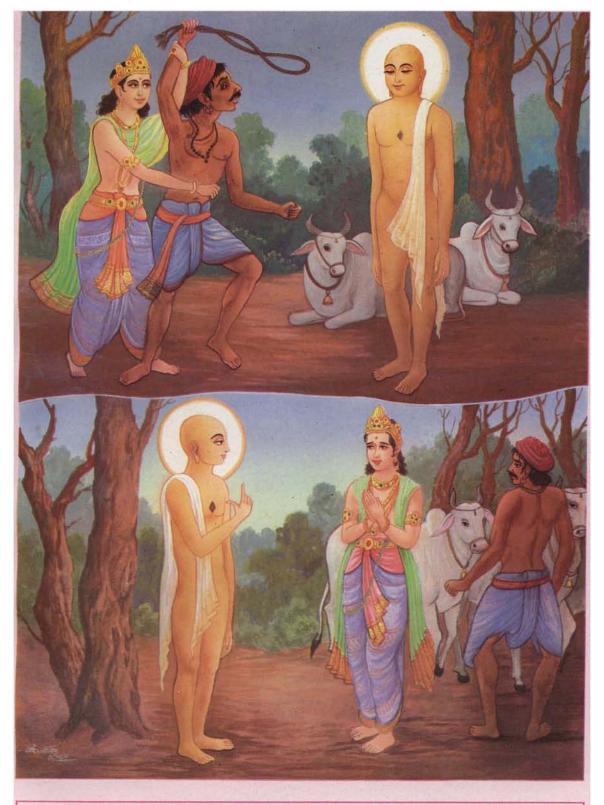
पुष्पमाला

__ ~=

चन्द्र

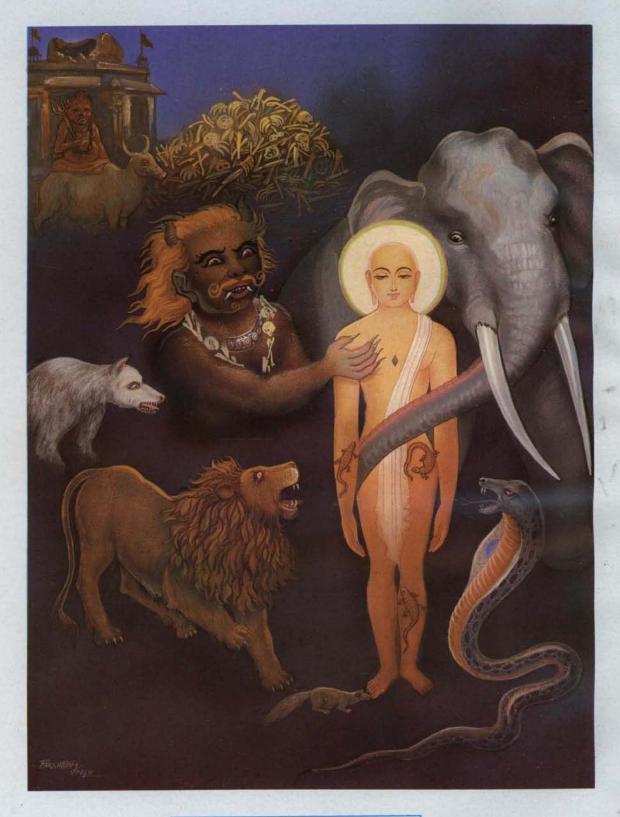
___ सूर्य

•



M 15 (१) ग्वाले द्वारा रस्सी से भगवान को उपसंर्ग, इन्द्रदेव द्वारा वचाव (२) इन्द्र के सेवा प्रस्ताव का श्रमण महावीर द्वारा अस्वीकार।

(1) Indra interfering in the infliction by the cowherd(2) Bhagavan Mahavir rejecting Indra's offer to provide protection.



M 16 शूलपाणि यक्ष द्वारा भयावने उपसर्ग। Fearsome afflictions by Shulpani









शीतल





शूलपाणि ने अपना विकराल रूप फैलाया, तीखे दंतशूलों वाला एक मदोन्मत हाथी चिंघाड़ता हुआ आया, महावीर पर दाँतों का प्रहार किया, सूँड से पकड़कर गेंद की भाँति ऊपर उछाल दिया। पाँवों के नीचे रींद डाला ।

फिर पिशाच का रूप धारण कर तीखे-तीखे नाखून और दाँतों से महावीर के शरीर को नींचने लगा, अइहास करके भयभीत करने का प्रयास किया।

भयंकर काले नाग का रूप धारण कर विष उगलती फूल्कारें कीं, जहरीले डंक मारे। फिर सिंह, भालू, नेवला, बिच्छू, जंगली छिपकलियाँ आदि भयानक रूप बनाकर अनेक प्रकार के उपसर्ग किये।

अवकी बार शूलपाणि ने एक विचित्र विकुर्वणा की। अपनी वैक्रिय शक्ति से महावीर के आँख, कान, नाक, सिर, दाँत, नख और पीठ इन सात कोमल स्थानों में भयंकर दर्द पैदा किया, ऐसा प्राणहारी असहा दर्द कि सामान्य मनुष्य तो तड़पता हुआ मृत्यु की गोद में सम्रा जाये। इस प्रकार रात के दो प्रहर तक महावीर को भयानक से भयानक कष्ट देते हुए यक्ष शूलपाणि थक गया, परन्तु महावीर चलित नहीं हुए। (चित्र M-16)

सहसा शूलपाणि के हृदय-पटल पर, श्रमण महावीर की दिव्य ध्यान शक्ति का आलोक पड़ा। उसका क्रोध शान्त हो गया। शुभ भाव धारा उमड़ने लगी। उसने हाथ जोड़े, सिर झुकाया, प्रभु के पावन चरणों का स्पर्श पाते ही उसकी वुद्धि का बन्द द्वार खुल गया।

''क्षमा करो प्रभू ! मेरा अपराध क्षमा करो। मैंने आपको पहचाना नहीं, क्रोध एवं क्रूरता का काला परदा मेरी बुद्धि पर जो गिर गया था।" शूलपाणि के मुख से पश्चात्ताप की भाषा निकलने लगी।

शान्त रस निमग्न प्रभु के नयन विकसित हुए, वाणी मुखर हई--''शान्त हो जाओ, शूलपाणि ! मन से क्रूरता और घृणा का जहर निकाल दो, तभी तुम्हें शान्ति मिलेगी, अभय मिलेगा। प्रेम से प्रेम मिलता है, क्रोध से क्रोध बढ़ता है। क्रोध की विष बेल की समाप्त करी, सबको अभय दो, तुम भी सदा के लिए अभय हो जाओ।''

भगवान महावीर के उद्बोधक वचनों से शूलपाणि का हृदय सदा-सदा के लिए शान्त हो गया। वर्षावास के साढ़े तीन मास तक यक्ष शूलपाणि भगवान महावीर की सेवा करता रहा। अमृतयोगी अणगार

शूलपाणि यक्ष के अस्थिकग्राम से प्रस्थान करके श्रमण महावीर श्वेताम्बिका नगरी की तरफ आगे बढ़े। मार्ग में एक भयानक सुनसान वीरान जंगल पड़ता था।

कुछ ग्वाल-बाल, जो जंगल में अपनी भेड़-बकरियाँ चरा रहे थे, महावीर को उस सुनसान पथ पर जाते देखा तो खूब जोर से पुकारने लगे-"साधु बाबा, रुक जाना, यह रास्ता बड़ा भयानक है, इस रास्ते पर दृष्टिविष कालिया नाग रहता है। उसकी जहरीली फुंकारों से पेड़-पौधे भी भस्म हो जाते हैं, उड़ते पक्षी तड़फड़ाकर गिर जाते हैं, मनुष्य खड़े-खड़े ही लुढ़क जाते हैं, इधर मत जाना, दूसरे रास्ते जाना बाबा।"

ग्वाल-बालों की भय भरी पुकार महावीर के कानों में पड़ी, उन्होंने स्मित भाव के साथ अभय मुद्रा वाला हाथ उठाया। धीर गंभीर गति से चलते हुए महावीर नागराज की बाँबी के निकट पहुँच गये। आस-पास अनेक पशु-पक्षियों व मनुष्यों के कंकाल पड़े थे, वृक्ष सूखकर ठूँठ बन गये थे। बाँबी के ठीक पास में उजड़ा-सा

भगवान महावीर : श्रमण-जीवन

(१२९)

Bhagavan Mahavir : The Life as an Ascetic













ध्वजा





सरोवर



समुद्र



विमान-भवन

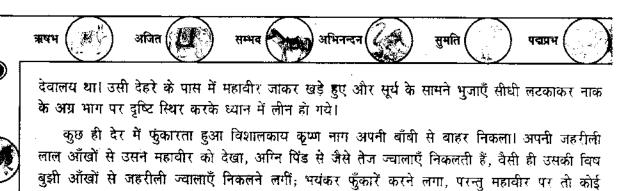


राशि



अग्नि





दूसरी <mark>बार पुनः सूर्य के सामने देखकर नाग ने जहरी</mark>ली तीक्ष्ण दृष्टि महावीर पर टिकाई, फुंकारें मार्रा. परन्तु अब भी स्थिर।

क्रोधाविष्ट नागराज ने तीसरी बार भी डंक मारा। जहरीली फुँकारें कीं। परन्तु उसके तीनों आक्रमण निष्फल हो गये। महावीर तो अभी भी बिना हिले-डुले शान्त खड़े थे। नाग आश्चर्य में डूबकर देखने लगा। यह क्या? जहाँ डंक मारा था, उस अँगूठे से रक्त के स्थान पर श्वेत दूध की धार बह रही है?

भगवान अविचल खड़े हैं, चेहरा गुलाब जैसा मधुर मुस्कान के साथ खिल रहा है। आँखों से करुणा झर रही है।

नागराज चिकत-भ्रमित देखता रहा। विचारों के जाल में उलझ गया। उसका क्रोध निष्फल क्यों होने लगा?

प्रशमरस निमग्न महावीर ने शान्त गंभीर स्वर में उद्बोधन दिया—"उवसम भी चंडकोसिया !" हे नागराज चंडकौशिक ! समझो, समझो। अब शान्त हो जाओ। तुम अपने पूर्व-जन्म का स्मरण करो। वार-वार क्रोध करके जीवन बर्बाद मत करो। क्रोध को शान्त करो। (चित्र M-17)

महावीर की अमृत भरी दृष्टि खुली, नागराज ने अपनी दृष्टि मिलाई, तो जैसे उसके हृदय में अपूर्व शान्ति-सी दौड़ने लगी, सचमुच जहर शान्त होता हुआ प्रतीत हुआ।

चंडकौशिक विचारों में यहरा खी गया, चेतना के पट खुलने लगे, उसे जाति-स्मरण ज्ञान हो गया।

पिछले दो जन्मों के चित्र नागराज की स्मृति में उभरने लगे, उग्र क्रोध और अत्यन्त आसक्ति के कारण जीवन में कितना संताप सहा? कितनी दुर्दशा हुई उसकी। विचार करते-करते नागराज का हृदय पश्चाताप से पिछलने लगा।

नागराज की अंतश्चेतना जाग गई। मन शान्त हो गया। प्रभु के चरणों का स्पर्श करके नागराज ने संकल्प किया—''प्रभु ! अब मैं जीवन-भर किसी की तरफ दृष्टि उठाकर भी नहीं देखूँगा। न कुछ खाऊँगा। न पीऊँगा। बस, बिल में मुँह डालकर शान्त समाधि की स्थिति में आपके चरणों की छाया में पड़ा रहूँगा। तीन जन्मों के पापों का प्रायश्चित्त कर अब जीवन सुधाहँगा।''

नागराज को शान्त हुआ देखकर आस-पास के गाँवों से स्त्री-पुरुषों के झुण्ड के झुण्ड आने लगे, खीर, दूध चढ़ाकर नाग बाबा की पूजा करने लगे। परन्तु नाग देवता तो अपने बिल में मुँह करके शान्त समाधि लीन थे। उसने मन ही मन अनशन का संकल्प ग्रहण कर लिया। भूख-प्यास, सर्दी की पीड़ा सहता रहा,

(१३०)

 ${\it Illustrated\ Tirthankar\ Charitra}$

सचित्र तीर्थंकर चरित्र



अनन्त 🏈









Priz Priz

प्रभाव नहीं हुआ।

্য**্**ত

(m)

वृषभ

लक्ष्मी

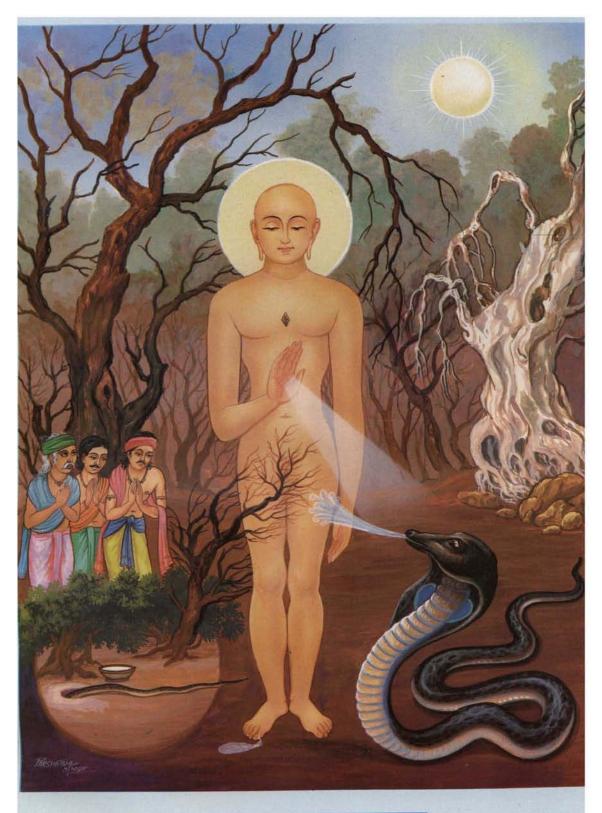
पुष्पमाला

चन्द्र

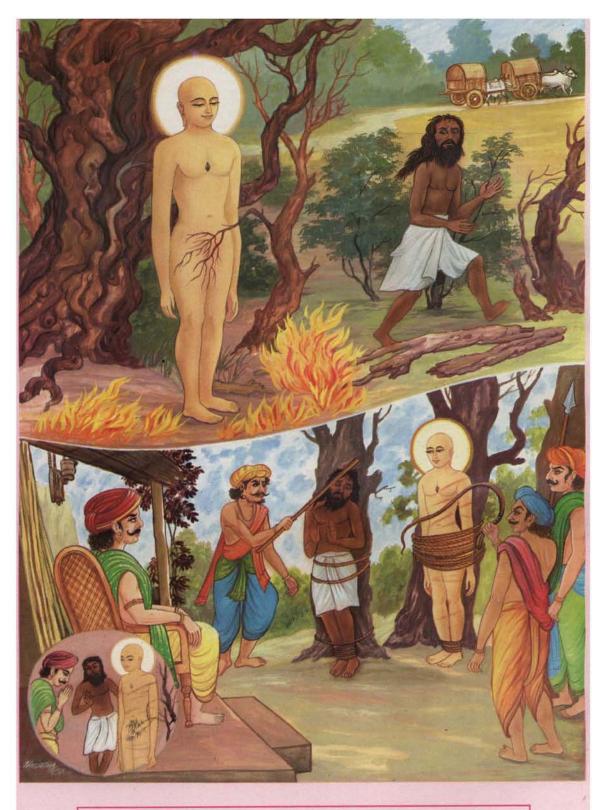
ू सूर्य

S. J.

IJ L



M 17 चंडकौशिक नाग का उपसर्ग। Affliction by serpent Chanda Kaushik.



M 18 (१) अग्नि लपटों के बीच अकस्प श्रमण महावीर (
(1) Shraman Mahavir unmoved by flames

(२) कालहस्ती द्वारा उत्पीड़न। (2) Torture by Kalahasti.





यन्द्रप्रभ









ासुपूज्य

चींटियों के काटने से असह्य येदना हो रही थी, उसका शरीर छलनी जैसा हो गया, परन्तु फिर भी उसे खीझ तक नहीं आयी। पन्द्रह दिन बाद शरीर त्यागकर नागराज चंडकौशिक सहस्रार स्वर्ग में देवता बना।

अग्नि ज्वालाएँ शान्त हो गईं

एक बार श्रावस्ती से विहार कर श्रमण महावीर हिलदुन (हलेदुन) गाँव की ओर जा रहे थे। मार्ग में एक विशाल वट वृक्ष दिखाई दिया। ध्यान के लिए उपयुक्त स्थान देखकर भगवान रात्रि में उसी वृक्ष के नीचे ध्यान प्रतिमा में स्थिर हो गये। शीत ऋतु का समय था, ठंडी तेज हवाएँ चल रही थीं। गौशालक भी साथ था, वह शीत से घवराकर वृक्ष की ओट में बैठ गया। रात में इस मार्ग से गुजरने वाले यात्रियों ने भी वृक्ष के नीचे विश्राम किया, भोजन आदि बनाने के लिए उन्होंने आस-पास से घास, लकड़ियाँ आदि एकत्र करके आग जलाई। भोजन पकाया और फिर रात-भर आग तापते रहे। प्रातःकाल होने पर यात्रियों का समूह आगे चल पड़ा, आग जलती रही। हवा के वेग से आग की लपटें बढ़ती-बढ़ती जहाँ महाश्रमण महावीर खड़े थे, वहाँ तक आ गई। गौशालक चिल्लाया—''देवार्य, हटो यहाँ से, आग बढ़ती आ रही है।'' परन्तु प्रभु तो आत्मलीन थे। आग की लपटें बढ़ती हुई भगवान के पैरों तक आ गई। पैरों की चमड़ी झुलसने लगी, परन्तु फिर भी ध्यान के महासागर में निमग्न प्रभु को बाह्य वेदनाएँ विचलित नहीं कर सकीं। कुछ देर बाद आग स्वतः शान्त हो गई। (चित्र M-18/1)

कालहरूती द्वारा दारुण यंत्रणा

एक वार महाश्रमण वर्द्धमान ने कलम्बुका सिन्नवेश की सीमा में प्रवेश किया। यहाँ के अधिकारी थे मेघ और कालहस्ती। जनशून्य मार्ग में विहार करते हुए श्रमण महावीर को कालहस्ती ने देखा, तो उन्हें पकड़ लिया, पूछा—''तुम कौन हो?'' प्रभु मौन रहे। गौशालक भी मौन रहा। कालहस्ती को शंका हुई—''यह पड़ौसी राज्य के गुप्तचर हैं?'' उसने उन्हें कठोर बंधनों से बाँधकर बड़ी निर्ममता से बेंतों से पीटा और फिर सेवकों को आदश दिया—''इन गुप्तचरों को बड़े भाई मेघ के पास ले जाओ, वे ही इनका मुँह खुलवायेंगे!''

सेवकों ने दोनों को चोरों की भाँति वाँधकर मेघ के सामने उपस्थित किया! मेघ को श्रमण वर्द्धमान की मुख-मुद्रा परिचित-सी लगी, उसे याद आया—''एक समय महाराज सिद्धार्थ के दरवार में कुमार वर्द्धमान को देखा था, शायद ये तो वे ही हैं।'' वह निकट आया, उसे विश्वास हो गया, ये ही हैं कुमार वर्द्धमान जो श्रमण वन गये हैं। वह प्रभु के चरणों में गिर पड़ा। पश्चात्ताप के आँसू वहाते हुए क्षमा माँगी—''प्रभो ! आपको नहीं पहचानने से ही यह घोर अपराध हो गया? हम वड़े पापी हैं, जो आप जैसे महापुरुष को इतने कष्ट पहुँचाए। क्षमा कीजिए देवार्य !'' (चित्र M-18/2)

मेघ के पश्चात्ताप पर प्रभु ने अभय मुद्रा में हाथ उठाया और आगे बढ़ गये। अनार्य प्रदेश में विहार

साधनाकाल का पाँचवाँ वर्ष चल रहा था। श्रमण वर्द्धमान ने राढ (लाढ) प्रदेश की ओर विहार किया। इस प्रदेश के लोग श्रमण के आचार-विचार से तो क्या, श्रमण की वेश-भूषा से भी अपरिचित थे। नग्न श्रमण को खंडहरों व जंगलों में मूर्ति की तरह खड़ा देखकर वे आश्चर्यपूर्वक देखते रहते। पुकारने पर उत्तर नहीं मिलता तो वे झुँझलाकर लकड़ियों से भालों से, वेंत से, पत्थरों से उन पर प्रहार करते। कुछ लोग गीली बेंत

भगवान महावीर : श्रमण-जीवन

(१३१) Bhag

Bhagavan Mahavir : The Life as an Ascetic

















महावीर

To least







समुद्र



विमान-भवन



रत्न राशि





अजित

सम्भव 🔷 अभिनन



सुमित ()

द्मप्रभ 🕄



से पीटते, जिनके लाल-लाल निशान उनकी चमड़ी पर उभर आते। शरीर पर घाव कर देते, माँस नोंच-नोंघ डाल देते, फिर भी महाश्रमण मीन रहते, आँखें भी नहीं खोलते। कुछ लोग उन पर कीचड़ फेंकते, स्त्रियाँ उन पर घर का कूड़ा-कचरा फेंक देतीं, परन्तु महाश्रमण मीन ही रहते तो फिर घूर-घूरकर देखने लगतीं।

लोग उन्हें देखकर आँखें फाड़-फाड़कर घूरते, गाँव के शिकारी कुत्ते उन पर झपटते, काटने आते, कुछ लोग कुतूहलवश कुतों को छूछू करके काटने के लिए दौड़ाते। परन्तु श्रमण वर्द्धमान बोलते नहीं, उनकी तरफ देखते भी नहीं, आँखें नीचे किये अपने पथ पर बढ़ते चले जाते। तब कुछ लोग चिढ़कर गालियाँ देते। भगवान आसन लगाकर ध्यान करते तो लोग उनका आसन भंग करने के लिए उन्हें पकड़ कर पीटते और कपड़े की गठरी की तरह नीचे पटक देते। इस प्रकार अत्यन्त लोमहर्षक उत्पीड़न सहते हुए भी भगवान लगभग पाँच महीने तक उस प्रदेश में विचरते रहे। (चित्र M-19)

साधनाकाल के नौवें वर्ष में भगवान ने पुनः अनार्यभूमि में विहार किया और लगभग छह महीने तक उस वज्रभूमि में विचरण करते रहे। अनार्यभूमि में यह प्रथम चातुर्मास खंड़हरों में, एवं वृक्षों के नीचे घूमते-घामते पूर्ण किया।

गौशालक की प्राण-रक्षा

एक समय सिद्धार्थपुर से कूर्मारग्राम के लिए विहार करते हुए प्रभु एक सघन जंगल को पार कर रहे थे। कूर्मग्राम के बाहर तापसों का कोई आश्रम था। गौशालक ने देखा—एक तपस्वी सूर्य के सामने दोनों हाथ जोड़कर तपस्या कर रहा है। उसकी लम्बी-लम्बी जटायें वट की शाखाओं की तरह नीचे लटक रही हैं। जटाओं से जुएँ निकलकर भूमि पर गिर रही हैं। धूप के कारण जुएँ अकुलाती हैं तो तपस्वी दया करके अपने हाथ से उन्हें उठाकर वापस जटा में रख लेता है।

गौशालक इस विचित्र दृश्य को देखकर हँसता रहा। वह तपस्वी के पास आया और बड़े फूहड़ ढंग से बोला--''अरे ओ जुओं के शय्यातर ! तू यह क्या तमाशा कर रहा है?''

गौशालक के कटु वचन सुनकर भी तपस्वी शान्त रहा। परन्तु बार-बार चिढ़ाने से तपस्वी का हृदय तिलिमिला उठा। आँखों से अंगारे वर्षाते हुए उसने गौशालक की तरफ घूरकर कहा—"दुष्ट, मेरा नाम है वैश्यायन तापस ! ठहर ! तुझे अभी बताता हूँ" और तपस्वी ने सात-आठ कदम पीछे हटकर अत्यन्त क्रोधावेश के साथ मुँह से तेजोलेश्या निकाली। क्षण-भर में ही आग के गुब्बारे की तरह दहकती ज्वाला गौशालक की तरफ आयी, काले धुएँ के बादल उड़ने लगे। गौशालक भयभीत होकर भागा, दूर से ही चिल्लाने लगा—"देवार्य ! बचाओ, वचाओ, यह मुझे जला रहा है। भगवान महावीर ने मुड़कर पीछे की तरफ देखा तो, उनके करुणा द्रवित हृदय से सहज ही शीतल तेजोलेश्या का अमृत झरना फूट पड़ा। ज्यों ही अमिय दृष्टि से प्रभु ने उधर देखा. दहकती आग का धुआँ शान्त हो गया। गौशालक ने प्रभु के चरणों की शरण ली।

क्रोधाविष्ट तपस्वी ने जब अपनी तेजोलेश्या का प्रतिरोध देखा तो वह चिकत हो गया—''कौन है यह मुझसे भी अधिक शक्तिशाली ?'' तुरन्त ही महाश्रमण वर्द्धमान पर उसकी दृष्टि टिकी। उसने वहीं से नमस्कार किया—''प्रभो ! जान लिया आपकी महान् शक्ति का प्रभाव, जान लिया, क्षमा करें प्रभु ! मुझे नहीं पता था यह आपका शिष्य है।'' गौशालक की जान में जान आ गई। उसने पूछा—''देवार्य ! यह जुओं का शय्यातर क्या बकवास कर रहा है?''

यज्

397

लक्ष्मी

पुष्पमाला



चन्द्र

सूर्य

Illustrated Tirthankar Charitra

(१३२)

सचित्र तीर्थंकर चरित्र





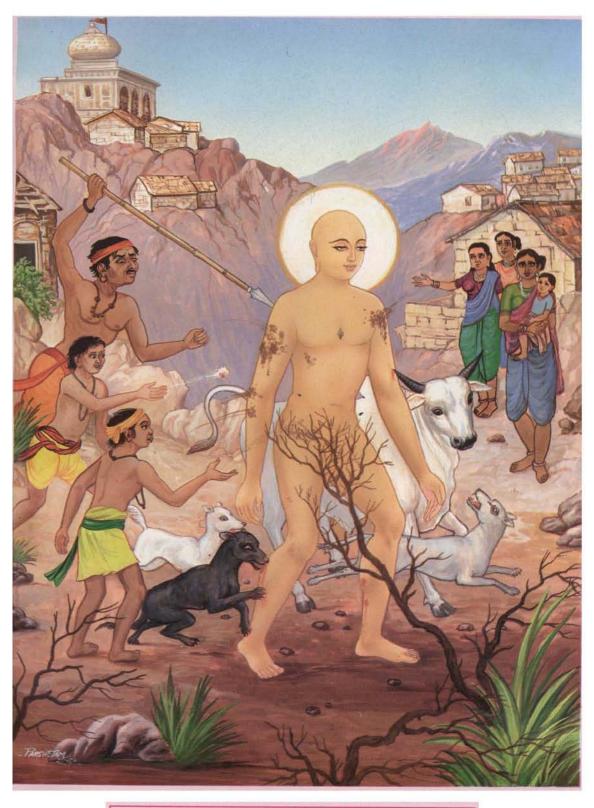




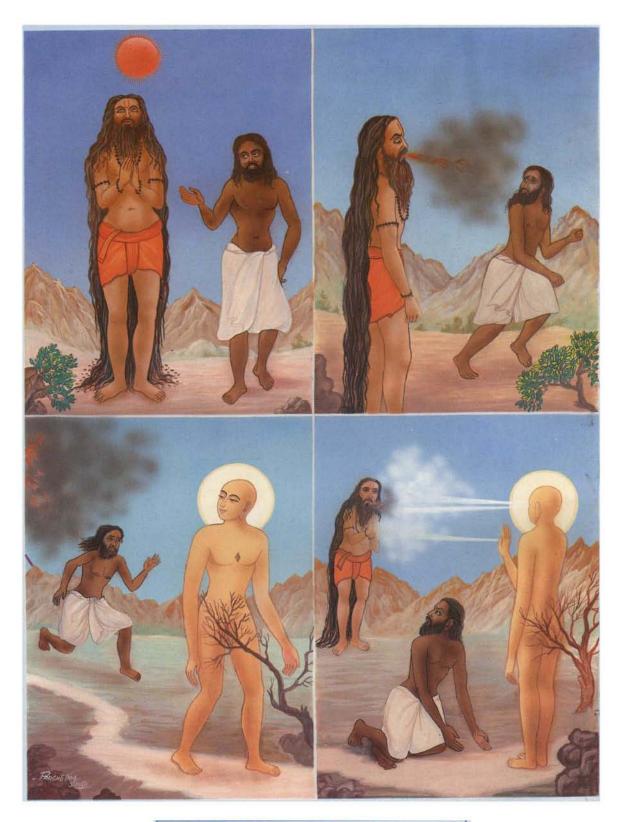








M 19 श्रमण महावीर को आदिवासियों द्वारा विविध उपसर्ग। Ill treatment of Shraman Mahavir by rustic aborigines



M 20 शीतल तेजोलेश्या द्वारा गौशालक की रक्षा। Saving Gaushalak using his pacifying power.















प्रम ने कहा-"अभी यह अपनी तेजोलेश्या से तुझे भस्मसात करने वाला था, किन्तु मेरी शीतललेश्या से अग्नि शान्त हो गई और तू बच गया ''' (चित्र M-20)

कटपूतना का उपसर्ग

साधनाकाल का छठा वर्ष चल रहा था। माघ का महीना, रोम-रोम कँपाने वाली तेज शीत हवाएँ चल रही थीं। रात्रि का शान्त समय, शालिशीर्ष नगर के बाहर एकान्त शून्य जंगल में भगवान महावीर कायोत्सर्ग मुद्रा में ध्यान योग में मन्न थे! अचानक कटपूतना नाम की एक व्यन्तरी उधर आई। भगवान महावीर को कायोत्सर्ग में खड़े देखा तो, पूर्व जन्मानुबंधी द्वेष भाव जाग उठा। उसने एक परिव्राजिका का विकराल रूप धारण किया, लम्बी-लम्बी जटाएँ फैलाईं और उन जटाओं में अत्यन्त शीतल पानी भरकर तेज धार से प्रभु के मस्तक एवं शरीर पर वरसाने लगी। सिर पर गिरता तेज धारायुक्त ठंडा पानी, इधर तूफानी ठंडी हवाएँ और उधर दिशाओं को कँपाने वाला क्रूर अट्टहास। घंटों और प्रहरों तक क्रूर राक्षसी ने भगवान को मर्मान्तक कष्ट दिये, उनकी ध्यान प्रतिमा भंग करने का असंभव से असंभव प्रयत्न किया, परन्तु प्रभु महावीर उसी प्रशान्त भावना और अविचल समाधि के साथ ध्यान में स्थिर लीन रहे। परम ध्यानलीनता एवं उत्कष्ट परिणाम-विशुद्धि की स्थिति में पहुँचने पर भगवान को विशिष्ट लोकायधिज्ञान उत्पन्न हुआ। (चित्र M-21/1)

कारागार में बन्द

साधनाकाल के छठे वर्ष में प्रभु महावीर वैशाली के पूरब में स्थित विदेह भूमि के कूपिय सन्निवेश में गये। वहाँ पर उन्हें आरक्षकों ने पकड़ लिया। परिचय पूछा, प्रभु मौन धारण किये रहे, तो उन्होंने शत्रु का गुप्तचर समझकर बंधनों से बाँधकर कारागार में डाल दिया! कूपिय सन्निवेश में विजया और प्रगल्मा नाम की दो परिव्राजिकाएँ रहती थीं। उन्होंने सुना, एक गुप्तचर नग्न भिक्षु के रूप में पकड़ा गया है तो वे देखने के लिए आई। परिव्राजिकाओं ने प्रभु महावीर को पहचान लिया, वे बड़ी व्यथित हो उठीं, राजपुरुषों को फटकारते हुए बोलींच 'कैसे राजपुरुष हैं आप ! चोर और साहूकार को नहीं पहचान पाते? श्रमण और तस्कर में कोई भेद नहीं समझ सकते ? इनकी शान्त, प्रशान्त मुखमुद्रा तो देखो ! क्या कोई सामान्य पुरुष हैं ये ? तुम्हें पता होना चाहिए ये सिद्धार्थ राजा के पुत्र श्रमण वर्द्धमान हैं ! इन्हें कष्ट दे रहे हैं कहीं देवराज इन्द्र कुपित हो गये तो क्या दशा होगी आप लोगों की

परिव्राजिकाओं द्वारा परिचय जानते ही राजपुरुषों ने बन्धनों से मुक्त कर प्रभु से क्षमा माँगी। प्रभु वहाँ से फिर आगे एकान्त स्थान की ओर चले गये। (चित्र M-21/2)

संगम द्वारा प्राणान्तक उपसर्ग

पेढाल नगर के बाहर पोलाश चैत्य में प्रभु ने "एक रात्रि की प्रतिमा" धारण की। इस अपूर्व प्रतिमा योग में प्रभु के तन-मन-बृद्धि और प्राण सभी स्थिर अचंचल-अप्रकम्प थे। प्रभु की उत्कृष्ट ध्यानलीनता देखकर मानव ही क्या, देवराज इन्द्र का हृदय भी गद्गद् हो उठा और भक्तिपूर्वक उनके स्वर फूट पड़े-"धन्य हैं प्रभु वर्द्धमान ! आज संसार में आप जैसा तपस्वी, धीर, वीर और सहिष्णु साधक दूसरा कोई नहीं है। मनुष्य तो क्या, देव दानव भी आपकी साधना को भंग नहीं कर सकते ! " धन्य है महाप्राण ! महाप्रभु !" देवराज इन्द्र अपने आसन से उठे और भक्तिपूर्वक प्रभु की वन्दना-स्तवना करने में मग्न हो गये।

भगवान महावीर : श्रमण-जीवन

Bhagavan Mahavir : The Life as an Ascetic (१३३)













महावीर

कुम्भ









विमान-भवन



राशि





संयम नाम का एक कर हृदय देव देवराज की प्रशंसा को चुनौती देता हुआ बोला-''यदि देवराज बीच में हस्तक्षेप न करें तो मैं श्रमण महावीर को ध्यानच्यत कर सकता हूँ। उनकी समाधि तोड़ सकता हूँ।"

देवराज मन मसोसकर मौन हो गये। भगवान चाहे भक्त की परीक्षा लें, या भक्त भगवान की. परीक्षा-परीक्षा ही है, परीक्षा के लिए दोनों को ही असह्य पीड़ाओं की अग्नि में तपना पड़ता है। छिर होनहार वलवान : : ! देवराज मौन रहे. और संगम अपनी पूरी शक्ति बटोरकर उसी सात्रे को पोलाश उद्यान में एक रात्रि की प्रतिमा में स्थित भगवान महावीर की अग्नि-परीक्षा लेने आ धमका। संगम ने आते ही उपसर्गी का तुफान उठाया।

अचानक साँय-साँय की आवाज से दिशाएँ काँप उठीं। भयंकर धूल-भरी आँधी से महावीर के शरीर पर मिटटी के ढेर जम गये। आँख, नाक, कान और पूरा शरीर धूल से दब गया, पर महावीर ने अपने निश्चय के अनुसार आँख की पलकें भी बन्द नहीं कीं।

फिर वज़ जैसे तीक्ष्ण मुँह वाली चींटियाँ चारों ओर से महावीर के शरीर को काटने लगीं।

फिर बिच्छुओं के तीव्र दंश प्रहार, नेवलों द्वारा माँस[े] नोचना, भीमकाय क्लिधर सर्पों द्वारा शरीर पर लिपटकर जगह-जगह दंश मारना और उसके वाद तीखे दाँत वाले चूहे काट-काटकर महायोगेश्वर को त्रास देने लगे।

फिर जंगली हाथी ने दंतशूल से प्रहार कर महावीर को सूँड़ से पकड़कर गेंद की तरह आकाश में उछाल दिया, पैरों के नीचे मिट्टी की भाँति रौंद डाला।

अब एक भयंकर पिशाच अट्टहास से शून्य दिशाओं को भय-भैरव बनाता हुआ प्रभ के समक्ष आया। तभी त्रिशल जैसे तीक्ष्ण नखों वाला बाध महावीर पर झपटा, वह स्थान-स्थान से माँस नोचने लगा, परन्तु प्रभु प्रस्तर-प्रतिमा की तरह अचल खड़े रहे।

महाबीर दोनों पैर सीध जटाये खड़े थे. संगम ने पैरों के बीच में आग लगा दी।

अंत में संगम ने माया रची, बसन्त ऋतु की मन्द और मादक बयार बहाई, भीनी-भीनी सुगन्ध ! शान्त वातावरण, मोर की मीठी-मीठी प्रणयवर्धक बोली, नुपुर की झंकार करती हुई अर्धवसना अप्सराएँ अपने माँसल कामोत्तेजक अंगों का प्रदर्शन कर काम-याचना करने लगीं, महाबीर के शरीर से लिपटने लगीं। पर अनिमेष दृष्टि महावीर तो उसी प्रकार स्थिर खड़े रहे। इस प्रकार एक रात में २० प्रकार के प्रतिकृल-अनुकृल परिषह उत्पन्न करके संगमदेव थक गया किन्त भगवान महावीर अपनी ध्यान चेतना में स्थिर रहे। (चित्र M-22)

शरण आया असुरराज

विन्ध्याचल पर्वतमाला में पूरण नाम का एक तापस रहता था। उसने बारह वर्ष तक कठोर बाल तप किया, फलस्वरूप वह असुर देवों की राजधानी चमरचंचा में चमरेन्द्र के रूप में उत्पन्न हुआ। उत्पन्न होते ही उसके मन में अपनी शक्ति और ऋदि का अभिमान जाग उठा। उसने ज्ञान-बल से इधर-उधर देखा कि संसार में मुझसे भी बढ़कर शक्ति और ऋद्धिशाली कोई है क्या? तो ठीक उसके सिंहासन के ऊपर सौधर्म स्वर्ग में देवराज शक्रेन्द्र आनन्द विलास करते दिखाई दिये। असुरेन्द्र ने अपने सामानिक देवों से पूछा-"यह कौन विवेकहीन पृण्यहीन अहंकारी देव है, जो मेरे मस्तक पर पैर किये, निर्लज्जतापूर्वक बैठा भोग-विलास कर रहा है?"

(१३४)

सिंह

वृषभ



त्तक्ष्मी



पुष्पमाला

चन्द्र

सूर्य





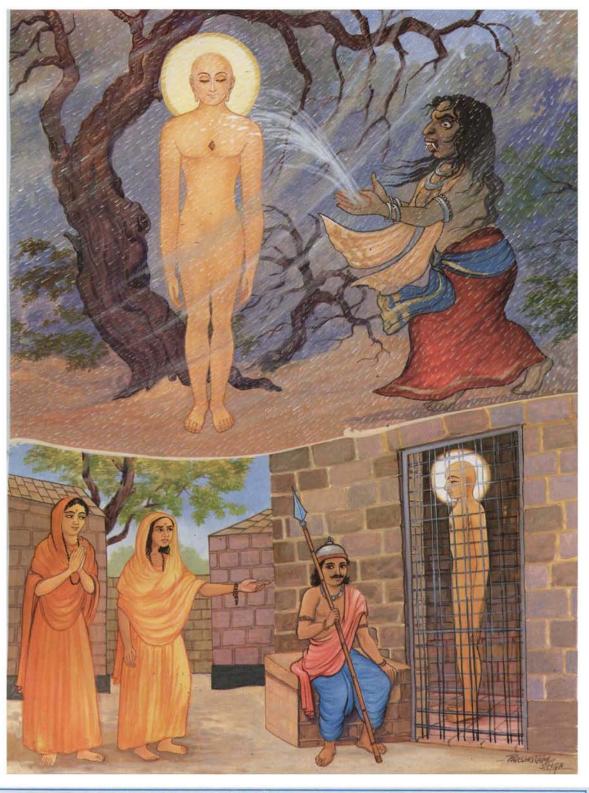
Illustrated Tirthankar Charitra



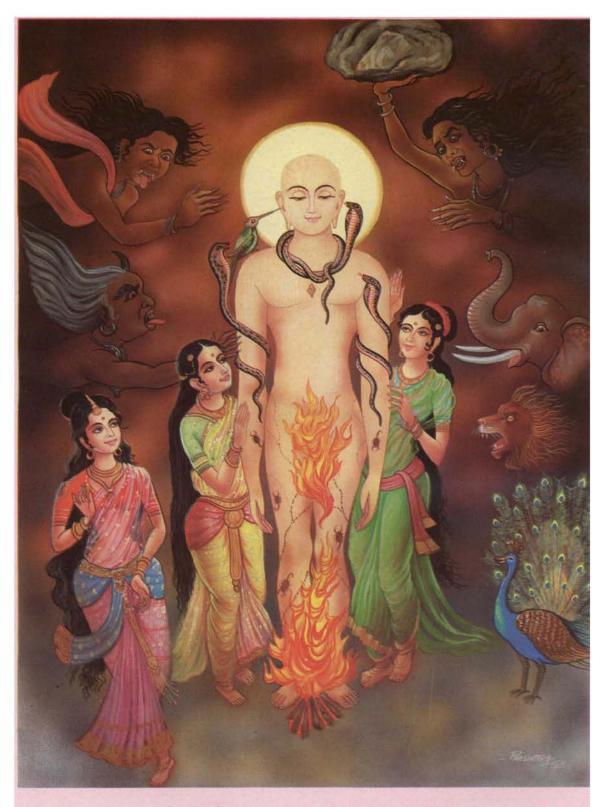








M 21 (१) कटपूतना द्वारा उपसर्ग (२) परिव्राजिका विजया व प्रगल्भा द्वारा श्रमण महावीर को कारागार से मुक्त कराना।
(1) The afflictions by Katputana
(2) The release of Shraman Mahavir
from the prison by mendicants Vijaya and Pragalbha



M 22 संगम देव द्वारा एक ही रात्रि में २० भीषण उपसर्ग। Inhuman tortures by god Sangam















सामानिकों ने निवेदन किया-"महाराज ! ये सीधर्मकल्प के स्वामी शक्रेन्द्र हैं। चिरकाल से ही इसी प्रकार ये अपने विमानों में आनन्द बिलास करते रहते हैं।"

असुरराज चमरेन्द्र का क्रोध और भी भड़क उठा। बोले-"अब यह नहीं चलेगा। मैं आज ही इसके विमानों को नष्ट कर डालूँगा।"

सामानिकों द्वारा समझाने पर भी असुरराज क्रोध एवं अहंकार में विवेकशून्य बने रहे और सुधर्म देव विमान पर आक्रमण करने को शस्त्र उठा लिया। परन्तु तभी उसे अपनी अल्प शक्ति और अल्प ऋदि का भान हुआ। दुर्वल व्यक्ति शक्तिशाली शत्रु से टकराने से पहले उससे भी प्रचण्ड शक्तिशाली का आश्रय खोजता है तांकि संकट के समय में रक्षा हो सके। असुरराज ने भी ध्यान देकर देखा, तभी उसे सुंसुमारपुर के बाहर अशोक वक्ष के नीचे ध्यानस्थ खड़े महातपर्म्वा श्रमण वर्द्धमान दिखाई दिये। वह शीघ्र ही नीचे आया, प्रभु की वन्दना की, प्रार्थना करके कहा-"भन्ते ! मैं असुरराज चमरेन्द्र आपकी शरण लेकर सुधर्मेन्द्र शक्र से युद्ध करने जा रहा हूँ। आप मेरी रक्षा करें।" और प्रचण्ड बेग के साथ असुरराज ने सुधर्म सभा में जाकर हुँकार की-"अरे ! कहाँ है वह सुधर्म देवराज शक्र ! मैं अभी उसको नष्ट भ्रष्ट कर डालता हूँ।" (चित्र M-23/1)

कौन है यह प्रचण्ड वली ? किसने दुस्साहस किया है आज ! देवराज ने तत्काल अपना अमोघ वज्र उठाया और परी शक्ति के साथ चमरेन्द्र पर फेंका। वज्र हाथ से छूटते ही उससे एक साथ हजारों किरणें छुटने लगी। तीव्र वेग से वज्र को अपनी ओर बढ़ता देखकर चमरेन्द्र घबराया, जान हथेली में लेकर दीड़ा। जहाँ भगवान महावीर ध्यानस्थ थे, उसी दिशा में तीव्र गति से बढ़ा। पीछे-पीछे बज्र हजारों अग्नि ज्वालाएँ फेंकता हुआ दौड़ रहा था।

शक्रेन्द्र ने देखा-''अरे ! यह तो महाथ्रमण महायीर की शरण लेकर यहाँ आया है, और अब उसी ओर भागता जा रहा है। कहीं ऐसा न हो कि मेरे बज्र से प्रभू को पीड़ा पहुँचे। कुछ भी अनिष्ट हो जाये?" शकेन्द्र त्रन अपने आसन से उठे और प्रचण्ड वेग के साथ वज्र के पीछे-पीछे दौड़े। आकाश-मण्डल में एक विचित्र दृश्य उपस्थित हो यया। आगे-आगे असुरराज, जोर से पुकारते हुए-"प्रभु ! आपकी शरण है। प्रभु आपकी शरण है।" पीछे-पीछे वज्र अग्नि ज्यालाएँ छोड़ता हुआ, और उसके पीछे देवराज शक्र वज्र को पकड़ने का प्रयास करते हुए। असुरराज छोटा-सा रूप बनाकर भगवान महावीर के पीछे छुप गया और तभी शक ने प्रचण्ड येग के साथ वज्र को पकड़ लिया। यज्र और प्रभु महावीर के बीच सिर्फ चार अंगुल का ही अन्तर रह गया था। शक्र ने असुरराज को सम्बोधित करके कहा-"असुरेन्द्र ! तुमने जो अपराध किया है, वह अक्षम्य है, किन्तु श्रमण भगवान महावीर की शरण ग्रहण करके तुमने मेरे हाथों को बाँघ दिया। जाओ, तुम महाश्रमण महावीर के शरणागत हो, इसलिए मैं अभयदान देता हूँ।"

असुरराज भयमुक्त हो गयं। देवराज शक्न का हृदय भी द्वेषमुक्त हो गया। दोनों ही प्रभु की वन्दना करके अपरे-अपरे स्थान पर चले गये। (चित्र M-23/2)

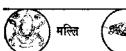
चन्दना का उद्धार

वत्स देश की राजधानी कीशान्वी में महाराज शतानीक का राज्य था। शतानीक की पटरानी मृगावती वैशाली गणराज्य के अध्यक्ष महाराज चेटक की पुत्री थी। वत्स देश का पड़ौसी राज्य था अंग, और अंग देश

भगवान महाबीर . श्रमण-जीवन

(१३५)

Bhagavan Mahavir : The Life as an Ascetic











ध्वजा



कुम्भ





समुद्र



विमान-भवन



राशि



अग्नि





सम्भव राज्य अ

अधिनन्दन 🕝

सुमित 💮

ਹਸ਼ਮ (













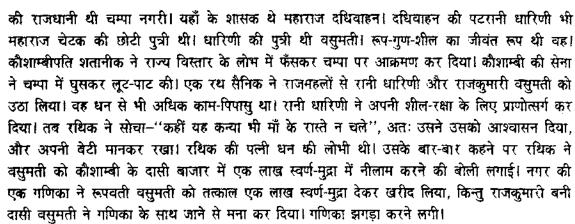






सूर्य

विमल (्रिट्ट)



उसी समय कौशाम्बी के एक कोटिपति धनावह सेठ दुकान से घर जाते हुए उधर आ निकले। बाजार में अजीब भीड़ और यह शोर-शराबा देखकर पूछा—''क्या बात है आज?''

लोगों ने बताया-"सेठ जी ! आज चम्पा नगरी की लूटी हुई एक दासी बाजार में एक लाख स्वर्ण-मुद्रा में बिकने आई है। दासी क्या, यह तो कोई देव-कन्या है, या साक्षात् अप्सरा ! गणिका ने इसे खरीदा है, परन्तु यह उसके साथ जाने से मना कर रही हैं '''कोई उच्च कुलीन कन्या लगती हैं ''' शीलवती रूपवती '''!''

तत्क्षण सेठ दास-हाट के बीच आकर खड़े हो गये। एक नजर में उसने राजकुमारी को देखा। उसकी आँखों में पानी भर आया! "यह कोई दासी हैं ं नहीं! नहीं! यह तो साक्षात् देव-कन्या है। ऐसी सुकुमार शीलवित कन्याओं पर इतना घोर अत्याचार! गृहलक्ष्मी नारियों की आज यह दुर्दशा!" सेठ का हृदय द्रवित हो उठा। यह निकट आया और वसुमती की ओर मुँह करके बोला—"बेटी! मेरा नाम धनावह सेठ है! मैं इस नगर का निर्ग्रन्थ श्रमणोपासक हूँ। तेरी यह दशा देखकर मेरा हृदय दुकड़े-दुकड़े हो गया है। यदि तू गणिका के साथ नहीं जाना चाहती है, तो तेरे साथ जबर्दस्ती नहीं होने दूँगा। मैं एक लाख स्वर्ण-मुद्रा देकर तुझे खरीदँगा। चलोगी मेरे साथ ं ? मेरी बेटी बनकर रहोगी?"

एक अनाथ राजकुमारी दासी के रूप में बिककर सेठ धनावह के घर आ गई। सेठानी मूला ने इस अनुपम सुन्दरी कन्या को आते देखा तो अनेक कुशंकाओं से उसका माथा ठनक गया। पहले ही क्षण कन्या के रूप में उसे सौत के दर्शन होने लगे।

वसुमती ने कुछ ही दिनों में अपने मधुर व्यवहार के कारण समूचे घर पर जादू-सा कर दिया। सेठ धनायह उसके स्वभाव की शीतलता को देखकर उसे ''चन्दना'' कहकर पुकारने लगे।

सेठानी मूला बड़ी शंकालु और ईर्ष्यालु थी। वह चन्दना से मन ही मन जलती थी। एक दिन सेठ धनावह किसी काम से नगर के बाहर गये। मूला के लिए यह सुनहरा अवसर था। उसने घर के सभी दास-दासियों की छुट्टी कर दी। फिर चन्दना को बुलाया, उसके सुन्दर वस्त्र, गहने, कपड़े उतरवा दिये एक फटा-पुराना वस्त्र पहनने को दिया। बेड़ियों से हाथ-पैर बाँध दिये, उस्तरे से उसके काले-काले केश उतार दिए। चन्दना पूछती रही—"माताजी! यह क्या कर रही हो? क्यों कर रही हो? मैंने तो आपका कुछ भी नहीं बिगाड़ा। मुझे किस अपराध की सजा दे रही हो?"

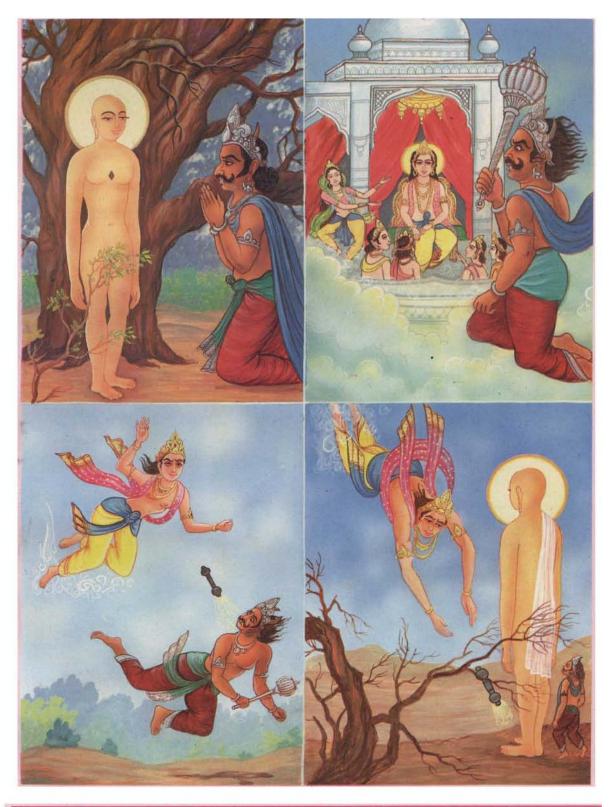
Illustrated Tirthankar Charitra

(१३६)

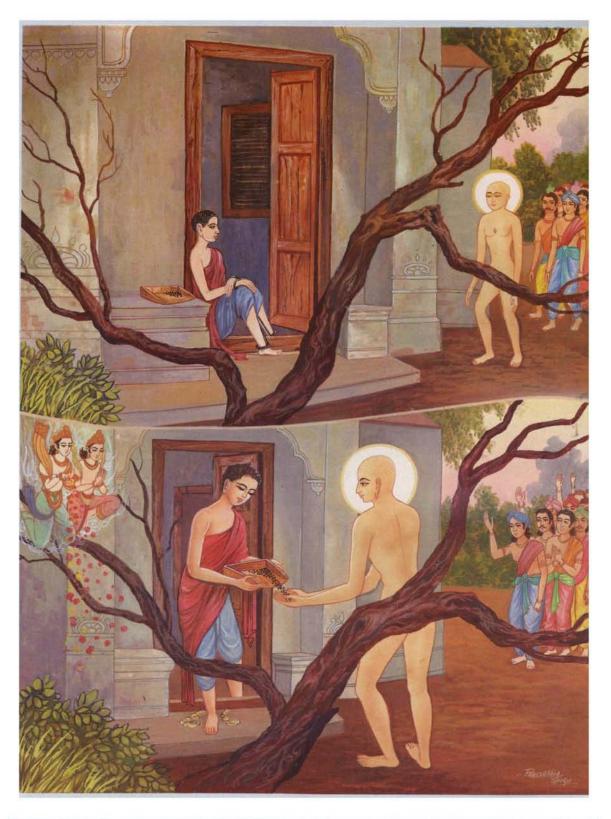








M 23 (9) चमरेन्द्र द्वारा भगवान महावीर की शरण लेकर शक्रेन्द्र को चुनौती (२) अन्त में महावीर की चरण-शरण The story of Chamarendra challanging Shakrendra and later taking refuge near Mahavir to save himself.



M 24 महावीर का कठोर अभिग्रह और चन्दना द्वारा महावीर का पारणा। The impossible resolution of Mahavir; and Chandana giving alms to Mahavir for breaking his fast













मला ने चन्दना को डाँटकर चूप कर दिया। एक भौंहरे में बन्द कर ताला लगाया और चाबी साथ लेकर अन्यत्र चली गई।

तीसरे दिन सेठ धनावह वापस आये। घर को सूना-सूना देखा तो हृदय धड़क उठा। बाहर से ही पुकारा-''बेटी चन्दन ! बेटी चन्दन !'' परन्तु चन्दन का उत्तर नहीं मिला। सेठ ने भवन के दूसरी तरफ से पुकार लगाई। वार-बार जोर से पुकारा, चन्दना ने भीतर से ही उत्तर दिया-"पिताजी ! मैं यहाँ पीछे के भींहरे में हूँ।"

सेठ ने भींहरे के दरवाजे बन्द देखे, ऊपर ताला लगा हुआ। बाहर से ही चन्दना की दुर्दशा देखी तो वह फूट-फूटकर रो पड़ा-"बेटी ! यह क्या हुआ? किस दुष्ट पापात्मा ने तेरी दुर्दशा की है?" चन्दना ने धीरज के साथ कहा-"पिताजी, पहले-मुझे बाहर निकालो, फिर सब-कुछ बताऊँगी।"

सेठ ने किसी प्रकार दरवाजे खोले, चन्दना को बाउर निकाला। उसने कहा-"पिताजी ! मैं तीन दिन से भूखी-प्यासी हूँ । कुछ खाने-पानी को दे दीजिए।'' सेठ ने देखा, घर का सब सामान भीतर बन्द है, सिर्फ गायों के खाने के लिए उड़द के बाकले बाहर रखे हैं। बर्तन भी कोई नहीं, सेठ ने एक कोने में रखा सूप उठाया, उसमें उड़द के बासी बाकले रखे, और चन्दना के सामने रख दिये-''बेटी ! तू कुछ खा, तब तक मैं लुहार को बलाकर तेरी बेडियाँ तुड्वाता हूँ।"

कठोर अभिग्रह

भगवान महावीर के साधनाकाल का यह बारहवाँ वर्ष था। वैशाली में चात्मीस सम्पन्न करके विहार करते हुए प्रभू कौशाम्बी के उद्यान में प्रधारे। शतानीक का चम्पा पर आक्रमण ! चम्पा का पतन ! धारिणी रानी का शील-रक्षा के लिए बलिदान और फिर राजकुमारी वसुमती का कौशाम्बी के बाजार में दासी के रूप में विक्रय! यह सारा घटनाक्रम कौशाम्बी के आस-पास ही घूम रहा था। प्रभु महावीर के ज्ञान-दर्पण में यह सब-कुछ प्रतिविम्बत-सा हो रहा है। प्रभू ने पौष कष्णा प्रतिपदा के दिन एक विकट अभिग्रह धारण किया-

"मैं एक दासी बनी राजकुमारी के हाथ से भिक्षा ग्रहण करूँगा। उस राजकुमारी का सिर मुँड़ा हो, हाथ-पैरों में बेड़ियाँ डली हों, आँखों में आँसू हों, तीन दिन की भूखी-प्यासी हो, घर की देहलीज के बीच बैठी हो. सप के कोने में उड़द के बाकले खाने के लिए एखे हों. जब तक इस प्रकार की मिक्षा नहीं मिलेगी, तब तक सर्वदा तपस्या करता रहँगा ""

कौशाम्बी के गृहस्थों के घर भिक्षा हेत् पर्यटन करते हुए भगवान महावीर को लगभग चार महीने बीत गये।

एक दिन कौशाम्बी के महामंत्री सुगुप्त के भवन पर प्रभु भिक्षार्थ पधारे। सुगुप्त की पत्नी नन्दा प्रभु पार्श्वनाथ की उपासिका थी. श्रमणों के संयमी जीवन से परिचित। महाश्रमण वर्द्धमान को मिक्षार्थ पधारे देखकर वह आनन्द विभोर हो गई। शुद्ध प्रासुक भिक्षा के लिए प्रभु को आमंत्रित किया। परन्तु प्रभु महावीर उसके द्वार पर पधारकर वापस लौट गये। नन्दा का हृदय दु:खी हो गया। वह अपने भाग्य को कोसती हुई फूट-फूटकर रोने लगी-''आज मेरे घर पर महाश्रमण वर्द्धमान पधारे और मैं भाग्यहीन, उनको कुछ भी भिक्षा नहीं दे सकी *** '' तभी नन्दा की दासियों ने कहा-''स्वामिनी ! आप इतनी दु:खी क्यों होती हैं? यह तपस्वी तों चार महीने से इसी प्रकार कौशाम्बी के घरों में भिक्षार्थ आता है, और बिना कुछ लिए, बिना बोले वापस चला जाता है, हम तो चार महीने से इसी प्रकार देख रही हैं, फिर आप इतना पश्चात्ताप क्यों करती हैं?"

भगवान महाबीर : श्रमण-जीवन

(059)

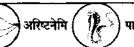
Bhagavan Mahavir : The Life as an Ascetic













ध्वजा







विमान-भवन

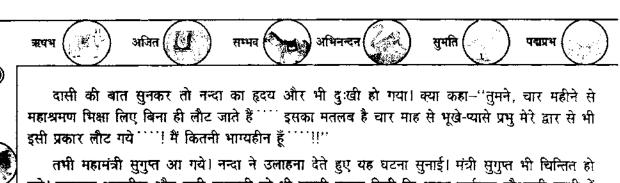


राशि



अग्नि





गये। महाराज शतानीक और रानी मृगावती को भी इसकी सूचना मिली कि श्रमण वर्द्धमान कौशाम्बी नगरी में चार महीने से भूखे-प्यासे घूम रहे हैं। सभी का मन व्यथित हो उठा, पूरा राज-परिवार भगवान के दर्शनों के लिए गया, और मिक्षा ग्रहण करने की प्रार्थना की।

पाँच महीने पच्चीस दिन बीत गये। छब्बीसवें दिन का सूर्योदय हुआ। मध्यान्ह का समय था। प्रभु वर्द्धमान भिक्षार्थ भ्रमण करते हुए सेठ धनावह के भवन की तरफ पधार रहे हैं। अनेक लोग प्रभू के पीछे-पीछे चल ाँबें केर

भौंहरे की देहलीज के बीच चन्दना बैठी थी, एक पाँव भीतर एक बाहर, पास में सूप है, और सूप में वासी उड़द के बाकले : : जब वह हाथ-पैर में बेड़ियाँ देखती है तो सहसा पुरानी स्मृतियाँ उभर आती हैं, उसकी आँखें भीग जाती हैं। सहसा जन-कोलाहल सुनाई देता है। मुँह ऊपर उठाकर देखती है तो उसके सामने खड़े हैं-तरणतारण श्रमण महावीर ! चन्दना भाव-विभीर हो जाती है। "धन्य हैं प्रभू ! आज इस दयनीय स्थिति में आपने मुझे सँभाला।'' उसके चेहरे पर हर्ष की आभा चमकने लगती है। चन्दना का रोम-रोम जैसे नाच उठा। "प्रभू पधारो ! मेरे हाथ से कुछ ग्रहण करो """ भगवान महावीर आंगे बढ़कर रुक गये। उनके अभिग्रह की १२ बातें सब मिल रही हैं, परन्तु ख़ुशी के मारे चन्दना की आँखों के आँसू सूख गये थे।

भगवान को वापस मुझते देखा तो जैसे चन्दना की खुशियों पर पाला पड़ गया। "हाय भाग्य ! क्या मैं इतनी बदनसीब हूँ कि इस दीन-हीन असहाय स्थिति में मेरे प्रभु द्वार पर आकर खाली लौट गये 🗀 🔡 उसकी आँखों से आँस टपकने लगे।

मुड़कर देखा प्रभु महावीर ने, अभिग्रह की सभी बातें पूर्ण हो रही थीं :: ! भगवान कमल-पत्र के दोने की भाँति दोनों हाथ का दोना बनाकर चन्दना के सामने खड़े हो गये। भाव-विह्नल चन्दना ने सुप में रखे उड़द के बाकले प्रभ के हाथों में बहराये। प्रभू ने आहार ग्रहण कर लिया। (चित्र M-24)

दूसरे ही क्षण हर्ष के अतिरेक से चन्दना की बेड़ियाँ टूट-टूटकर बिखर गई। आकाश में देव-दुन्द्रिभ वजने लगी। "अहोदानं" के दिव्य घोष से दिशाएँ गूँज उठीं। विकसित पुष्प, वस्त्र और गंधोदक की वृष्टि हुई, मणि रत्नों के ढेर से सेठ धनावह का आँगन भर गया। पहले से भी हजार गुना रूप निखर उठा चन्दना का। देव-देवियों ने वस्त्रों, अलंकारों से चन्दना का शृंगार किया।

भगवान के साधनाकाल का यह अभिग्रह मातु-जाति को दासता से मुक्त करने के दिव्य-अभियान का एक चरण माना जा सकता है।

अन्तिम महाउपसर्ग : कानों में कीलें

साधनाकाल का बारहवाँ चातुर्मास चम्पा नगरी में बिताकर विहार करते हुए भगवान "छम्माणी गाँव" के बाहर आकर कायोत्सर्ग में खड़े थे। संध्या का समय था। खेतों में काम करके एक ग्वाला घर को लीट रहा

सचित्र तीर्थंकर चरित्र (१३८) Illustrated Tirthankar Charitra

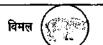
वृषभ



पृष्पमाला

चन्द्र

सूर्य

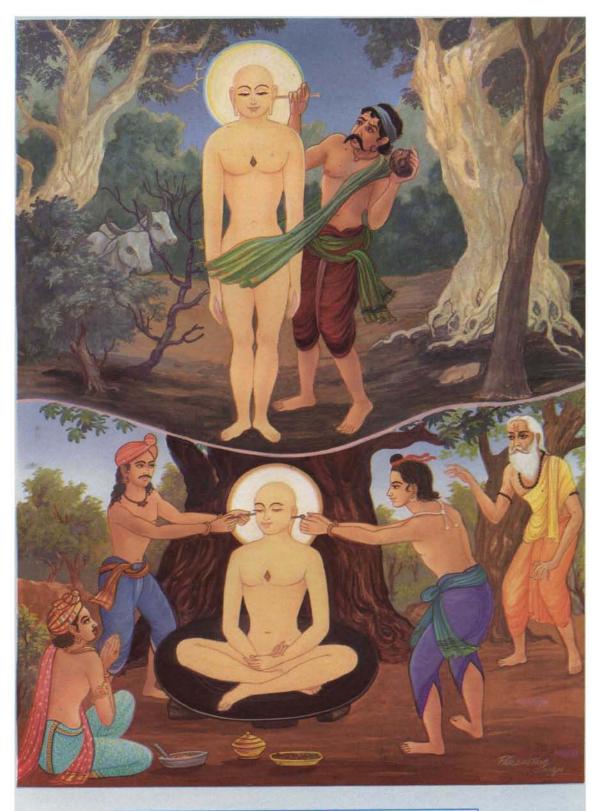




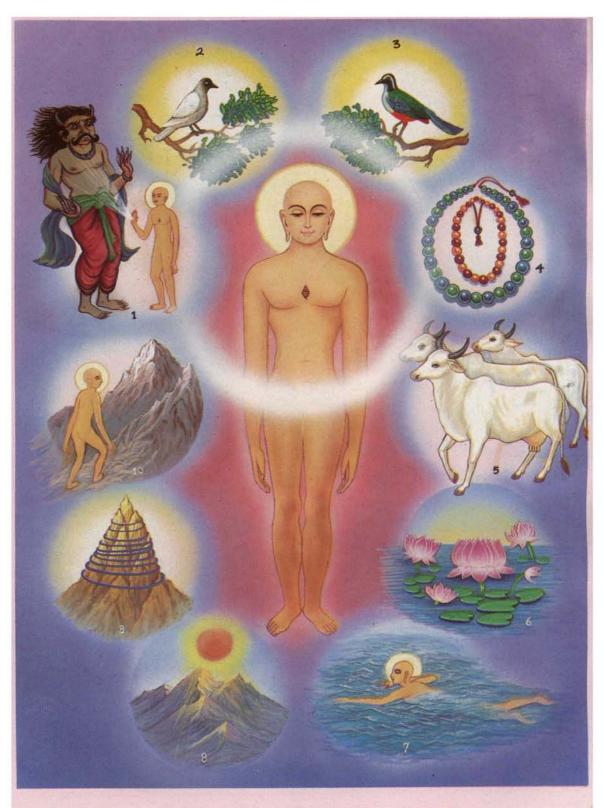








M 25 अंतिम उपसर्ग : कानों में कीलें तथा उनका उपचार।
The last affliction : Nails in the ears and the treatment



M 26 केवलज्ञान से पूर्व दस महास्वप्न। Ten great dreams before omniscience















था। खेत के पास ही श्रमण महावीर को ध्यानस्थ देखा तो उसने कहा--''बाबा, जरा मेरे बैलों की देखभाल रखना, अभी आता हूँ।"

ग्वाला गाँव चला गया, आने में उसे विलम्ब हो गया। बैल चरते-चरते कहीं दूर निकल गये। ग्वाला लौटकर आया तो बैल नहीं मिले, उसने पूछा-"वाबा ! बताओ, मेरे बैल कहाँ चले गये?"

भगवान ध्यान में लीन थे। ग्वाले ने दुवारा पूछा, फिर भी मौन। उसे क्रोध आ गया, खूब जोर से चिल्लाया-"अरे ढोंगी बाबा, क्या तेरे कान फूट गये हैं? बहरा है? तुझे कुछ सुनाई देता है कि नहीं?"

भगवान ने कोई उत्तर नहीं दिया। ग्वाला आग-बब्ला हो उठा-''ढोंगी बाबा लगता है, तेरे दोनों कान ही फट गये हैं। ठहर जरा, अभी तेरा उपचार करता हूँ।" और उसने काँस नामक घास की नुकीली कीलें लीं, आव देखा न ताव श्रमण महावीर के कानों में आर-पार ठोक दीं। (चित्र M-25/1)

इस असह्य मुर्भघातक वेदना में भी न तो प्रभू ने ध्यान भंग किया और न ही मूर्ख ग्वाले पर हेष-भाव आया 🗎

यथासमय कायोत्सर्ग पूर्ण करके भगवान गाँव में भिक्षा के लिए विचरण करते हुए सिद्धार्थ नामक एक विणक के घर पहुँच गये। विणक के पास उस समय उसका मित्र खरक नाम का वैद्य बैठा था। महाश्रमण को आते देखकर दोनों ने ही भावपूर्वक अभिवादन करके शुद्ध भिक्षान्न दिया।

वैद्य खरक ने सिद्धार्थ से कहा-"मित्र ! इस श्रमण की मुख-मुद्रा पर अत्यन्त तेज ओज दमक रहा है, परन्तु कुछ क्लान्ति-सी भी है। मुझे लगता है कि इस तेजस्वी श्रमण को कोई न कोई अन्तःशल्य खटक रहा है।"

सिद्धार्थ ने खरक वैद्य से कहा-"मित्र ! ऐसे सर्व लक्षण सम्पन्न महापुरुष को कोई अन्तर पीड़ा है तो हमें तुरन्त उसका उपचार करना चाहिए।"

भिक्षा लेकर महाश्रमण वापस चले गये। खरक वैद्य अपने विश्वस्त सहायकों को साथ लेकर भगवान के पीछे-पीछे चले। उद्यान में जाकर प्रभू के शरीर का निरीक्षण किया तो उसे कानों में आर-पार चुभी कीलें दिखाई दीं। दोनों ने मिलकर कीलें निकालने के साधन जुटाए। शरीर पर तेल आदि की मालिश की और संडासी (कंक-मुख) से खींचकर कानीं की कीलें वाहर निकालीं। कीलें बाहर निकालते समय भगवान को इतनी मर्मान्तक पीड़ा हुई कि रक्त की धारा वहने लगी। तब खरक वैद्य ने संरोहण औषधि का लेप कर दिया। (चित्र M-25/2)

दस महास्वप्न

कहा जाता है-असहा बेदना की शान्ति होने पर भगवान महाबीर को राश्चि के अन्तिम प्रहर में नींद की हर्ल्का-सी झपकी आ गई। कुछ क्षणों की नींद में भगवान ने दस विचित्र स्वप्न देखे।

श्रमण महावार ने जा स्वप्न देखे उत्पल निमित्तज्ञ ने उनका फॉलतार्थ इस प्रकार बताया-

स्थप्न : एक ताल पिशाच को पराजित किया।

शीघ्र ही भगवान मोहनीय कर्म का क्षय करेंगे।

एक श्वेत पंख वाला पक्षी (पुंख्कोकिल) सेवा कर रहा है।

फल : शुक्ल ध्यान में लीन रहेंगे।

भगवान महावीर : श्रमण-जीवन

(१३९) Bhagavan Mahavir : The Life as an Ascetic

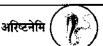














महावीर

ध्वजा



पदा सरोवर

समुद्र



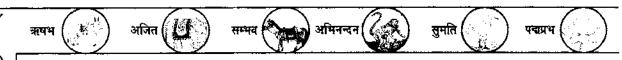
विमान-भवन



राशि



निर्धम अग्नि



३. स्वप्न: एक विचित्र पंख वाला पक्षी निकट सामने आया है।

फल : विविध रहस्यों वाले द्वादशांग रूप ज्ञान की प्ररूपणा करेंगे।

४. स्वप्न: दो रल-मालाएँ सामने रखी हैं।

फल : उत्पल चौथे स्वप्न का अर्थ नहीं समझ पाया। उसके पूछने पर श्रमण महावीर ने ही स्पष्ट

किया-"मैं साधू धर्म एवं श्रावक धर्म रूप दो प्रकार के धर्म का उपदेश करूँगा।"

५. स्वप्न : सफेद गायों का समूह सामने स्थित है।

फल : श्रमण-श्रमणी, श्रावक-श्राविका रूप चतुर्विध संघ प्रभु की सेवा में रहेगा।

६. स्वप्न: खिले हुए कमलों वाला पद्मसरोवर।

फल : चारों निकाय के देवता प्रभु की सेवा करते रहेंगे।

७. स्वप्न : तरंगाकुल महासमुद्र को अपनी भुजाओं से तैरकर पार कर दिया।

फल: संसार-समुद्र को पार करेंगे।

८. स्वप्न: सूर्य अपना प्रचण्ड आलोक चारों ओर विखेर रहा है।

फल : केवलज्ञान का निर्मल आलोक शीघ्र ही जगमगायेगा।

९. स्वप्न: अपनी नील वैडूर्यवर्णी आँतों से मानुषोत्तर पर्वत को चारों ओर से आवेष्टित कर रहा हूँ।

फल : समस्त को प्रभु अपने निर्मल यश से आपूरित कर देंगे।

90. स्वप्न: मेरु पर्वत की चूला पर सिंहासन के ऊपर बैठा हूँ।

फल : प्रभु उच्च सिंहासन पर विराजमान होकर धर्म देशना देंगे। (चित्र M-26)

THE LIFE AS AN ASCETIC

The Great Renunciation

वृषभ

लक्ष्मी

पुष्पमाला

चन्द्र

सुर्य

It was the tenth day of the dark fortnight of the month of Margshirsh. Prince Vardhaman had observed a ritual fast of two days. A palanquin named Chandraprabh was prepared for his great renunciation. Around afternoon Vardhaman came out of the palace and climbed into the palanquin. The procession with the palanquin proceeded to Jnatkhand garden in the north-east of Kshatriyakund. The palanquin was placed near an Ashok tree. Vardhaman got down from the palanquin. Thousands of eyes were staring at the prince. His golden body was adorned with a beautiful dress and scintillating ornaments. The next moment he had removed all the ornaments and his dress. The only cover on his body was a piece of cloth resting on his shoulders and provided by Indrat Vardhaman pulled out his hair in five fistfuls. Indra collected his dress, ornaments and hair in a golden vessel. (M-13/1)

Illustrated Tirthankar Charitra

(880)





























वासुपूज्य

After this he uttered in his deep resonant voice, "Namo Siddhanam" (I bow to the Siddhas or liberated souls). Then he took the vow of ascetic life, "I take the vow of practicing equanimity all through my life and abandon all intentional sinful activities."

Bhagavan Mahavir, accepting the rigorous ascetic vow, resolved, "In my ascetic life I will remain equanimous in all conditions and circumstances. I will tolerate every affliction or predicament caused by man, god, demon or animal equanimously, no matter how fearsome it is. As long as I do not attain omniscience, I will continue to tread the fire paved path of purity with unflinching and firm steps." A wave of reverence started and thousands of heads bowed with reverence and thousands of the throats uttered in unison, "Victory be to Shraman Mahavir." (M-13/2)

The Removal of Poverty

After the austere vow the Mahashraman acquired Manahparyav Jnan which allowed him to percieve the feelings and thoughts of all beings. His heart was filled with equanimity and compassion. His face beamed with a spontaneous smile. He walked with firm and steady steps towards the jungle without turning around or hesitating.

Suddenly there was a feeble call from behind. The call of a pain filled heart retards the movement of a Mahashraman also. Next moment a wiry and weak Brahman, moving briskly with the help of a stick, arrived and fell at the feet of the Mahashraman. Tears were flowing from his eyes and there was an expression of pain on his pitiable face. He uttered humbly, "Prince Vardhaman! Kindly liberate me; give me something; remove my poverty."

Shraman Mahavir recognized the old man to be Som Sharma of Brahmankund. Long back he used to come to king Siddharth's court. The charitatle king extended him all help by giving what he needed. He was happy then. But he was not seen after the king's death.

Som Sharma said, "Prince, I wandered around from one state to another after the death of king Siddharth, my mentor. Wherever I went, my bad luck followed me. After two years of wandering in vain, I have returned home this morning. On my return my family members informed me about your year long charity. Everyone got what he desired, but I, the ill-fated, got nothing from your charitable hands. Prince! As soon as I reached home I came to know that abandoning everything you have become an ascetic only today. Prince Vardhaman, have pity on this poor destitute. Remove my poverty with your kind hands."

Mahavir was filled with compassion, but today he had nothing to give. He suddenly thought of the divine cloth on his shoulder. He tore it into two and gave

भगवान महावीर : श्रमण-जीवन

(888)

Bhagavan Mahavir : The Life as an Ascetic















महावीर







कुम्भ



सरोवर



समुद्र



विमान-भवन



स्त्न राशि



निर्धूम अग्नि



one to the Brahman. The Brahman was filled with joy. He took this piece of cloth to a mender and enquired about its value. The mender said, "Brahman! How did you get this divine cloth? It is just a part of the whole. If you bring the other part also, I will mend it back to its original form and you could sell it for a hundred thousand gold coins."

The greedy Brahman ran back to Mahavir and followed him wherever he went. After about a year the remaining piece of the divine cloth fell from Mahavir's shoulder. Som Sharma picked it up, got it mended, and sold it to king Nandivardhan for a hundred thousand gold coins. (M-14)

The Period of Practices: The Afflictions

सिंह

चन्द्र

सूर्य

Rejection of the Divine Help-The day after his renunciation Mahavir left Jnatkhand garden. At sunset he arrived near a small village called Kurmargram (identified as Kaman Chhapra today). He stopped under a tree, and, standing rock still, started his meditation. After some time a cowherd arrived there with his oxen. He wanted to go into the village to do his job of milking cows. He approached the meditating Shraman and said, "Ascetic! Please look after my oxen while I go into the village to milk cows. I will return soon." Without waiting for a reply the cowherd went away. The oxen, untethered and uncared for, strayed into the nearby jungle. On his return when the cowherd did not find his oxen, he asked, "Ascetic! Where are my oxen?" Mahavir remained silent. The cowherd grumbled and started looking around. He searched all around throughout the night in vain. The oxen, in the mean time, returned and lay down near Mahavir. When the exhausted cowherd returned in the morning and beheld this scene, he lost his temper. He took Mahavir to be a thief in disguise, whom he had caught just before the thief was to flee with the oxen that he must have hidden during the night. Without a second thought he started hitting Mahavir with the rope he carried for tying the oxen. The hard sisal rope left large inflamed welts on Mahavir's naked body. Even this excruciating pain did not distract Mahavir from his meditation. (M-15/1)

Just then an overpowering divine person appeared and said in his commanding voice, "Stop it, you ignorant idiot! You are committing a grave crime. This person is no thief. He is the son of king Siddharth. He is Shraman Mahavir, a great yogi and a meditating ascetic." The cowherd fell prostrate at the feet of Mahavir and repenting for his ignorance begged his pardon. The divine person who had interfered was none else but the king of gods, Indra. He bowed before the Mahashraman. Disturbed by the inflamed marks on the body of Mahavir he said, "Prabhu! These ignorant people will continue to cause you pain due to their foolishness. Please allow me to be in your attendance to provide you

Illustrated Tirthankar Charitra

१४२)























शीतल





वासुपूज्य

protection." Mahavir replied in all humility, "Devraj! You should know that an ascetic on the spiritual path reaches the goal of purity with the help of his own practice, courage, and discipline. It is never with the help of the king of gods or the king of demons that a soul sheds all its Karmas and becomes an Arhant or gets liberated." Full of reverence and praise, the king of gods bowed before Shraman Mahavir and departed. (M-15/2)

The Afflictions by Shulpani—Wandering Mahavir one day arrived near a small forlorn village on the banks of river Vegvati. Outside the village on a small hillock stood a temple surrounded by scattered heaps of bones and skeletons. Considering it to be an appropriate place for his practices, Mahavir sought permission from the villagers. The villagers informed him that this forlorn village was once a prosperous town. The ferocious lance weilding demon, Shulpani Yaksha, who dances and laughs on heaps of bones, had turned this Vardhaman village into Asthik-gram, the village of bones. The temple under question was his temple and he did not allow any one to stay there. If at all someone stayed he did not come out alive. The villagers tried to dissuade Mahavir from staying in the temple.

But Mahavir was determined to root out fear and sow the seeds of courage. He insisted, and by evening he was standing at a spot within the temple, completely lost in his meditation. When darkness descended, the air was filled with eerie sounds. Shulpani, the Demon with a lance, appeared in the courtyard and started emitting fearful trumpeting noise. He was surprised to see a human being standing fearlessly in meditation. He produced thunderous roar that shook the thick walls of the temple. But the ascetic still did not move, nor did he show any change in his serene bearing. The demon lost his temper and commenced his horrifying atrocities. A mad elephant appeared and goaded Mahavir with its pointed tasks. It lifted him in his trunk and tossed around. When this had no effect on Mahavir, a horrible ghost appeared and attacked Mahavir with its large canines and claws. Next appeared a black serpent that attacked with its venomous fangs and toxic breath. Finally he caused extreme pain in seven delicate spots within Mahavir's body (eyes, ears, nose, head, teeth, nails and the back). Mahavir had an endless capacity to tolerate pain. Even this extreme agony failed to pierce the serenity of his composure.

Drained of all his demonic energy, Shulpani became apprehensive. He thought that he was facing some divine power much stronger then he and he was heading towards his own destruction. All of a sudden a divine spiritual light illuminated his inner self. Slowly his anger subsided, fear dissolved, and a feeling of goodwill took over. He touched Mahavir's feet and with repentance and humility begged Mahavir's pardon. Mahavir opened his eyes and, raising his hand, said, "Shulpani! Anger supplements anger and love begets love. If you do

भगवान महावीर : श्रमण-जीवन

(**६**४**३**)

Bhagavan Mahavir : The Life as an Ascetic













महावीर







कुम्भ











विमान-भवन

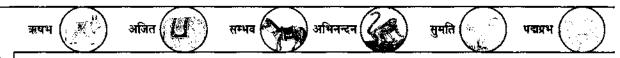


रत्न राशि



निर्धूम अग्नि





not cause fear, you will become free of all fears always. So destroy the poison ivy of anger."

Mahavir spent his first monsoon-stay at Asthik-gram. (M-16)

The Embodiment of Love

Leaving Asthik-gram Mahavir proceeded in the direction of Shvetambika town. The trail to this town passed through a dense and desolate forest. When some shepherds saw Mahavir entering the forest they shouted, "O Monk, stay put for a minute. This is a dangerous trail. There is a black serpent with venomous gaze on this trail. His hissing and gaze burn plants and trees. Even flying birds and standing humans drop dead. Please leave this trail and take a different route."

Mahavir heard this fear filled call of the shepherds. With a serene smile he raised a hand as a gesture of assurance. With firm steps Mahavir went near the snake-hole. All around human and animal skeletons could be seen. There was not a single green leaf as far as the eye could see. Close to the snake-hole was a delepidated temple. Mahavir stood in the shade of this temple and started his meditation.

After some time the giant black serpent came out of its hole hissing fiercely. It had seen a human being after a long time. The man was standing firm and fearless with closed eyes. The serpent was surprised. It looked at Mahavir with its venomous red eyes. Like flames from a ball of fire, its poisonous eyes emitted waves of venom. It hissed awesomely. But all this had no effect whatsoever on Mahavir. The serpent was astonished—till today every man I came across has been consumed by my first venomous hiss and this man stands still, absolutely nnmoved

The serpent glanced at the sun and once again focused its gaze at Mahavir and hissed at him with renewed anger, but in vain. It slithered from the line of the expected fall of the body and than with all its force sank its fangs in Mahavir's toe and injected all its venom. It drew back and waited expectantly, again in vain.

The angry serpent, vexed further by its failure stung Mahavir twice again. All its three attacks were wasted. Mahavir stood undisturbed. The serpent was astonished to see milk oozing out instead of blood from the spots where it had stung on Mahavir's toe.

Bhagavan Mahavir was standing unmoved. His face was glowing and on his lips was a charming smile, like a blooming rose. His eyes reflected the inner compassion.

(888)





सिंह



दुषभ



लक्ष्मी



पुष्पमाला











Illustrated Tirthankar Charitra

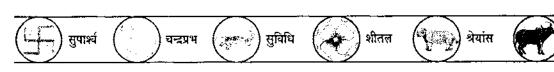












The serpent continued to stare with surprise. Confused by its failure it was lost in its thoughts.

Involved in his spiritual pursuits, Mahavir uttered in his deep and tranquil voice, "O Chandakaushik! Open your inner eyes. Be calm and remember your past life. Do not inject venom of anger in your life. Rise above the deadly poison of anger.

Mahavir opened his ambrosia filled eyes. When the serpent met his gaze, it felt as if a wave of peace and tranquility had engulfed its inner self. It appeared that its venom was slowly vanishing. It was lost in deep thoughts. Its dormant memory started unfolding and it acquired Jatismaran Jnan. Incidents from its past two births surfaced in its memory. It realized that it had suffered excruciating pain and degradation due to extreme anger and acute attachment during those births. The heat of repentance melted its vices.

Its spirit embraced enlightenment and mind became tranquil. It touched the pious feet of Bhagavan Mahavir and resolved, "O Lord! Now I will not look at any one at all throughout my life. I will not eat anything. I will not drink also. I will just put my mouth in the hole and lie still in the shadow of your feet. I will now at one for all my sins committed during the last three births and improve my future."

Knowing that the serpent had become harmless, throngs of people started arriving from nearby villages. They worshipped the serpent-god by offering milk and sweets. But the serpent was lying, keeping its hood in the hole, in meditation without even a trace of movement. Swarms of ants were attracted by the sweets. They started stinging the serpent. But the serpent tolerated these afflications with equanimity. It silently took the last vow (fast unto death). It tolerated the agony of hunger, thirst and the stings of ants. Its body became almost perforated, but it did not react at all. After fifteen days it died and was reborn as a god in the Sahasrar dimension. (M-17)

Quashing of the Flames

Once, leaving Shravasti, Shraman Vardhaman was going to Haliddug village. On the way he saw a large banyan tree. Finding it suitable, he went under it and started his night meditation. It was winter and a cold wind was blowing. Gaushalak was also following him. As Gaushalak could not tolerate the piercing wind, he shifted to the other side of the tree. After some time some wayfarers also stopped under the tree. They collected dry wood and started a fire to cook food. They spent the night there and kept the fire burning.

Early in the morning they broke camp and went away. The fire was left burning. Slowly it spread and engulfed the surrounding dry twigs and leaves

भगवान महावीर : श्रमण-जीवन (१४५) Bhagavan Mahavir : The Life as an Ascetic









महावीर

















विमान-भवन



स्त्न राशि



निर्धूम : अग्नि



ऋषभ 🕬 अजित 🐧 सम्भव 🙌 अभिनन्दन 🙌 सुमित पदाप्रभ

gathered under the tree. The wind was blowing in the direction of meditating Mahavir. The fire slowly spread and reached the spot where Mahavir was standing. Gaushalak shouted a warning. But Mahavir had no awareness besides that for his soul. He was unmoved by the heat of the approaching flames. He was busy quashing the ultimate fire, the fire of rebirth. The flames reached him and scorched his feet. Even this acute pain did not reach the depth of his tranquility. After some time the fire subsided on its own. (M-18/1)

Torture by Kalahasti

सिंह

वृषभ

लक्ष्मी

पुष्यमाला

चन्द्र

सूर्य

Leaving Chorak village Mahavir arrived at the outskirts of Kalambuka village. This village was ruled by two brothers, Megh and Kalahasti. Although they were landlords and chieftens, they were still involved in unlawful activities like looting the neighbouring kingdoms, raiding passing caravans, smuggling, etc. When Kalahasti saw Shraman Mahavir moving silently on a trail followed by Gaushalak, he stopped them and asked. "Who are you?" He neither got a reply from Mahavir nor from Gaushalak. He took them to be spies from some neighbouring kingdom. Tying them with ropes, he tortured them inhumanly. When he still could extract no information from them be ordered them, to be taken to his elder brother, Megh, for further torture and interrogation.

Shackled like criminals, they were produced before Megh, who felt as if he was looking at a known face. He suddenly recalled that once he had seen prince Vardhaman at the court of king Siddharth. This shackled spy seemed to have an uncanny resemblance with the prince. He came closer and recognized that the person in bondage was none else but prince Vardhaman who had become a Shraman. He fell at the feet of Mahavir and, with tears of repentance in his eyes he begged to be forgiven. When released Mahavir resumed his journey. (M-18/2)

Among the Aborigines

It was the fifth year of practices of Bhagavan Mahavir. He moved into the Radh (or Ladh) country. This area was also known as Vajra Bhumi or Shubhra Bhumi and was inhabited by scant and scattered population of rustic aborigines. Gaushalak also followed Mahavir wherever he went. The people of this area did not know anything about ascetics and their ways. They stared in astonishment when they saw a naked person standing like a statue at godforsaken places. When they did not get any response or even reaction on shouting at him, they would get irritated and hit him with sticks, lances, bones and stones. Some others would slash with wet bamboo canes that left inflamed welts and bruises on his body. Shraman Mahavir equanimously tolerated all these tortures and continued his advance toward purity.

Illustrated Tirthankar Charitra

(१४६)

























शीतल





He wandered from one place to another and once in a while came across small villages. Not so very often he would enter a village to beg food and mostly got dry and stale food. However, most of the time he went without any food. People would curiously stare at him and wild dogs would pounce on him and bite. For their crude entertainment, the aborigines would pick up Mahavir and throw him on the ground. Mahavir never uttered a word of protest. He did not even look at them. This silence also invited abuses from these primitives. Under such gravely adverse circumstances Mahavir spent almost five months in that area during his first visit. Once again, during the ninth year of his practices, Mahavir returned to this area for about six months. (M-19)

Saving Gaushalak

Once, while moving from Siddharthpur to Kurmar village Mahavir was passing through a dense forest. All of a sudden Gaushalak saw a Tapas ascetic in an opening on one side of the trail. On closer observation he saw that the hermit was busy doing some strange penance. He was standing facing the sun with his head hanging down and arms straight up. Long strands of his hair were hanging on the ground like roots of some old banyan tree. Due to the heat of sun rays, small insects, falling from his unkempt hair were writhing, and out of compassion, he was picking them up and putting them back in his dense locks of hair.

Gaushalak could not control his laughter seeing this strange activity. Jokingly he said, "O abode of insects! What do you think you are doing? You are gathering insects and considering this act to be a penance." The hermit remained calm the first time. But when Gaushalak did not refrain from making biting remarks, the hermit looked at him with his burning eyes and said, "O vicious person! My name is Vaisyayan Tapas and I am the doom of ignorant fools like you." Instead of jolting him to sanity this scornful comment drew an insulting laughter from Gaushalak. The hermit now took a few steps back and angrily started emitting fire from his mouth (this is a miraculous power called Tejoleshya, acquired through long and harsh penance). Within no time a ball of fire rushed towards Gaushalak, who retreated with fear and ran to Mahavir shouting in panic, "Sire! Save me. This Tapa's will burn me." Reaching Mahavir, Gaushalak fell at his feet.

Hearing the pathetic call of Gaushalak, Mahavir was moved. Turning back he saw the approaching fire ball. From the compassionate heart of Shraman Mahavir flowed a spontaneous stream of cool pacifying energy. When the nectarglance of Mahavir fell on the fire-ball it subsided. The angry hermit was astonished to see his powerful fire-ball extinguished. He recognized Mahavir as a much greater and more benevolent power then he, and said, "Pardon me O

भगवान महावीर : श्रमण-जीवन

१४७)

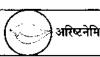
Bhagavan Mahavir: The Life as an Ascetic















महावीर























ऋषभ 💮 अजित 🚺 सम्भव अभिनन्दन 🙀 सुमित 🔑 पद्मप्रभ

embodiment of benevolence! I did not know that this man was your disciple."
Gaushalak was saved from his iminent death.

Gaushalak was releived. He asked, "Sire! What this abode of insects says?" Mahavir replied, "He was just going to turn you to ashes with his fire-power. You were saved by my pacifying power. Do not disturb anyone in future." (M-20)

Afflictions by Kataputna

It is an incident from the sixth year of the period of spiritual practices of Shraman Mahavir. It was the month of Magh, the peak of winter season. Chilling and biting winds were blowing. During the quiet part of the night, in a lonely jungle Mahavir was standing in meditation. All of a sudden a witch named Kataputna came there. Seeing Mahavir deep in meditation she became angry for no apparent reason.

But there is nothing that happens without a reason. There must certainly have been some antagonism from some previous birth. As soon as the feeling surfaced, Kataputna lost her reason, and, in order to take revange of some forgotten deed from some past life, she started torturing Mahavir.

She took the form of a giant and ominous looking Parivrajak with long strands of hair. Filling ice cold water in her braided hair she sprayed that freezing water on Mahavir. The atmosphere was filled with the moaning sound of icy winds and demonic laughter of the witch. It was a horrific scene.

Mahavir, elevated completely into a higher spiritual realm, remained unmoved and serene. At last the witch accepted her defeat. She bowed at the feet of Shraman Mahavir and left. As a result of his total absorption in the self and his high purity of soul, Mahavir acquired the special mental powers of perceiving the whole physical world at will. (Vishishta Lokavadhi Jnan). (M-21/1)

In the Prison

वृषभ

लक्ष्मी

पुष्पमाला

चन्द

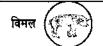
सूर्य

During the sixth year of his practices, Mahavir one day went to the Kupiya village in the state of Videh, east of Vaishali. The village guards caught him and, taking him to be a spy, put him in the prison. There were two female mendicants in the village. When they, Vijay and Pragalbh, heard that a spy disguised as a nude ascetic had been apprehended, they came to see him. Shraman Mahavir, tied up, was standing in meditation in the prison. The mendicants recognized him and became sad. They approached the guards and said, "You call yourself guardians of the state and people and you fail to distinguish a thief from a honest citizen. You do not find any difference between a Shraman and a smuggler. For your information, you are torturing Shraman Vardhaman, the ascetic son of king Siddharth. Have you no fear of the wrath of the gods?"

288

Illustrated Tirthankar Charitra

सचित्र तीर्थंकर चरित्र











-)



















ग्रसुपूज्य

With this revelation, the soldiers started trembling. They, at once, released Mahavir and sought his forgiveness. Shraman Mahavir just raised his palm as a gesture of pardon and assurance and left for some other solitary place. (M-21/2)

Deadly Torture by Sangam

One day Shraman Mahavir was doing a special one night meditation in the Polash temple in Pedhal garden outside the Pedhal village. In this practice one makes his body, mind, psyche and soul absolutely still and tranquil. Observing the high degree of engrossment in meditation, Indra exclaimed, "You are great, Prabhu Vardhaman! Today you have no equal as an ascetic and a serene, brave, and equanimous spiritualist." Sangam, a god in Indra's assembly, was peeved at this praise of a mortal being. He retorted, "If Devraj promises not to interfere, I can disturb the concentration of Mahavir. It is a child's play for me."

Indra remained silent, though unwillingly. Considering it to be affirmative, Sangam, with all his cunning and power came to Polash temple. One after another he created twenty almost fatal predicaments to disturb Mahavir's meditation.

He created a terrible sand storm and in no time Mahavir was submerged in a heap of sand. Mahavir, in his unshakable determination did not even close his eyes. As soon as the storm stopped, arrived a swarm of ants. Mahavir's body was covered with biting and stinging ants, but he remained still. After this, innumerable mosquitos attacked Mahavir's body. After mosquitos, came an attack by white ants turning him into a termite-hill. Scorpions crawled over his body and pierced it with poisonous stings. This was followed by biting by mongoose, large cobras, and giant field rats.

After all this, appeared a wild elephant that goaded Mahavir with its large pointed tusks. This elephant than lifted Mahavir in its trunk and tossed him up. When Mahavir fell on the ground, it crushed him with its legs. This was followed by an attack by an ominous looking ghost. Then a tiger attacked and gored Mahavir with its sharp talons.

When all these painful afflictions failed to disturb Mahavir's meditation, Sangam took a different approach. He created a realistic illusion of Siddharth and Trishla weeping and wailing profusely. But this too could not penetrate Mahavir's iron resolve. Sangam then lit a fire almost touching Mahavir's feet and started cooking. After this he took the form of a bird catcher and hung a number of cages on Mahavir. The birds attacked Mahavir with their beaks and talons through the gaps in the cages. Blood oozed from these new wounds. Then came a storm, torrential rain, and hail-storm. Nothing could disturb the rock hard resolve of Mahavir.

भगवान महावीर : श्रमण-जीवन

(888)

Bhagavan Mahavir: The Life as an Ascetic















महावीर

ध्वजा



कुम्भ



सरोवर

















Now came a giant whirlwind; lifting and swirling everything that came in its path. Mahavir's body swirled but his mind remained stable. At last Sangam himself lifted a large mace and hit Mahavir. It was a heavy blow that buried Mahavir in the ground upto his knees but he did not even blink. After all these physical blows. Sangam resorted to a psychological attack. He arrived in his divine form riding a Viman (space vehicle) and said to Mahavir, "Why are you suffering so much and still standing on the earth. Come, I will take you to heaven with this mortal body of yours." Mahavir did not respond.

Lastly Sangam produced sparsely clad fairies who approached Mahavir and undulated their voluptious bodies invitingly. He also created an atmosphere conducive to lust. Mahavir never even shifted his icy gaze and his body remained reactionless.

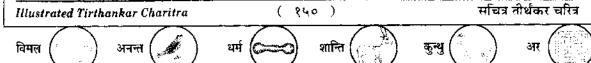
All these twenty afflictions drained Sangam's energy and he was tired. On the other hand even after tolerating these painful tortures Mahavir remained poised in his clevated state of meditation. (M-22)

Refuge to the Demon King

In the Vindhya range there lived a hermit named Puran. As a result of his rigorous penances he was reincarnated as the king of demons, Chamarendra. He had a bloated ego due to his natural powers and miraculous capacities. When, through his demonic perception, he came to know that the king of gods, Shakrendra, had more glory and luxuries, his ego was hurt. He decided to subjugate the king of gods. He prepared to attack the abode of Shakrendra, the Saudharm Viman, with his demonic arsenal. But in case he faced defeat he wanted support from someone more powerful than him. On searching he found that Shraman Mahavir was the most suitable person.

He immediately rushed to Sumsumarpur, where Mahavir was standing in meditation. After bowing to Mahavir he said, "Bhante! I, demon king Chamarendra, am going to fight with Saudharmendra Shakra, please protect me." Saying thus and without waiting for a reply, he rushed to the assembly of gods and challanged the king of gods. For a moment Shakrendra was taken aback but when he saw that it was demon king Chamarendra, he calmly lifted his most potent weapon, the Vajra, and launched it at the demon king. (M-23/1)

As the Vajra sped in the direction of Chamarendra it emitted bright sparks and thunderous sound. Afraid of this fierce weapon Chamarendra fled in the direction of the tree under which Mahavir stood in meditation. When Shakrendra realized where Chamarendra was heading, he became worried about any possible damage the Vajra could cause to Mahavir. He at once rushed after fleeing Chamarendra to defuse the Vajra. It was a strange seen in the sky: first



















पुष्पमाला











सुपार्श्व



्रक्ष्य) सुविधि







वासुपूज्य

the demon king crying with fear, then the sparkling Vajra followed by the king of gods.

The demon king transformed himself into a tiny being and took refuge behind Mahavir's feet. He uttered, "Prabhu! I am under your protection, kindly save me." As the Vajra was about to hit him and explode, Indra caught it and disabled it. Chamarendra was trembling with fear and Shakrendra was boiling with anger. Mahavir lifted his open palm and blessed them both. Indra said to Chamarendra, "Demon king! What you have done is unpardonable? But by taking refuge with Bhagavan Mahavir you have tied my hands. As he has forgiven you I am leaving you unharmed. You may go." The demon king, free of the fear and the king of gods, free of anger, bowed before Bhagavan Mahavir and left for their respective abodes. (M-23/2)

The Deliverance of Chandana

From the capital town Kaushambi, king Shatanik ruled over the state of Vats. His chief queen Mrigavati was the daughter of Maharaj Chetak of Vaishali republic. Anga was a neighbouring state and its capital was Champa. The king of this state was Maharaj Dadhivahan. His queen Dharini was the younger daughter of Chetak. Dharini had a daughter named Vasumati who was very beautiful as well as graceful.

Once, when king Dadhivahan had gone with his army to assist a neighbouring king, Shatanik attacked Champa. The cruel soldiers of Kaushambi plundered Champa. The general and a great Charioter of Kaushambi, Kakmukh was attracted more by beauty rather than riches. He entered the palace and kidnapped queen Dharini and Vasumati. On the way when Kakmukh intended to violate her chastity, queen Dharini committed suicide. When Vasumati also threatened to do so, he had a change of heart. He took her to his home as a daughter. When his wife did not tolerate Vasumati, he was persuaded by Vasumati to auction her in the slave market and please his wife with the proceeds.

Kakmukh took Vasumati to the slave market. In the auction the highest bidder was a courtesan from Kaushambi. There was an altercation when Vasumati refused to go with her.

Just at that moment a rich merchant from Kaushambi arrived there. Seeing the commotion he enquired, "What is going on here?"

Someone from the crowd said, "Today a slave girl, lifted from Champa, has been brought for sale at a hundred thousand golds. She looks like a divine beauty. A courtesan has bought her but she refuses to go with her. She appears to be a high born and chaste girl."

भगवान महावीर : **श्रम**ण-जीवन



Bhagavan Mahavir : The Life as an Ascetic













महावीर

ध्वजा



कुम्भ



पद्म सरोवर





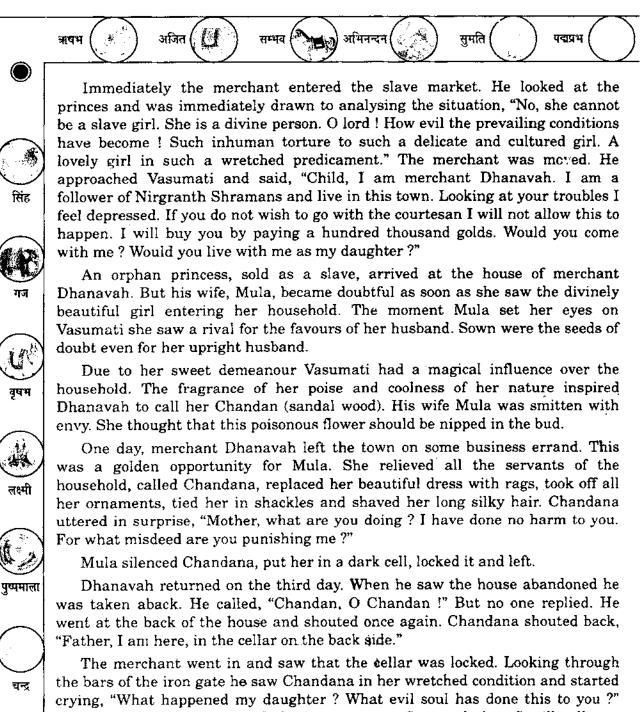
विमान-भवन



रत्न राशि



निर्धूम अग्नि



Chandana replied calmly, "Father, get me out first and then I will tell you everything."

The merchant broke the lock and brought out Chandana. She asked, "Father, I have not taken even a drop of water for last three days. Please give me something to eat and drink." The merchant went around the house but

सचित्र तीर्थंकर चरित्र (१५२) Illustrated Tirthankar Charitra

विमल

सूर्य

























वासुपुज्य

everything was locked. Not even a utensil was available. He saw a basket containing a handful of dried pulse-bran meant for cows. He took the basket and put it before Chandana, "Child, eat some of this. I shall call a blacksmith to cut your shackles."

The Impossible Resolution

It was the 12th year of Bhagavan Mahavir's spiritual practices. Spending the monsoon-stay at Vaishali he came to a garden in Kaushambi. It was the time around which the incidents of Shatanik's attack on Champa, fall of Champa, sacrifice of queen Dharini, auction of princess Vasumati as a slave, etc. were occurring. Bhagavan Mahavir with his penetrating knowledge and perception had a glimpse of all this. He made an almost impossible resolution on the first day of the dark half of the month of Paush.

"I will accept alms for breaking my fast only from a princess that has become a slave. And that too only if she has a shaven head, her limbs are shackled, she has not eaten for three days, she is sitting on the threshold of a house, she has pulse-bran lying in a basket and she has a smile as well as tears in her eyes. Unless these conditions are met I resolve to continue my practice and not to break my fast."

Four months passed since Bhagavan Mahavir started going from door to door to beg in the town of Kaushambi.

One day Mahavir approached the house of the chief minister of Kaushambi, Sugupta. Sugupta's wife, Nanda, was a devotee of Bhagavan Parshvanath and was acquainted with the ways of ascetic Shramans. Looking at Mahashraman Vardhaman approaching her house for alms, she became enthralled. She requested Prabhu to accept pure and ascetic food. Mahavir turned back without accepting anything. Nanda became disappointed. Cursing her bad luck she said, "Mahashraman Vardhaman came to my house and, what a misfortune, I could not provide him anything."

Nanda's maids reassured her, "Lady, why are you so dejected, this ascetic has been approaching almost every household in Kaushambi for alms and without taking a single grain or uttering a word he is returning back. We have been witnessing all this for last four months. This is nothing unique at your place, so why be dismayed?"

The words of the maid added to Nanda's distress, "What! The Mahashraman is returning without alms for last four months. That means Prabhu has been on fast for four months and I have not been able to serve him. How unlucky I am?"

At that moment minister Sugupta arrived. Nanda told him everything.

भगवान महावीर : श्रमण-जीवन

(१५३)

Bhagavan Mahavir : The Life as an Ascetic













महावीर

ध्यजा





सरोवर



समुद्र



विमान-भवन

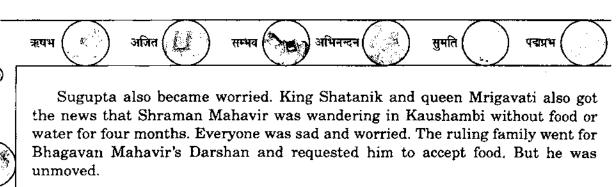


राशि



अग्नि





Five months and twenty five days had passed since Bhagavan Mahavir had eaten anything. The twenty sixth day of the sixth month dawned. It was past noon when Prabhu Vardhaman, wandering for alms, was approaching the house of merchant Dhanavah. An expectant crowd followed him.

सिंह

वृषभ

लक्ष्मी

पृष्पमाला

चन्द्र

सूर्य

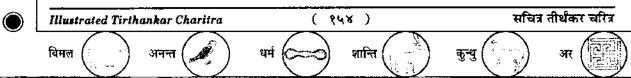
Chandana was sitting on the threshold of the cellar, one feet inside and the other outside. In her hand was a basket and in the basket, stale pulse-bran. When she looked at the shackles on her limbs a broken dream emerged in her memory and she became lost. All of a sudden she heard the sound of approaching footsteps, and a murmur of a crowd. She looked up and found that the great saviour Shraman Mahavir was standing at her door. Chandana became enthralled. She thought, "Thank lord! You have yourself come to my rescue from this pitiable condition." A glow of happiness dawned on her face. She forgot all her misery, the pain turned into joy as if every cell in her body was dancing. She tried to stand, "Welcome O lord! Please accept something from these wretched hands." Prabhu took a step forward and stopped. Twelve out of the thirteen conditions of his resolution were visible, only Chandana had no tears in her eyes. Mahavir turned and started moving away.

As soon as Mahavir turned, Chandana's joy vanished as if struck by lightening, "How unluckily I am that even in this wretched condition Prabhu has returned empty handed from my door." Filled with self pity she started crying.

Mahavir turned back and looked. All conditions of his resolution were visible now. He stepped ahead and extended her cupped palms before Chandana. Joyous Chandana took the pulse-bran from the basket and put it in the extended palms of Bhagavan Mahavir. Mahavir broke his fast. (M-24)

The next moment Chandana's shackles shattered to pieces. Divine drums sounded in the sky. Divine applause echoed from all directions, "Hail the almsgiving." Flowers, fragrant water and perfumes showered from the sky and the courtyard of Dhanavah was filled with heaps of gems. Her beauty had magnified thousand fold. Gods and goddesses adorned Chandana with beautiful garments and ornaments.

This resolution of the period of penance of Bhagavan Mahavir may be deemed as the first step of the human endeavour for women's liberation.





Last Calamity: Nails in the Ears

After spending the twelfth monsoon-stay of his period of practices in Champa, Bhagavan Mahavir arrived outside a village named Chhammani and stood in meditation. It was dusk and a cowherd was returning home from his farm. When he saw Mahavir standing just outside his farm he said, "Ascetic! Please look after my oxen, I will return in a few minutes", and he left.

The cowherd went into the village and returned a little late. The oxen had drifted away grazing. Not finding his oxen, he asked, "Ascetic, where are my oxen?"

Mahavir was in deep meditation and unaware of all this. The cowherd asked again, and once again he did not get any response. He got irritated and shouted, "You hypocrite! Are you deaf, don't you hear anything?"

Mahavir still did not respond. The cowherd lost his temper, "You pretender, it seems that both your ears are useless. Wait a minute, I will give you a proper treatment." He picked long nail like thorns from a nearby shrub of Kansa grass and pierced the ears of Mahavir deeply by hammering the thorns in. (M-25/1)

Even such excruciating agony did not move Mahavir from his meditation, neither did it evoke any feeling of anger or aversion in him.

Completing his meditation in normal course he went inside the village for alms. He arrived at the door of a trader named Siddharth. A friend of the trader was sitting with him. He was a doctor. Both of them gave pure food to Mahashraman with due respect.

Doctor Kharak told Siddharth, "Friend, the face of this Shraman has a divine glow but there is a shade of tiredness too. Some inner pain is visible in his eyes. I feel this great sage suffers from some inner agony."

Siddharth replied, "Friend, if such a great sage suffers from some kind of pain, we should immediately go and treat him."

After taking alms Mahashraman returned. Taking Doctor Kharak with him, Siddharth followed. Going into the garden, where Prabhu rested, when the two examined him they found the two thorns stuck in his ears. Kharak shivered with remorse. The friends then arranged for necessary instruments and medicines. They used some medicated oil and forceps and pulled out the thorns. This caused such an unbearable agony to Mahavir that an anguished cry was forced out of him. Blood oozed out from his ears. The doctor dressed the wound with some coagulant. (M-25/2)

भगवान महावीर : श्रमण-जीवन (१५५) Bhagayan Mahavir : The Life as an Ascetic















महावीर







कुम्भ



सरोवर



समुद्र



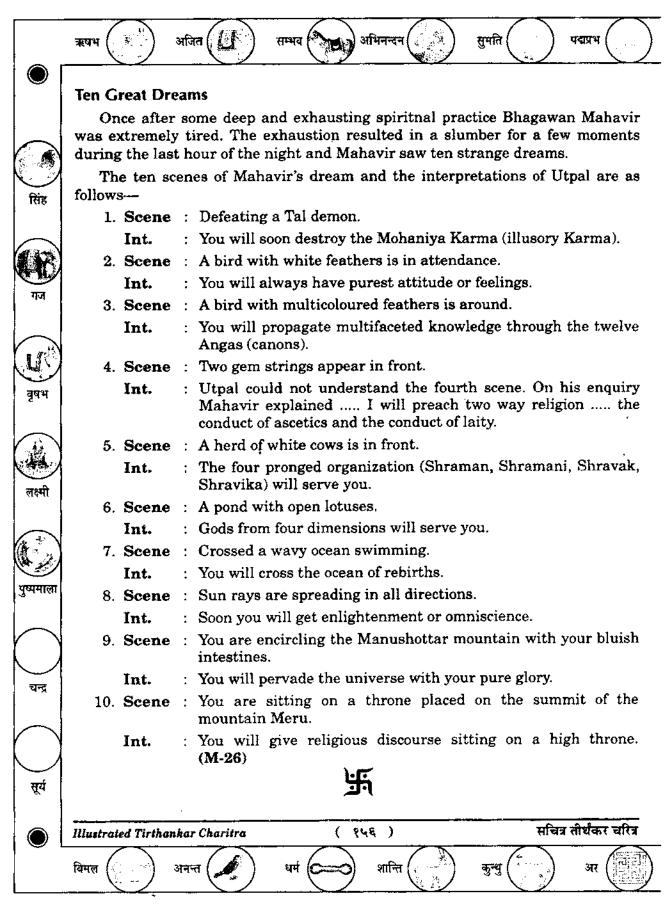
विमान-भवन



रत्न राशि





















केवली चर्या

केवलज्ञान का आलोक

वैशाख शक्ला दशमी का दिन था। साधनाकाल के बारह वर्ष पाँच मास पन्द्रह दिन व्यतीत हो चके थे। प्रभू महाबीर विहार करते हुए ऋजुबालुका नदी के तट पर एक उद्यान में शाल वृक्ष के नीचे ध्यानावस्थित हुए। उकड़ आसन में बैठे वैशाख महीने की कड़ी धूप में भी प्रभू ध्यान की असीम शीतलता अनुभव करते हुए तन-मन-प्राणों को अकम्प सुस्थिर बनाकर शुक्ल ध्यान में लीन हो रहे थे। चार घनघाति कर्मों के सघन आवरण छूटे, कि सहसा केवलज्ञान केवलदर्शन का लोकालोक प्रकाशी भास्कर उदित हो गया। भगवान महावीर अब निश्चय दृष्टि से भगवान, जिन, सर्वझ, सर्वदर्शी बन गये। केवलज्ञान होते ही कुछ क्षणों के लिए, स्वर्ग, नरक और तिर्वक लोक में शान्त प्रकाश-सा फैल गया। (चित्र M-27/1)

पथम धर्म देशना

साढ़े बारह वर्ष की कठोर सुदीर्घ साधना के पश्चात् श्रमण भगवान वर्द्धमान को केवलज्ञान, केवलदर्शन की प्राप्ति हुई। असंख्य देव-देवी तथा देवेन्द्र धरती पर आये, प्रभू महावीर की वन्दना करके कैवल्य महोत्सव मनाया ।

सामान्यतः केवलज्ञान की उपलब्धि होते ही तीर्थंकर देव समता धर्म (अहिंसा) का प्रथम उपदेश देते हैं। प्रभु की प्रथम दिव्य देशना का लाभ लेने के लिए ऋजुबालुका नदी के पावन तट पर ही देवताओं ने समवसरण की रचना की। अगणित वेवता प्रभु का अमृत उपदेश सुनने में मग्न हो गये। (चित्र M-27/2)

देवता सत्य, संयम, शील के प्रशंसक और उपासक तो हो सकते हैं, परन्तू नियम ग्रहण करके उसकी आराधना नहीं कर पाते। संयम की पात्रता केवल मनुष्य में ही है। इस दृष्टि से यह माना जाता है कि कोई भी मनुष्य व्रत ग्रहण का संकल्प नहीं कर सका, इस कारण प्रभू महावीर की प्रथम देशना, फल की दृष्टि के निष्फल ही रही।

ऋजुबालुका तट से विहार करके प्रभु महावीर मध्यम पावा पधारे। महसेन वन में दिव्य समवसरण की रचना हुई। (समवसरण का चित्र देखो)

इसी वैशाख महीने में सोम शर्मा ने एक विशाल महायज्ञ का आयोजन किया था। इस महायज्ञ में सम्मिलित होने के लिए भारत के 99 प्रसिद्ध प्रकाण्ड विद्वान अपने ४४०० शिष्यों के साथ उपस्थित हुए। हजारों नर-नारी दूर-दूर से यज्ञ की पवित्र ज्योति के दर्शन करने के लिए आ रहे थे। इस प्रकार मध्यम पावा एक धार्मिक तीर्थ बन गया था।

मध्यम पावा में अचानक ही भगवान महावीर के आगमन की चर्चा सुनी तो पंडित सोय शर्मा चिंतित हो उठा। वह यज्ञ के प्रमुख सूत्रधार महापंडित इन्द्रभृति आदि के पास आया। सभी ने मंत्रणा की कि श्रमण वर्द्धमान महावीर यहाँ यज्ञ विरोधी उपदेश करेंगे तो हमें क्या करना चाहिए? इन्द्रभूति ने कहा-"श्रमण वर्द्धमान अवश्य ही कोई अद्भुत पुरुष हैं। उनके पास साधना का बल है, तप का तेज है, परन्तु फिर भी ज्ञान में वे हमारा मुकाबला नहीं कर सकेंगे। हम अपने प्रखर ज्ञान बल से आज उन्हें परास्त कर देंगे। हमें चिन्तित होने की आवश्यकता नहीं है। संभव है आज का यह पवित्र दिन हमारी दिग्विजय का दिन बन जाये।"

भगवान महावीर : केवली चर्या

(१५७)

Bhagavan Mahavir : Kewali Charya

















ध्वजा





सरोवर



समुद्र

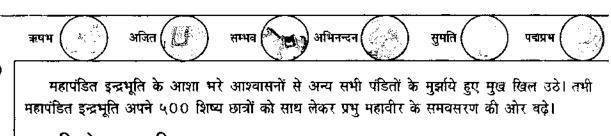


विमान-भवन



रत्न राशि





इन्द्रभृति को आत्मानुभृति

समवसरण के प्रथम सोपान पर चरण रखते ही महापंडित इन्द्रभृति के अन्तः करण में एक बिजली-सी चमक गई। मन ने उथल-पुथल मच गई। दूर से ही उन्होंने श्रमण महावीर के अद्भुत तेजोदीप्त मुख-मंडल को देखा तो जैसे सुर्य की तेज किरणों से हिमालय की बर्फ पिघलने लगती है इन्द्रभृति का अहंकार पिघलने लगा। मन में संशय और विचिकित्सा के निर्झर फूटकर बहते हुए-से अनुभव हुए।

"इन्द्रभृति गौतम ! तुम आ गये *** ?" समवसरण के तृतीय द्वारं में प्रवेश करते ही प्रभु महावीर का मेघ गंभीर सम्बोधन इन्द्रभूति के कानों में पड़ा। इन्द्रभूति को आश्चर्य हुआ-"महावीर मुझे पहचानते हैं !" फिर गर्व में हाथ उठाकर सोचने लग- "मेरी विश्व विश्वत विद्वता के कारण परिचित तो होंगे ही।" (चित्र M-28/1)

"इन्द्रभृति गीतम ! तुम वेदों के महापंडित होकर भी आत्मा की सत्ता के विषय में शंकाशील हो?" प्रभु महावीर की वाणी सुनकर इन्द्रभूति विस्मय से अभिभूत हो गये।

प्रभू ने मधुर और मैत्रीपूर्ण शब्दों में पुकारा-''इन्द्रभूति गौतम ! जिन वेदों के आधार पर तुम आत्मा के विषय में शंका करते हो, उन्हीं वेदों में आत्मा की स्वतंत्र सत्ता के स्पष्ट प्रमाण विद्यमान हैं। क्या कभी तुमने सोचा है, आत्मा क्या है? कीन है? और आत्मा के विषय में शंका करने वाला कीन है? ज्ञान और ज्ञान का संवेदन-दो अलग वस्तु नहीं हैं। आत्मा स्वयं ज्ञानमय है (विज्ञानघन है) और ''ज्ञान'' यही आत्मा की पहचान है। आत्मा अमूर्त्त, अतीन्द्रिय तत्त्व है, इसे इन्द्रियों से नहीं, इन्द्रियातीत अनुभूति से ही पहचान सकते हो, अनुभव कर सकते हो। तुम स्वयं की सत्ता का अनुभव करो।"

प्रभू महावीर के मुख से वेदों के वाक्य और आत्मा के अस्तित्व में उनके प्रबल अकाट्य तर्क सुनकर इन्द्रभूति की शंका का उच्छेद हो गया। अहंकार पिघला। विनम्रता आते ही सत्य की दिव्य किरण का दर्शन होने लगा। इन्द्रभृति गीतम के मन का अंधकार मिट गया।

''प्रभु ! मैं विजीगिषु (विजय का इच्छुक) बनकर आया था, परन्तु अब केवल जिज्ञासु हूँ। मुझे अनन्त सत्य का ज्ञान दीजिए। मैं इन दिव्य चरणों का शिष्यत्व ग्रहण करना चाहता हूँ """!' इन्द्रभूति महावीर के चरणों में झुक गये। (चित्र M-28/2)

''अहासुहं देवाणुष्पिया''–महावीर का अनाग्रही स्वर मुखरित हुआ। इन्द्रभूति गौतम भगवान महावीर र प्रथम शिष्य और प्रथम गणधर बने। उनके साथ आये पाँच सी छात्र शिष्य भी प्रभु के चरणों में प्रव्रजित हा गये। अवनि-अम्बर जयघोषों से गूँज उठा।

इन्द्रभृति की दीक्षा के समाचार सुनते ही यज्ञशाला की विद्वद् मंडली हतप्रभ-सी रह गई। फिर भी दूसरे महांडित अग्निभूति ने साहस करके कहा—''मैं जाता हूँ उस मायावी महावीर के पास अपने बन्धु की छुड़ाऊँगा और महावीर को भी जीतकर आऊँगा " अग्निभृति भी अपने पाँच सौ शिष्यों के साथ भगवान

Illustrated Tirthankar Charitra

(१५८)

सचित्र तीर्थंकर चरित्र

विमल







सिंह

वृषभ

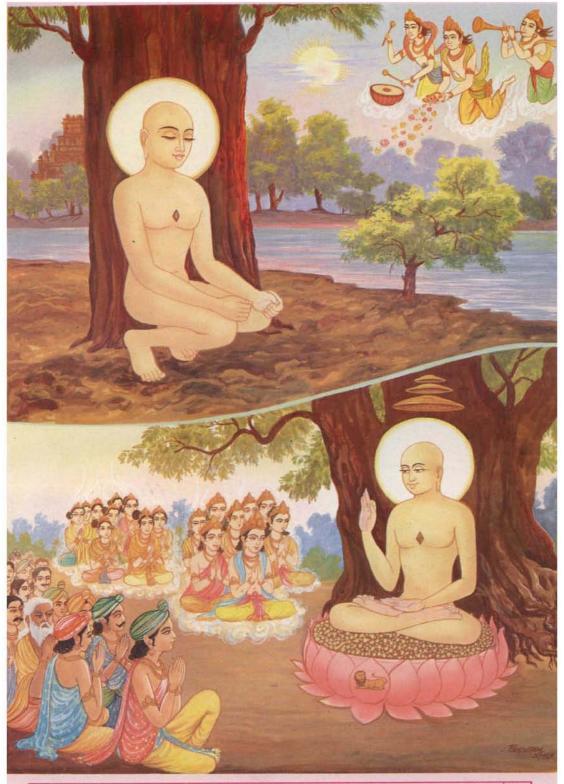
4

लक्ष्मी

पृष्यमाला

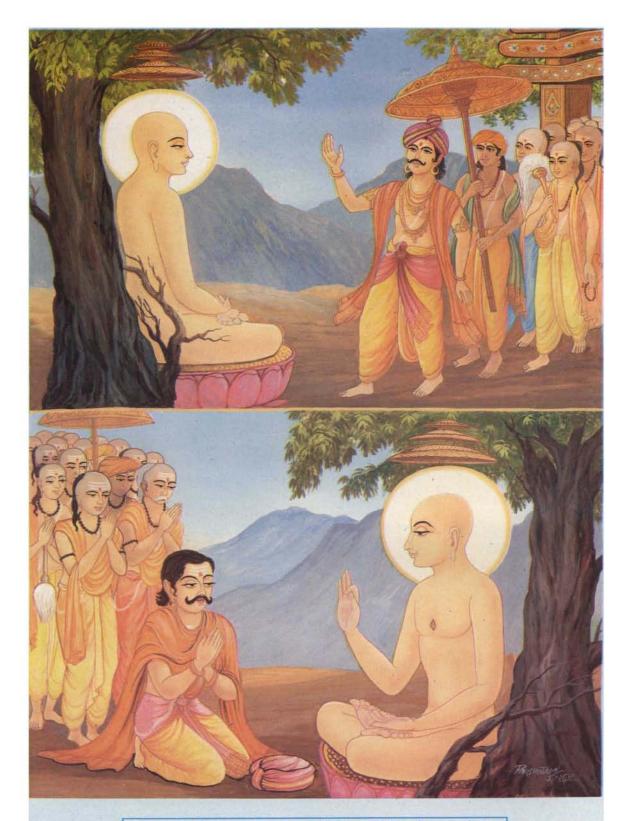
चन्द्र

सूर्य



M 27 (9) ऋजुबालुका नदी के तट पर भगवान महावीर को कैवल्य प्राप्ति

- (२) भगवान महावीर की देवों की उपस्थिति में प्रथम देशना। (1) Bhagavan Mahavir attains omniscience on the banks of the river Rijubaluka (2) The first discourse in presence of gods



M 28 इन्द्रभूति का आगमन और महावीर के चरणों में सर्वात्मना समर्पण। Indrabhuti's arrival and total submission before Mahavir.





चन्द्रप्रभ





शीतल 🔍 🕠 श्रेयांस



ासुपूज्य

महावीर के समवसरण में पहुँचे। जैसे ही भगवान के समक्ष उपस्थित हुए प्रभु ने उनको नाम से सम्बोधित किया—''अग्निभूति ! तुम्हारा ज्येष्ठ बंधु अपने संशय जाल से मुक्त होकर संशयातीत बन गया है। अब तुम भी अपने कर्म-फल विषयक संशय को मिटाओ, जिस प्रकार जीव का अस्तित्व सिद्ध है उसी प्रकार जीव कर्म का कर्ता और फल मोक्ता भी स्वयं ही है।"

मन के गुप्त संशय का उद्घाटन होते ही जैसे अग्निभूति के अन्तर कपाट खुल गये। ज्ञान का दर्प चूर-चूर होते ही, श्रद्धा का निर्झर फूट पड़ा। अग्निभूति भी श्रमण महावीर की सर्वज्ञता के समक्ष नतमस्तक हो गये और अपने 400 शिष्यों के साथ श्रमण महावीर के शिष्य बन गये।

वायुभूति भी ५०० शिष्यों के साथ प्रभु महावीर के शिष्य बन गये।

महापंडित व्यक्त और आर्य सुधर्मा भी आये और वे भी संशयमुक्त होकर अपने-अपने ५००-५०० छात्र शिष्यों के साथ भगवान के पास दीक्षित हो गये। इसी प्रकार मीर्यपुत्र और अकम्पित अपने ३५०-३५० शिष्यों के साथ तथा अचलघ्राता-३००, मेतार्य-३००, प्रभास-३०० शिष्यों के साथ भगवान महावीर के चरणों में दीक्षित हो गये।

इस प्रकार प्रथम धर्म देशना में ही भारत के ग्यारह महापंडित अपने ४४०० शिष्यों के साथ भगवान महावीर के शिष्य बन गये।

धर्मतीर्थ की स्थापना

वैशाख शुक्ला एकादशी का यह पवित्र दिवस जैन परम्परा का ऐतिहासिक गरिमा का दिवस माना जाता है। वैशाख शुक्ला दशमी को भगवान को केवलज्ञान प्राप्त हुआ, इसिलए वह 'केवल्य-कल्याणक' की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। किन्तु धर्मतीर्थ की स्थापना की दृष्टि से एकादशी का दिन अत्यन्त ही महत्त्व का है। इस प्रथम ममवसरण में ही जहाँ भारत के ग्यारह दिग्गज ब्राह्मण विद्वान् अपनी मिथ्या धारणाओं का त्यागकर समता और अहिंसा आधारित श्रमण परम्परा में प्रव्रजित हुए, प्रभु के गणधर वने⁹, वहाँ हजारों-हजार अन्य स्त्री-पुरुष भी प्रभु की देशना सुनकर प्रतिबुद्ध हुए अनेकों ने संयम ग्रहण किया और अनेकों ने श्रावक धर्म स्वीकार किया।

राजकुमारी चन्दनबाला, जिसके हाथों से भगवान महावीर का कठोर अभिग्रह पूर्ण हुआ था, वह भी इसी पवित्र दिवस की प्रतीक्षा में बैठी थी, जैसे ही उसे सूचना मिली कि भगवान को केवलज्ञान हो गया है, उसका हृदय हिलोरें लेने लगा। वह अति शीघ्रगामी साधनों से अनेक प्रबुद्ध नारियों के साथ भगवान के समवसरण में पहुँची और धर्म उपदेश श्रवणकर भगवान की प्रथम शिष्या बनी।

शंख, शतक आदि अनेक सम्पन्न और प्रमुख सद्गृहस्थ तथा सुलसा आदि अनेक प्रमुख नारियों ने श्रावक धर्म ग्रहण किया। इस प्रकार मध्यम पावा नगरी के महासेन वन की यह पवित्र भूमि और वैशाख शुक्ला एकादशी का यह शुभ दिन धन्य हो गया।

भगवान महावीर : केवली चर्या

(१५१)

Bhagavan Mahavir : Kewali Charya















ध्यस

कुम्भ

पद्म सरोवर

्र समुद्र

विमान-भवन



निर्धूम

अग्नि

^{9.} जैन परम्परा में तीर्थंकर के वाद गणधर का पद सर्वोत्कृष्ट पद माना गया है। लोकोत्तर ज्ञान-दर्शन-चारित्र आदि गुणों के "गण" (समूह) को धारण करने के कारण, तथा तीर्थंकर देव के प्रथम प्रवचन को सर्वप्रथम ग्रहण कर उसे सूत्र रूप में गूँथने वाले विशिष्ट ज्ञानी गणधर लिब्धयुक्त महायुक्ष को "गणधर" कहा जाता है। "गणधर" तीर्थंकरों के प्रधान शिष्य और गण के नायक होते हैं।

तीर्थंकर काल की उपलब्धियाँ

भगवान महावीर का साढ़े बारह वर्षीय साधनाकाल उनके अपने जीवन के लिए वीतराम अरिहंत पद की उपलब्धि का आधार बना, वहाँ केवलज्ञान प्राप्त कर तीर्थंकर बनने के बाद का ३० वर्ष का समय विश्व-कल्याण के लिए समर्पित रहा। इस समय में भगवान महावीर ने युगों से चली आती अनेक रूढ़ धारणाओं को तोड़ा और मानवता के लिए अभिशाप रूप अनेक परम्पराओं में परिवर्तन भी किया। उनके तीर्थंकर काल की लोक-कल्याणकारी महानतम उपलब्धियों को मुख्य रूप में हम इस रूप में देख सकते हैं—

- 9. धर्म एवं परलोक कल्याण के नाम पर होने वाले यज्ञों में पशु हिंसा, मानव बलि तथा अज्ञानमूलक क्रियाकांडों का विरोध कर उनको अहिंसा धर्म की ओर अभिमुख किया।
- २. स्त्री, शूद्र आदि का शास्त्र पढ़ने व धर्म करने के अधिकारों से वंचित थे, उन्हें धर्म दीक्षा दी। सबको शास्त्र पढ़ने एवं धर्म साधना करने का समान अधिकार दिया और अध्यात्म एवं समाज के धरातल पर जातिवादी मूल्यांकन की भावना को निर्मूल किया।
- जाति, धन, सत्ता एवं बाह्य वैभव के आधार पर बँटे मानवीय मूल्यों को, सत्कर्म की श्रेष्ठता के आधार पर स्थापित किया।
- ४. गिने-चुने विद्वानों की मान्य संस्कृत भाषा के स्थान पर लोक भाषा और लोक संस्कृति को महत्त्व देकर लोक भाषा में, रुचिकर लोक शैली में प्रवचन करके सभी शास्त्रों को लोक भाषा अर्द्ध-मागधी में निरूपित किया।
- ५. भगवा महावीर ने सम्पूर्ण त्याग मार्ग पर बढ़ने वाले श्रमण-श्रमणी वर्ग के लिए संयम-जप-तप-ध्यान मार्ग के साथ ही लोक-कल्याण के लिए सतत प्रयत्न करते रहने का भी विधान किया। उनके श्रमण वर्ग में इन्द्रभूति गीतम आदि ब्राह्मण वर्ग से, शालिभद्र, धन्ना मुनि जैसे तपस्वी उच्च श्रेष्ठी वैश्य कुल से, मेघकुमार, नन्दिषेण आदि राजकुमार क्षत्रिय कुल से, तो मैतार्य, अर्जुनमाली, हरिकेशबल आदि शूद्र-चांडाल कुल से आकर दीक्षित हुए। इसी प्रकार चन्दनबाला आदि राजकुमारियाँ, मृगावती, काली आदि रानियाँ, सुभद्रा, रेवती आदि श्रेष्ठी कुलोत्पन्न नारियाँ भी दीक्षित हुई।
- इ. उनके श्रायक वर्ग में उदायी, श्रेणिक, अजातशत्रु आदि क्षत्रिय राजा थे, आनन्द जैसे बड़े कृषि कार्य करने वाले (पटेल) सद्दालपुत्र जैसे कुंभकार और सुलस जैसे (कीलशौकरिक कसाई पुत्र) भी सम्मिलित थे।
- ७. भगवान महावीर का धर्म संघ पूर्णतः त्याग, समता, ज्ञान और संयम की श्रेष्ठता के आधार पर स्थित था।
- ८. भगवान महावीर ने आचार धर्म के रूप में अहिंसा, समता और विचार शुद्धि के लिए अनेकान्त-विचार शैली का अनूठा दर्शन दिया।
- ९. भगवान महावीर के लाखों अनुयायी भक्त और करोड़ों प्रशंसक थे, वहाँ गौशालक जैसे विरोधी और जमालि जैसे विद्रोही भी पैदा हुए। गौशालक ५-६ वर्ष तक भगवान महावीर के साथ शिष्य रूप में रहा, किन्तु अन्त में वह महत्त्वाकांक्षा और लोक पूजा का शिकार होकर उनका विरोधी बन गया। स्वयं को सर्वज्ञ तथा



सिंह

गज



वृषभ



लक्ष्मी

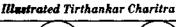


पुष्पमाला

चन्द्र

सर्व

ـَــا





















चन्द्रप्रभ









वासुपूज्य

तीर्थंकर कहने लगा। उसने एक बार क्रोध आवेश में आकर भगवान महावीर को भस्म करने का दुस्साहस भी किया, किन्तु तीर्थंकर की महान् अतिशायिनी शक्ति के समक्ष वह परास्त ही रहा। किन्तु क्षमावीर महावीर ने फिर भी गौशालक को आत्म-शुद्धि करने की प्रेरणा दी।

परिनिर्वाण

भगवान महावीर ने जीवन के अंतिम ७२वें वर्ष में पावापुरी (आपापापुरी) के राजा हस्तिपाल की प्रार्थना स्वीकार कर वहाँ चातुर्मास किया, वही उनके जीवन का अन्तिम चातुर्मास था। चातुर्मास काल के साढ़े तीन मास लगभग बीत जाने पर भगवान महावीर ने देखा कि अब देह त्यागकर निर्वाण का समय निकट आ गया है। गणधर गौतम का महावीर के प्रति अत्यधिक अनुराग था। निर्वाण के समय पर गौतम अत्यधिक रागग्रस्त न हों, इस कारण भगवान महावीर ने कार्तिक अमावस्या के दिन उन्हें अपने से कुछ दूर सोम शर्मा नामक ब्राह्मण को प्रतिबोध देने के लिए भेज दिया।

कार्तिक अमावस्या के दिन⁹ भगवान ने छड़ भक्त—दो दिन का, उपवास किया। समवसरण में विराजकर 9६ प्रहर तक जनता को अपना अन्तिम उपदेश दिया। जो उत्तराध्ययन सूत्र, विपाक सूत्र आदि के रूप में प्रसिद्ध है।

कार्तिक अमावस्या की मध्य-रात्रि के पूर्व ही भगवान महावीर ने समस्त कर्मी का क्षय कर देह त्यागकर निर्वाण प्राप्त किया। कुछ क्षणों के लिए समूचे संसार में अंधकार छा गया।

देवाताओं ने मणिरत्नों का प्रकाश किया। मनुष्यों ने दीपक जलाकर अंधकार दूर कर भगवान महावीर के अंतिम दर्शन किये। उसी निर्वाण दिवस की स्मृति में दीपमालिका पर्व भगवान महावीर की निर्वाण ज्योति के रूप में "ज्योतिपर्व" की तरह मनाया जाता है।

भगवान महावीर के निर्वाण के समाचार सुनते ही मोहग्रस्त गणधर गौतम भाव-विह्नल हो गये। किन्तु फिर शीघ्र ही वे वीतराग चिन्तन में आरूढ़ हो गए। आत्मीन्नित की श्रेणियाँ पार कर उन्हें प्रातःकाल केवलज्ञान उत्पन्न हुआ।

देवताओं और मनुष्यों ने एक साथ मिलकर भगवान महावीर का निर्वाण उत्सव और गणधर गौतम का कैवल्य महोत्सव मनाया।

भगवान महावीर के निर्वाण के पश्चात् उनके विशाल धर्म संघ का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व चतुर्थ गणधर आर्य सुधर्मास्वामी के कंधों पर आ गया।

आर्य सुधर्मास्वामी के निर्वाण के पश्चात् उनके शिष्य आर्य जम्बूस्वामी संघ के नायक आचार्य बने। वि. पू. ४०६ में आर्य जम्बूस्वामी का निर्वाण हुआ। आर्य जम्बूस्वामी के निर्वाण के साथ ही भरत क्षेत्र में इस अवसर्पिणी काल में केवलज्ञान परम्परा लुप्त हो गई।

ईस्वी पूर्व ५२७ (नवम्बर), विक्रम पूर्व ४७० वर्ष, शक पूर्व ५०६।

भगवान महावीर : केवली चर्या

(१६१)

Bhagavan Mahavir : Kewaii Churya









यभ सरोवर







विमान-भवन



स्त्न राशि



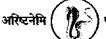
















KEWALI CHARYA

The Light of Omniscience

सिंह

गज

दुषभ

लक्ष्मी

पुष्पमाला

चन्द्र

सूर्य

Observing the details of Bhagavan Mahavir's twelve year period of spiritual practices it becomes evident that his practices combined four qualities—1. Deep and undisturbed meditation, 2. Rigorous penance, 3. Extreme tolerance of pain, and 4. Ultimate equanimity.

It was the tenth day of the bright half of the month of Vaishakh. Twelve years five months and fifteen days had passed since the beginning of Mahavir's spiritual practices. Prabhu Mahavir sat in meditation under a Saal tree in a garden on the bank of Rijubaluka river. Sitting on both feet with knees touching his chest, he was feeling calm even in the scorching summer sun. Focusing all his physical, mental and spiritual energies he was engressed in deep and pure meditation. Gradually the sun was setting in the west and within the soul of Bhagavan Mahavir the sun of omniscience was rising. As soon as the dark clouds of four deeply binding Karmas scattered, the all enlightening sun of omniscience dawned. The physical world was being enveloped by the darkness of night but the spiritual world was being filled with the light of infinite rays of knowledge. The endeavour had reached the summit of success and attained the goal. Mahavir had become Bhagavan (God), Jina (Victor), Sarvajna (all knowing), and Sarvadarshi (all perceiving). As soon as he became omniscient a soothing light spread in the three worlds for a few seconds. The living world was filled with a strange feeling of hitherto unknown bliss. (M-27/1)

The First Discourse

After a twelve and a half year long period of extreme spiritual practices Shraman Vardhaman acquired the ultimate perception (Kewal Darshan), and ultimate knowledge (Kewal Jnan or omniscience). To greet and eulogize the first ray of the divine sun of Mahavir's infinite knowledge, innumerable gods and goddesses from heavens landed on the earth. Doing Vandana of Prabhu Mahavir they celebrated the ultimate attainment (Kaivalya).

Traditionally a Tirthankar preaches the religion of equanimity (Ahimsa) immediately after his gaining omniscience. To take advantage of the first divine discourse of Mahavir the gods created the divine pavilion (Samavasaran) on the pious banks of Rijubaluka river. Numerous gods were engrossed in listening the discourse. (M-27/2)

The gods may admire and eulogize truth, discipline, and virtues but they cannot do spiritual practices by taking vows. Only man is capable of entering the discipline of spiritual practices. As such, it is said that in absence of human

Illustrated Tirthankar Charitra

(१६२)





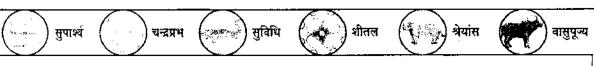












being the first discourse of Bhagavan Mahavir was a failure in context of spiritual gains as none of those present took any vow.

From the bank of Rijubaluka river Mahavir came to Madhyam Pava. A divine pavilion was created in the Mahasen jungle.

During that month of Vaishakh Som Sharma had organized a great Yajna. Eleven famous and great scholars with their 4400 disciples had come to participate in this Yajna. Thousands of people from far and near were arriving to behold the pious flames of the Yajna. Thus, Madhyam Pava had become a place of pilgrimage.

On hearing of the sudden arrival of Bhagavan Mahavir, Pandit Som Sharma became worried and disturbed due to the anti Yajna attitude of the Shraman culture. He went to the chief guide of the Yajna, Mahapandit Indrabhuti. They all confabulated but were short of ideas. Indrabhuti finally said, "Shraman Vardhaman is certainly a person to reckon with. He has the power of spiritual practice and fire of penance but still in knowledge he will prove to be no match for us. With our unmatched power of knowledge we should be able to defeat him now and subjugate a rising adversary in time. We need not worry. It is probable that this pious day may turn out to be the day of our ultimate victory."

This hope filled assurance from Mahapandit Indrabhuti made all the other scholars happy. Som Sharma started dreaming of the victory of the Brahman Yajna organization. Indrabhuti with his 500 disciples proceeded to confront Mahavir.

Indrabhuti and the Self

Indrabhuti's mind got a shock the moment he put his first step inside the divine pavilion. His mind got agitated. From the distance he saw the astonishing glow on the face of Shraman Mahavir. When the powerful sun rays fall on the Himalayan ice caps the ice starts melting. Similarly Indrabhuti's ego started melting. He felt as if streams of doubt and uncertainty had started emerging and flowing.

"Indrabhuti Gautam! You have arrived?"

The deep resonant voice of Prabhu Mahavir fell on Indrabhuti's ears the moment he entered the third gate of the assembly. "Mahavir recognizes me!" Indrabhuti was astonished; he thought, "Of course, he must have heard of me, the world famous scholar." (M-28/1)

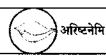
"Indrabhuti Gautam, although you are a great scholar of Vedas, you are still doubtful of the existence of soul." When these words in the imposing voice of Mahavir echoed in the ears of Indrabhuti he was stunned.

भगवान महावीर : केवली चर्या (१६३) Bhagavan Mahavir : Kewali Charya













महावीर







कुम्भ





















_{श्चि}न



Prabhu sweetly uttered in friendly tone, "Indrabhuti Gautam, your doubt about the soul is based on your knowledge of the Vedas. But the same Vedas contain undeniable proofs of independent existence of the soul. Have you ever thought what is a soul? Who is it? and who is it that has this doubt about soul? Knowledge and the awareness of knowledge are same—not different. Soul it is, that is filled with knowledge (it is exuberence of knowledge), and this knowledge is the cognizing factor of soul. Soul is an entity that is formless and beyond the sensory realm, it can be perceived not through the sense organs but through direct intuitive experience"

Listening to the Vedic aphorisms and irrefutable logic of Mahavir about the existence of soul, Indrabhuti's doubts were removed. His ego melted. With the rising of humility the divine ray of truth became visible. The darkness within Gautam was dispelled. With overflowing respect and curiosity Gautam fell at the feet of Prabhu Mahavir.

"Prabhu, I came with a desire to be victorious, but now I am only a seeker of knowledge. Please bestow on me the infinite knowledge of truth. I wish to become a disciple and sit at your divine feet." (M-28/2)

"You are welcome, O beloved of gods!" Mahavir uttered equanimously. Indrabhuti Gautam became the first disciple of Bhagavan Mahavir. His five hundred disciples were also initiated by Mahavir into the order. The sky reverberated with sounds of hailing.

The news of initiation of Gautam brought shadows of gloom over the Yajna site where the scholars were waiting. But the second great scholar, Agnibhuti, summoned courage and said, "I will go and bring back my brother by defeating Mahavir."

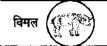
Agnibhuti also arrived at the religious assembly with his five hundred disciples. As soon as he entered the pavilion and approached Mahavir, Mahavir said, "Agnibhuti, your senior has his cobwebs of doubt cleared, he has now become unambiguous. Now you should also remove your quandry about the fruits of Karma. As the existence of soul is self evident, it is also established that it is soul that is the doer of the Karma (action) and the sufferer of its consequences (fruit)."

The moment his doubt was removed the shackles of dogmas shattered. With the vanishing of ego a stream of faith started flowing within Agnibhuti. He also submitted before the omniscience of Shraman Mahavir. Agnibhuti became a disciple of Shraman Bhagavan Mahavir alongwith his 500 disciples.

The youngest brother of Indrabhuti, Vayubhuti, also decided to try his luck with his 500 disciples. As a thirsty person stops at a source of clean

Illustrated Tirthankar Charitra

सचित्र तीर्थंकर चरित्र (१६४)













सिंह

वृषभ

तक्ष्मी

पुष्पमाला

चन्द्र

सूर्य













वासुपूज्य

ध्वजा

कुम्भ

सरोवर

समुद्र

विमान-

भवन

रत्न राशि

निर्धम अग्नि

water, Vayubhuti stayed with Mahavir and alongwith his 500 disciples joined Mahavir's order.

Great scholars like Vyakta and Arya Sudharma also came and removing their doubts became Mahavir's disciples along with their 500 followers each. Similarly, Mauryaputra and Akampit with their 350 disciples each; Achalbhrata, Metarya, and Prabhas each with 300 disciples got initiated into Mahavir's order.

Thus, eleven great scholars were inducted with their 4400 disciples into Mahavir's order during his first disceurse.

Establishment of the Ford

The eleventh day of the bright half of the month of Vaishakh is considered to be the date of historical glory of the Jain tradition. On the tenth of the same month Bhagavan Mahavir attained omniscience, so the day is important as the occasion of his personal triumph. But from the view point of establishing the religious organization (Tirth/Ford) the eleventh is the most important day. It was on this day that the eleven great Brahman scholars rid themselves of their ego of superiority by birth and the misconceptions, and were initiated into the Shraman tradition based on equanimity and Ahimsa. They became the chief disciples or Ganadhars of Mahavir. In Jain tradition Ganadhar is the most exalted spiritual person after the Tirthankar. Thousands of other men and women were also converted, many of whom became ascetics and others took the vows for laity.

Princess Chandanbala, who had fulfilled the complex resolve of Bhagavan Máhavir, was also waiting for this auspicious day. As soon as she got the news that Mahavir had attained omniscience, she was over-joyed. She reached the divine pavilion by fastest available means. She was also accompanied by many worthy women. After listening to the discourse she became the first woman ascetic disciple of Mahavir.

Shankh and Shatak with many other rich and prominent citizens joined Mahavir's order as lay followers. Sulasa and many other women also joined the religious family. Thus, the land of Mahasen jungle in Madhyam Pava and the eleventh day of the bright half of the month of Vaishakh became the blessed land and the blessed day respectively.

The Achievements

The twelve year period of spiritual practices of Bhagavan Mahavir was the basis of his personal achievement of omniscience and the status of Arihant/Tirthankar. After his enlightenment the remaining thirty years of his life were devoted to the welfare of the living world. During this period he established and shattered many long revolutionised human thought

भगवान महाबीर : केवली चर्या

(१६५)

Bhagavan Mahavir : Kewali Charya





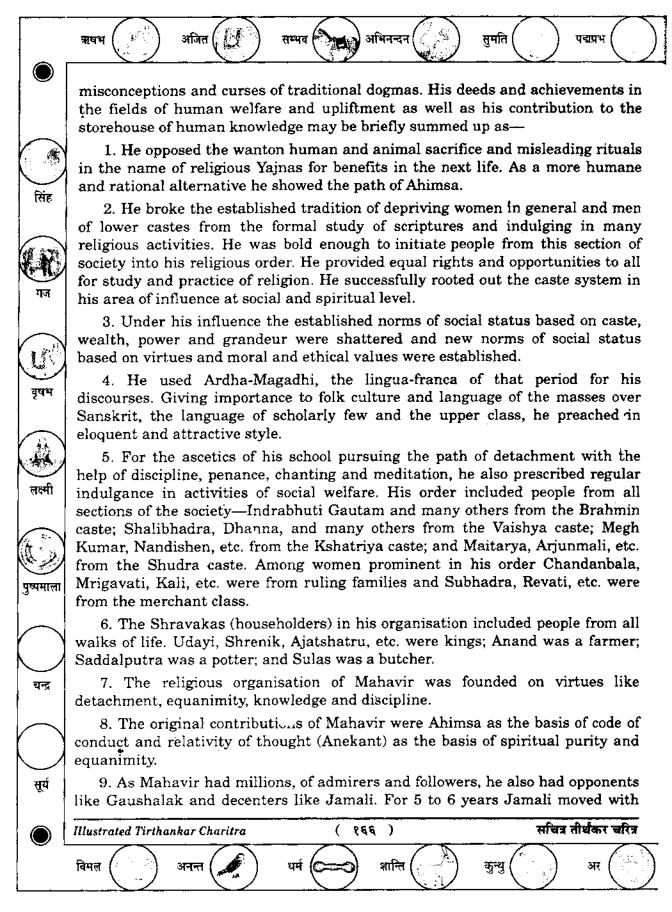
महावीर













Mahavir as his disciple. But later, driven by ambition and lust for popularity he became Mahavir's opponent. He projected himself as omniscient and Tirthankar. The feeling of envy burning within him made him attack Mahavir and try to burn him. But the great pacifying powers of a true Tirthankar defeated him. Compasionate Mahavir still forgave him and advised to work for purity of the soul.

ध्यजा

पद्म सरोवर

समुद्र

विमान-भवन

The Liberation

At the request of king Hastipal Mahavir spent his last monsoon-stay at Pavapuri (Apapapuri) at the age of 72 years. When about three and a half months passed he became aware that the end of his life is approaching. Ganadhar Gautam was overly attached with Mahavir. He may not be completely swept away by the sorrow of separation—thinking thus Mahavir directed him to go and enlighten Brahman Som Sharma.

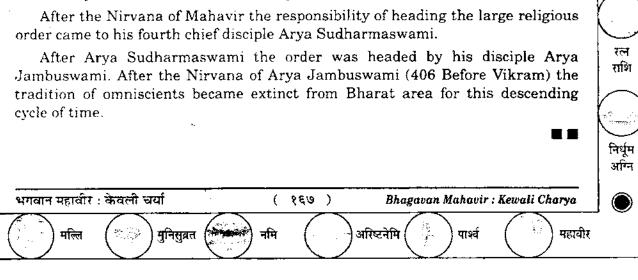
On the fifteenth day of the dark half of the month of Kartik Mahavir was observing a two days fast. He sat in the Samavasaran and gave his last discourse which became famous as Uttaradhyayan Sutra, Vipak Sutra, etc.

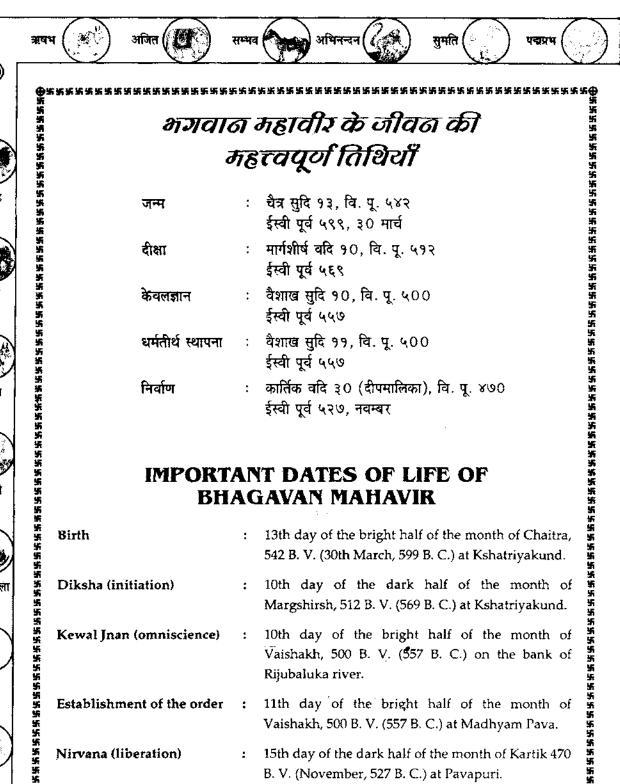
Just before the hour of midnight he shed all his remaining Karmas and attained Nirvana. For a few moments the whole world was enveloped in darkness.

Gods dispelled the darkness with the help of gems and humans lit earthen lamps to have the last glimpse of their savior. In memory of that day people celebrate the festival of lights or Dipawali.

Hearing about the Nirvana of Bhagavan Mahavir, Ganadhar Gautam became sad and melancholic. But soon he came out of it and progressed on the path of purity with help of extreme detachment. Jumping the levels of spiritual purity he acquired omniscience the next morning.

Gods and human beings celebrated jointly the events of attainment of Nirvana by Mahavir and omniscience by Ganadhar Gautam.





भगवान महावीर के जीवन की महत्त्वपूर्ण तिथियाँ

चैत्र सुदि १३, वि. पू. ५४२ जन्म ईस्वी पूर्व ५९९, ३० मार्च

ः मार्गशीर्ष वदि १०, वि. पू. ५१२ दीक्षा

ईस्वी पूर्व ५६९

: वैशाख सुदि १०, वि. पू. ५०० केवलज्ञान

ईस्वी पूर्व ५५७

: वैशाख सुदि **99, वि. प्. ५**00 धर्मतीर्थ स्थापना

ईस्वी पूर्व ५५७

: कार्तिक वदि ३० (दीपमालिका), वि. प्. ४७० निर्वाण

ईस्वी पूर्व ५२७, नवम्बर

IMPORTANT DATES OF LIFE OF BHAGAVAN MAHAVIR

13th day of the bright half of the month of Chaitra,

542 B. V. (30th March, 599 B. C.) at Kshatriyakund.

10th day of the dark half of the month of Margshirsh, 512 B. V. (569 B. C.) at Kshatriyakund.

10th day of the bright half of the month of Vaishakh, 500 B. V. (557 B. C.) on the bank of

Rijubaluka river.

Establishment of the order 11th day of the bright half of the month of

Vaishakh, 500 B. V. (557 B. C.) at Madhyam Pava.

15th day of the dark half of the month of Kartik 470

B. V. (November, 527 B. C.) at Pavapuri.

Illustrated Tirthankar Charitra (१६८ -) सचित्र तीर्थंकर चरित्र



चन्द्र

सूर्य

Birth

Diksha (initiation)

Nirvana (liberation)

Kewal Inan (omniscience)



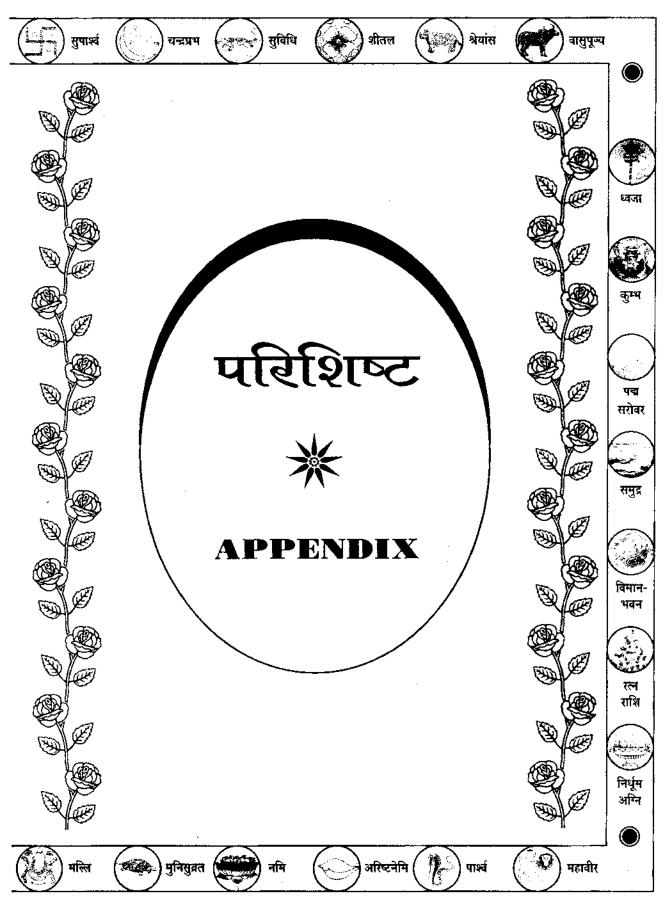


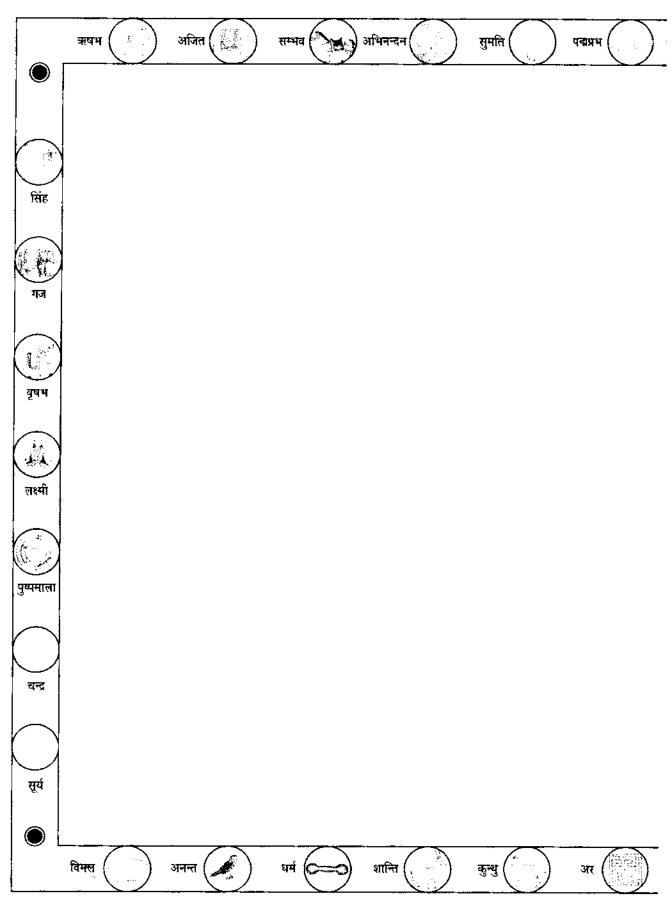


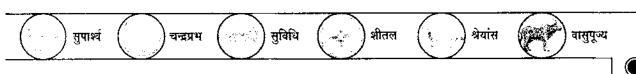














तीर्थंक२-जीवन : महत्त्वपूर्ण तथ्य

- जम्बूद्वीप के दक्षिण भाग में भरत क्षेत्र, उत्तर भाग में ऐरावत क्षेत्र और मध्य भाग में महाविदेह क्षेत्र हैं।
 भरत एवं ऐरावत क्षेत्र में प्रत्येक उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी काल में २४ तीर्यंकर होते हैं।
- महाविदेह क्षेत्र में हमेशा तीर्धंकरों की विद्यमानता रहती है।
- जिस भव में तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध हुआ है उससे तीसरे भव में तीर्थंकर प्रकृति के सत्वयुक्त जीवों के
 मोक्ष जाने का नियम है।
- होनहार तीर्थंकर के गर्भ-कल्याणक के छह माह पूर्व ही विशेष प्रभाव द्रष्टव्य होने लगते हैं। भरत तथा ऐरावत क्षेत्र में तीर्थंकर पंच-कल्याणक वाले होते हैं।
- इस अवसर्पिणी काल में सभी तीर्थंकर स्वर्ग से च्यवन कर भरत क्षेत्र में आये हैं। स्वर्ग से च्यवन करने से छह माह पूर्व सभी सुर आदि देव-देवियों को उनके प्रति विशेष आदर भाव जागता है। वे उन्हें प्रणाम करते हैं।
- नरक से आने वाले तीर्थंकर जीवों की पर्याय के परित्याग से छह माह शेष रहने पर नरक में देव जाकर असुरादि कृत उपसर्गों का निवारण करते हैं।
- गर्भावस्था में ही तीर्थंकर का जीव तीन ज्ञान-मितज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान के साथ आता है। प्रसंग आने पर इनका उपयोग भी करता है।
- तीर्थंकर माता का दूध नहीं पीते। इन्द्र आदर सिंहत भगवान को स्नान कराने, वस्त्राभूषण पहनाने, दूध पिलाने, शरीर के संस्कार करने और खिलाने के कार्य करने हेतु अनेक देवियों को धाय बनाकर नियुक्त करते हैं।
- तीर्थंकरों के जन्म के समय ५६ दिक्कुमारी आदि देवियाँ आकर जन्म-महोत्सव करती हैं। ६४ इन्द्र आदि देव अपने जीत (परम्परागत) व्यवहार के कारण तीर्थंकरों को मेरु पर्वत के पाण्डुकवन में ले जाकर उमंग और आनन्द के साथ जन्माभिषेक करते हैं।
- तीर्थंकरों में जन्मजात चार विशेषतायें (अतिशय) होती हैं-
 - लोकोत्तर अद्भुत स्वरूप वाले शरीर में पसीना, मैल या रोग नहीं होता।
 - २. उनका श्वासोच्छ्वास सुगन्धमय होता है।
 - अनन्त वात्सल्यमय होने के कारण उनके रुधिर के रक्त कण (रेड क्लंड कार्पसल्स) श्वेत कण में परिवर्तित हो जाने के कारण रक्त (रुधिर) व माँस का रंग दूध जैसा सफेद हो जाता है।
 - ४. उनका आहार, नीहार (मल-विसर्जन क्रिया) सामान्य मानव के चर्मचक्षुओं द्वारा दृष्टिगोधर नहीं होता।
- यौवन में प्रवेश करने पर यदि भोगावली कर्म का उदय होता है तो उत्तम कुल की श्रेष्ठ नारी के साय विवाह होता है। मगर वे गृहस्थ जीवन में भी भोगों के प्रति अनासक्त रहते हैं।
- दीक्षा से पूर्व एक वर्ष तक प्रतिदिन एक करोड़ आठ लाख स्वर्ण-मुद्राओं का दान देते हैं। इस प्रकार वे वर्ष-भर में कुल तीन अरब अठासी करोड़ स्वर्ण-मुद्राओं का दान करते हैं।

ध्वजा



कुष्भ

पदा सरोवर



विमान-भवन



रत्न राशि



निर्धूम अग्नि

परिशिष्ट १

(१७१)

Appendix 1







नमि

















पद्मप्रभ 🤃



सिंह



गज्



वृषभ



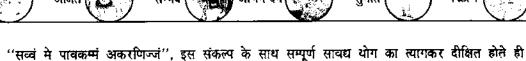
लक्ष्मी



पुष्पमाला



सूर्य



- "सव्यं मे पावकम्मं अकरिणज्जं", इस संकल्प के साथ सम्पूर्ण सावध थांग का त्यागकर देक्षित होते हैं मनःपर्यव ज्ञान-मन के स्थूल और सूक्ष्म भावों को प्रत्यक्ष जान सकने की क्षमता प्राप्त हो जाती है।
- दीक्षा लेते समय तीर्थंकर "नमो सिद्धाणं" कृहकर केवल सिद्धों को वन्दना करते हैं!
- दीक्षित होते समय तीर्यंकर पंचमुष्टि केश लुंचन करते हैं और केश इन्द्र को प्रदान करते हैं। इन्द्र पूज्यभाव के साथ भगवान के केशों को रत्नमय पिटारे में रखते हैं और आदरपूर्वक क्षीर सागर में उनका क्षेपण करते हैं।
- सभी तीर्थंकर दीक्षा लेने के बाद केवलज्ञान की प्राप्ति तक मीन रहते हैं। तीर्थंकर केवलज्ञान प्राप्त करने के बाद ही प्रवचन करते हैं।
- साधनाकाल में तीर्थंकर एकाकी निसंगभाव से अप्रतिबद्धता के साथ विचरण करते हैं।
- छद्मावस्था में न तो वे किसी को उपदेश देते हैं और न ही शिष्य बनाते हैं।
- साधना द्वारा जब चार घनघाति कर्मों का क्षय कर सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, सर्वशक्तिमान एवं धर्मीपदेशक गुणों से सम्पन्न होते हैं तब अरिहन्त तीर्थंकर पद की प्राप्ति होती है।
- वे चौंतीस अतिशय एवं पैंतीस वचनातिशय से सम्पन्न होते हैं।
- उनमें अठारह दोषों का पूर्णतः अभाव हो जाता हैं।
 अठारह दोष निम्न प्रकार हैं-

अन्तराया दान-लाभ-वीर्य-भोगोपभोगाः । हास्यो रत्यरती भीति र्जुगुसा शोक एव च॥ कामो मिथ्यात्वमज्ञानं निद्रा चाविरति स्तथा । रागो ब्रेषश्च नो दोषा स्तेषा मष्टादशाप्यमी ॥

१-५. पाँच अन्तराय (दानान्तराय, लाभान्तराय, भोगान्तराय, उपभोगान्तराय, और वीर्यान्तराय), ६. हास्य, ७. रति, ८. अरति, ९. भीति (सब प्रकार के भय), १०. जुगुप्सा, ११. शोक, १२. काम, १३. मिथ्यात्व, १४. अज्ञान, १५. निद्रा, १६. अविरति, १७. राग, १८. द्वेष।

दूसरे प्रकार से ये १८ दोष माने जाते हैं-

- 9. मिथ्यात्व, २. अज्ञान, ३. मद, ४. क्रोध, ५. माया, ६. लोभ, ७. रति, ८. अरति, ९. निद्रा, ९०. शोक, ९९ अलीक, ९२. चौर्य, ९३. मत्सरता, १४, भय, ९५. हिंसा, १६. प्रेम, १७. क्रीड़ा, १८. हास्य।
- प्रथम तीर्थंकर ऋषभ पूर्व-भव में चतुर्दशपूर्वी थे। शेष तेईस तीर्थंकर पूर्व-भव में ग्यारह अंग के ज्ञाता थे।
- तीर्थंकर पद-प्राप्ति के साथ ही इन्द्र समवसरण की रचना करते हैं। समवसरण में भगवान अर्द्ध-मागधी भाषा में जन-प्रतिबोधन की भावना से देशना देते हैं। इस समवसरण में मनुष्य, देव, तिर्वञ्च सभी उपस्थित होते हैं। भगवान की इस प्रथम देशना से कोई न कोई जीव प्रतिबोधित होकर त्याग-प्रत्याख्यान अवश्य करता है। समवसरण में भगवान पद्मासन में विराजते हैं।
- तीर्थंकर मुनिसुव्रत और अरिष्टनेमि, ये दोनों हरिवंश में उत्पन्न हुए और शेष सभी इक्ष्वाकुवंश में उत्पन्न हुए।
- सबसे अधिक उम्र में आदिनाथ भगवान को ८४ लाख वर्ष पूर्व की अवस्था में वैराग्य हुआ और सबसे कम उम्र में भगवान पार्श्वनाथ एवं महावीर को ३० वर्ष को अवस्था में वैराग्य हुआ।
- सबसे अधिक ऊँचाई भगवान ऋषभ की पाँच सी धनुष की थी। सबसे कम भगवान महावीर की सात हाय की ऊँचाई थी।

Illustrated Tirthankar Charitra

(१७२)























शीतल





ासुपूज्य

- वासुपूज्य, मल्ली, निम, पार्श्व और वर्द्धमान ने कुमारपद एवं प्रथम वय में संयमरूप निधि का वरण किया।
 शेष उत्रीस अर्हतों ने राजपद पर अभिषिक्त हो तीसरी वय में दीक्षा स्वीकार की। (जिस युग में सामान्यतः जितना आयुष्य होता है उसके तीन समान भाग तीन वय के रूप में निरूपित हैं।)
- ऋषभ से श्रेयांस प्रभु तक सभी तीर्थंकरों ने केवल विवाह ही नहीं किया, राज्य संचालन भी किया। वासुपूज्य ने कुमारावस्था में संयम ग्रहण कर इस परम्परा को बदला। १९वें और २२वें तीर्थंकर अविवाहित रहे।
- भगवान ऋषभ ने विनीता नगरी से, अरिष्टनेमि ने द्वारका से और शेष तीर्थंकरों ने अपनी-अपनी जन्म-भूमि से निष्क्रमण किया था।
- भगवान महावीर अकेले प्रव्रजित हुए थे। पार्श्वनाथ और मल्लीनाथ तीन सी-तीन सी पुरुषों के साथ और भगवान वासुपूज्य छह सी पुरुषों के साथ प्रव्रजित हुए थे। भगवान ऋषभ चार हजार व्यक्तियों के साथ प्रव्रजित हुए थे और शेष तीर्थंकर हजार-हजार व्यक्तियों के साथ प्रव्रजित हुए थे।
- तीर्थंकर श्रेयांस, मल्ली, मुनिसुद्रत, अरिष्टनेमि एवं पार्श्व इन पाँचों ने पूर्वाह्न में एवं शेष उन्नीस ने पिछले अपराह्न में दीक्षा ली थी। सुमित ने भोजन करके दीक्षा ली, मल्ली, पार्श्व ने तीन दिन की तपस्या में, वासुपूज्य ने उपवास के दिन और शेष बीस तीर्थंकरों ने बेले के दिन संयम लिया था।
- तीर्थंकर ऋषभ ने दीक्षा ग्रहण करने के बाद प्रथम भिक्षा एक वर्ष पश्चात् प्राप्त की थी! शेष सभी तीर्थंकरों ने प्रथम भिक्षा दूसरे दिन प्राप्त की थी।
- तीर्थंकर ऋषभ को प्रथम भिक्षा में इक्षुरस मिला। शेष तीर्थकरों का अमृतरस तुल्य परमात्र (क्षीर) प्राप्त हुआ था।
- सभी जिनवरों को जहाँ प्रथम भिक्षा प्राप्त हुई वहाँ शरीर परिमाण सुवर्ण की वृष्टि हुई थी।
- भरत और ऐरावत क्षेत्र में प्रथम और अन्तिम तीर्थंकर को छोड़कर मध्य के बावीस अर्हत् मगवान चातुर्याम (चार महाव्रत रूप) धर्म की प्ररूपणा करते हैं, यधा-१. सब प्रकार की हिंसा से निवृत्ति, २. सब प्रकार के झूट से निवृत्ति, ३. सब प्रकार के अदत्तादान से निवृत्ति, ४. सब प्रकार के बाह्य पदार्थों के आदान से निवृत्ति। प्रथम और अन्तिम तीर्थंकर पंच महाव्रत की प्ररूपणा करते हैं।
- भगवान महावीर का अशोक वृक्ष वत्तीस धनुष ऊँचा, नित्य ऋतु और शाल वृक्ष से अवच्छन्न था। जिनवर ऋषभ का चैत्य वृक्ष उनके शरीर से तीन गुणा ऊँचा था। शेष तीर्थंकरों के चैत्य वृक्ष उनके शरीर से १२ गूने ऊँचे थे।
- दीक्षा लेने के बाद भगवान ऋषभनाथ को एक हजार वर्ष में और मल्लीनाथ जी को डेढ़ प्रहर में केवलज्ञान प्राप्त हुआ।
- ऋषभ का समवसरण बारह योजन के विस्तार का था। आगे के तीर्थंकरों का निम्नाथ भगवान तक दो-दो कोस अर्थात् आधा-आधा योजन कम होता गया। तेईसवें पार्श्वनाथ भगवान का समवसरण डेढ़ योजन का और तीर्थंकर महावीर का समवसरण एक योजन के विस्तार का था। यह प्रमाण भरत ऐरावत क्षेत्र के तीर्थंकरों का अवसर्पिणी काल का है। उत्सर्पिणी काल में इससे विपरीत प्रमाण समझना चाहिए। विदेह क्षेत्र में समस्त तीर्थंकरों का समवसरण समान विस्तार वाला अर्थात् बारह योजन प्रमाण होता है। सभी समवसरण इन्द्र नीलमणि से शोभायमान होते हैं।
- सबसे अधिक गणध्र भगवान सुमितनाथ के एक सौ थे और सबसे कम भगवान पार्श्वनाथ के दस हुए थे।
- योग निरोध होने के बाद तीर्थंकर समवसरण में बोलते नहीं हैं!.

परिशिष्ट १

(१७३)

Appendix 1

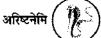














महाबीर



ध्वजा



कुम्भ



पद्म सरोवर



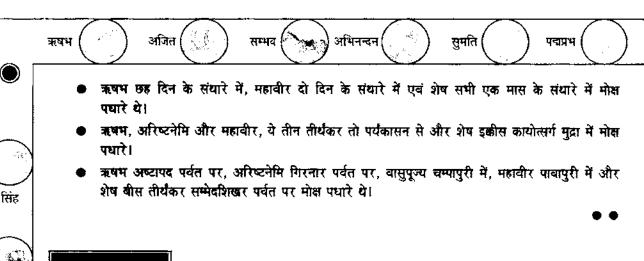
समुद्र



__ विमान-भवन







APPENDIX 1

गज

वृषभ

.

लक्ष्मी

पुष्पमाला

चन्द

स्य

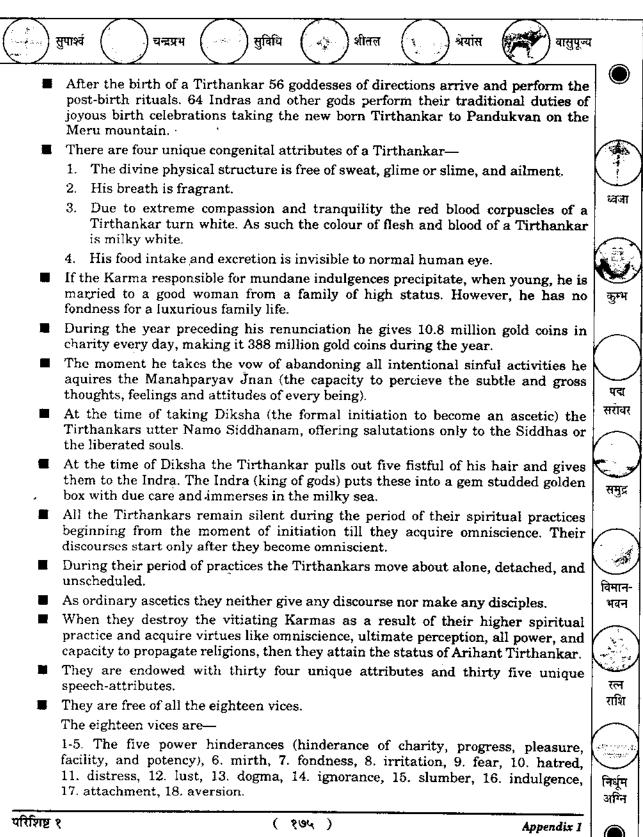
IMPORTANT FACTS ABOUT THE TIRTHANKARS

- The Southern part of the Jambu continent is Bharat area, the northern is the Airavat area and the central part is Mahavideh area. In the Bharat and Airavat areas there are twenty four Tirthankars in each during every ascending and descending cycle of time.
- In the Mahavideh area the Tirthankars are always present.
- The being that earns the Tirthankar-nam-karma gets liberated in the third birth, counted from the birth of gaining this potency and purity.
- The auspicious influence and indications of a future Tirthankar start appearing six months before the conception or descent (Garbh-kalyanak). The Tirthankars in the Bharat and Airavat areas have five auspicious events (Kalyanak) during their life time.
- During this descending cycle all the beings that became Tirthankers descended from the dimensions of gods in the Bharat area. Six months before the moment of descent, all the other gods get infused with special feelings of reverence for these would be Tirthankars and they express the feelings by bowing.
- Six months before the end of their life in hell, the beings that are to become Tirthankars are relieved from the hellish afflictions through the interference of gods.
- Even during pregnancy, the being destined to be a Tirthankar possesses three fold knowledge—Mati (intellect), Shruti (literal), and Avadhi (extrasensory) Jnan. He even uses this knowledge if and when need arises.
- The Tirthankars do not feed on the mother's milk. The king of gods appoints various goddesses as governesses to take care, with due respect, of chores like bathing, dressing, feeding and nursing.

bathing, dressing, feeding and nursing.

Illustrated Tirthankar Charitra (१७४) सचित्र तीर्थंकर चरित्र

विमल अनन्त धर्म आन्ति शान्ति अन्य



मिल्ल







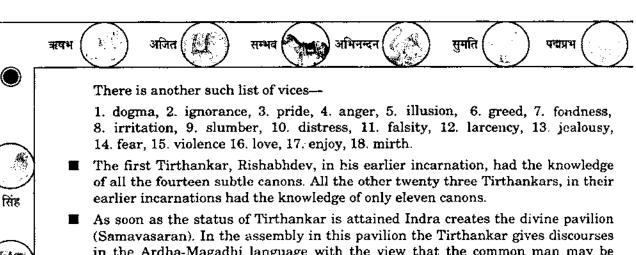


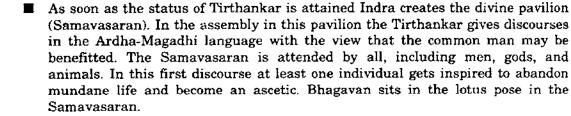












■ Tirthankar Munisuvrat and Arishtanemi were born in the Harivamsha clan and the remaining twenty two in the Ikshvaku clan.

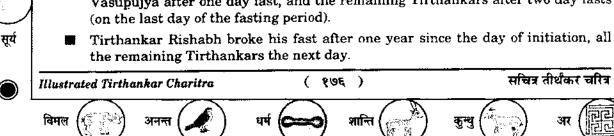
वृषभ

लक्ष्मी

पुष्पमाला

चन्द्र

- At the moment of their renunciation Bhagavan Rishabhdev was the oldest in age (8.4 million Purva). Bhagavan Parshvanath and Mahavir were the youngest in age (30 years).
- The tallest among the Tirthankars was Bhagavan Rishabhdev (five hundred Dhanush) and the smallest was Bhagavan Mahavir (seven Haath/feet).
- Vasupujya, Malli, Nami, Parshva and Vardhaman became ascetics as princes during the first third part of their life. Remaining nineteen Tirthankars became ascetics as kings during the last third part of their life. (The three divisions of age are the equal parts of average age of human beings of a specific era.)
- From Rishabh to Shreyans all Tirthankars not only did marry but ruled also, Vasupujya altered this tradition by becoming an ascetic when he was a young prince. The nineteenth and twenty second Tirthankar remained unmarried.
- Bhagavan Rishabh started the process of renunciation at Vinita town and Arishtanemi at Dwarka. All the remaining Tirthankars did at their respective birth places.
- Bhagavan Mahavir was initiated alone, Parshvanath and Mallinath with three hundred persons each, Vasupujya with six hundred, Rishabh with four thousand and the remaining Tirthankars with one thousand persons each.
- Tirthankar Shreyans, Malli, Munisuvrat, Arishtanemi and Parshva, all five took Diksha during the forenoon and the remaining nineteen during the afternoon. Sumati took Diksha after having meals, Malli and Parshva after a three day fast, Vasupujya after one day fast, and the remaining Tirthankars after two day fasts (on the last day of the fasting period).







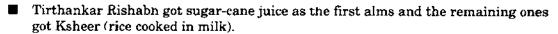












- The places where the Tirthankars got their first alms were blessed with a shower of gold equivalent to the dimensions of their respective bodies.
- All the Tirthankars of Bharat and Airavat areas except the first and the last propagate four dimensional religion or the religion with four great vows as its central theme. The four vows are abandonment of or refraining from-1, all types of violence, 2. all types of falsity, 3. all types of unoffered acquisition, and 4. all types of possessions. The first and the last Tirthankars propagate five dimensional religion by adding the vow of abandonment of all types of lustful activities to the above four.
- The Ashok tree under which Mahavir got initiated was of 32 Dhanush height. The Chaitya tree of Rishabhdev of a height equivalent to three times that of his body. All the remaining Tirthankars were initiated under trees having height equivalent to 12 times the height of their respective bodies.
- Bhagavan Rishabh attained omniscience after a thousand years of his initiation and Mallinath just after four and a half hours.
- The area of the divine pavilion of Rishabh was 12 Yojans. There was a gradual reduction of 2 Kosa (1/2 Yojan) in this area for succeeding Tirthankars till Naminath (22nd). The area of the divine pavilion of the twenty third Tirthankar, Parshvanath was 1.5 Yojans and that of Mahavir was one Yojan. These dimensions are for the descending cycle, that for the ascending cycle are the same but in reverse order. In the Videh area the dimension is 12 Yojans uniformly. Indranilmani (Sapphire) is essentially used in the decoration of these Samavasarans.
- The maximum number of chief disciples was one hundred for Bhagavan Sumatinath and the minimum for Parshvanath—ten.
- When the Karmic ties are completely broken the Tirthankar stops the speech completely.
- Before the Nirvana (liberation) Rishabhdev had observed a last penance (Santhara) of six days, Mahavir that of two days, and the remaining Tirthankars that of one month.
- Rishabh, Arishtanemi and Mahavir, all these three were sitting in the Paryankasan (a specific yogic posture) and the remaining twenty one were standing in the Kayotsarg Mudra (a yogic posture) at the moment of liberation.
- Rishabhdev was liberated at the Ashtapad mountain, Arishatanemi at Girnar mountain, Vasupujya at Champa town, Mahavir at Pava town and all the rest at Sammetshikhar (Parasnath hills).



ध्वजा





सरोवर



समुद्र



विमान-भवन



रत्न राशि



अग्नि

निर्धम

ररिशिष्ट १

(१७७) Appendix I







मुनिसुव्रत





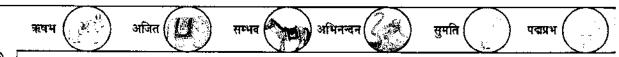








महावीर



परिशिष्ट १



तीर्थंकर होने के मूल आधार : बीश स्थानक



तीर्थंकर वैसे एक जन्म के पुरुषार्थ की प्रक्रिया नहीं है। अनेक जन्मों में सत्पुरुषार्थ से आत्म-शक्ति क्रमशः अनावृत होते-होते तीर्धंकर स्वरूप को प्राप्त करती है। तीर्थंकर होने का पुरुषार्थ कव से प्रारम्भ हुआ? उन भवों की गणना प्रायः मिलती है। लगता है तीर्थंकर बनने के बाद गणधरों, देवों या इन्द्रों के द्वारा यह जिज्ञासा प्रस्तुत की जाती है कि यहाँ तक पहुँचने में कितने जन्म लगे होंगे? ईंसका उत्तर तीर्थंकर देव स्वयं दे देते थे। मुझे इतने जन्म लगे हैं। तभी सभी तीर्थंकरों के पूर्व-भव जैन साहित्य में उल्लिखित हैं।



आचार्यों ने भवों की गिनती पहले पहल सम्यक् दर्शन की प्राप्ति हुई वहाँ से ली है। जैन दर्शन में सम्यक् दर्शन की उपलब्धि को बहुत बड़ी उपलब्धि माना है। इसकी प्राप्ति से मोक्ष जाने की भवितव्यता नियत हो जाती है। कितने जन्म पहले उसकी प्राप्ति हुई? अथवा उसकी प्राप्ति के बाद सर्वज्ञ बनने तक कितने जन्म और करने पड़े? यह जिज्ञासा धार्मिक जगत् में हर किसी के लिए होती होगी। तीर्थंकरों के भवों की गणना हमें प्राप्त है। वैसे तो यह गणना भी व्यावहारिक है। सिर्फ पंचेन्द्रिय भवों की गणना है. अन्य भवों की गणना नहीं है।



तीर्थंकर-नाम-कर्म की प्रकृति का बंध

तीर्यंकर-नाम पुण्य प्रकृति सर्वाधिक शुभ मानी गई है। उसका बंधन कब होता है यही सबसे महत्त्वपूर्ण बात है। इसलिए तीर्थंकर नाम प्रकृति का बंध कब होता है, यह विशेष महत्त्वपूर्ण है।



तीर्थंकर होने का आधार इसी से निर्मित होता है। इस कर्म प्रकृति के बिना कोई भी आत्मा तीर्थंकर बन नहीं सकती। तीर्थंकर-गोत्र-कर्म के साथ अन्य प्रकृतियों का परिपूर्ण बंध हुआ हो, अपने परिश्रम से संसार का किनारा ले लिया

चन्द्र

सूर्य

हो, तब तीर्थंकर होने की भूमि बनती है। तीर्थंकर बनने से एक जन्म पूर्व तीर्थंकर-नाम-कर्म का बंधन हो ही जाता है। तीर्थंकर-नाम-कर्म औदारिक शरीर से ही बँधता है। वैक्रिय शरीर से इस प्रकृति का परिपूर्ण बंधन नहीं होता। तीर्थंकर भी स्वर्ग से आकर अथवा नरक से निकलकर बनते हैं। दोनों स्थानों पर शरीर वैक्रिय है। वैक्रिय शरीर से दीर्घकालीन वह पुरुषार्थ नहीं होता जो औदारिक शरीर से किया जा सकता है। यही कारण है-जितने तीर्थंकर होते हैं वे तीर्थंकर बनने से पहले स्वर्ग-नरक के भव से पूर्व मनुष्य शरीर से इस प्रकृति के बंध योग्य पुरुषार्थ करते हैं। उस समय में उनमें उत्कृष्ट दर्शन-विशृद्धि हो जाती है। वे क्षायक सम्यक्वी बन जाते हैं।



आचार्यों ने यह भी बताया है कि तीर्थंकर् बनने के लिए क्रिया नहीं करनी चाहिए। तीर्थंकर-नाम प्रकृति कर्मजन्य प्रकृति है. उसका बंधन भी बंधन है। पुण्य के लिए भी सत्पुरुषार्थ करना निषिद्ध है। बंधन के लिए अध्यात्मवादी कभी किया नहीं करते। क्रिया निर्जरा के लिए की जाती है। अमुक प्रकार की क्रिया होने से कर्म-क्षय और इस प्रकृति का बंध हो सकता है। ये क्रियायें बीस प्रकार की हैं, उन्हें तीर्थंकर-गोत्र-कर्म बंध के बीस स्थान भी कहा जाता है। ये र्तार्थंकर होने के मूल आधार माने गये हैं। ये बीस स्थान अग्र प्रकार हैं–

Illustrated Tirthankar Charitra

(१७८)































वासुपूज्य

- अरिहंत (तीर्थंकर) देव की भक्ति।
- २. सिद्ध परमात्मा की भक्ति।
- ३. प्रवचन भक्ति।
- ४.: गुरु भक्ति।
- ५. स्थविर भक्ति।
- ६. बहुश्रुत भक्ति।
- ७. तपस्वी भक्ति।
- ८. सतत ज्ञानोपयोग—साकार उपयोग में अधिक से अधिक समय तक अपने को नियोजित कियें रहना।
- ९. दर्शन की विशुद्धि बनाये रखना।
- 90. गुणोत्कीर्तन-गुणीजनों के गुणों का उत्कीर्तन करना, प्रमोद भावना से भावित दूसरों के विकास को देखकर प्रसन्न होना।
- षड्गवश्यक प्रतिक्रमण-विधिपूर्वक भाविक्रया युक्त समयबद्ध करना!

वीस स्थानों का समावेश हो गया है। दोनों जगह भावक्रिया को प्रधानता दी गई है।

- १२ निरितचार व्रतासधना महाव्रत, अणुव्रत जो भी स्वीकृत नियमोपनियम है, उनका वर्धमान परिणामों से पालन करना।
- 9३. बिरिक्ति—राग-विरिक्ति, भोग-विरिक्ति, भोह-बिरिक्ति, अहं-विरिक्ति, लोभ-विरिक्ति का निरंतर अभ्यास करना। अनासक्त भाव का अभ्यास करना।
- १४. सामध्यं का उपयोग-तपो मार्ग में पुरुषार्थ!
- ९५. चतुर्विध संघ (साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका) को विशेष समाधि प्रदान करना।
- १६. त्यागीजनों की सेवा करना।
- 9७. नित नये ज्ञान का अभ्यास करना-प्रतिदिन ज्ञान मार्ग की आराधना करना।
- १८. वीतराग वाणी पर श्रद्धा-आस्था रखना।
- **१९. सुपात्र दान देना।**
- २०. जिनशासन तीर्थंकर प्रवचन प्रभावना। (ज्ञातासूत्र ८)

सरोवर

पदा

ध्वजा

समुद्र

9

विमान-भवन



रत्न सशि



निर्धूम अग्नि

परिशिष्ट २

(969)

ज्ञातासूत्र के आठवें अध्ययन में और आवश्यक निर्युक्ति में उपर्युक्त बीस स्थान-प्रकार बतलाये हैं। इन बीस स्थानों

में से एक-दो स्थान की भी विशेष आराधना करने से कर्म निर्जरण के साथ तीर्थंकर-नाम-कर्म की प्रकृति का बंध हो सकता है। महापुराण में एवं तत्त्वार्थ सुत्र में तीर्थंकर होने के सोलह भावनात्मक स्थान बतलाये हैं। उन सोलह स्थानों में

Appendix 2





















APPENDIX 2



To reach the status of a Tirthankar it is not enough to do certain practices during certain birth. It is the result of a progressive process of unvieling the potential energy through endeavours in right direction during a series of incarnations. At what point this pursuit started and how it progressed, is detailed in the scriptures. It seems that the chief disciples or gods must have expressed their curiosity about the journey towards ultimate purity and the Tirthankars must have provided the details. That is why details of earlier births of all Tirthankars are available.

The counting of these births starts from the birth in which the soul gets the first glimpse of righteousness. This is considered to be the most important turning point for a soul because once the right direction is attained, liberation is certain.

The Earning of Tirthankar-nam-karma

The loftiest of the pious category of Karmas is said to be the Tirthankar-nam-karma. It is important to know when and how it is acquired because this is the basis over which the status of Tirthankar is founded. This Karma is acquired one birth earlier. It is the physical or normal human body that acquires this Karma. The aural alternate body (Vaikriya Sharir) does not have the capacity to acquire this Karma. The future Tirthankar descends from the dimension of gods or ascends from the dimension of hell. In both these dimensions the souls have aural bodies. As the aural body does not have the capacity for long-term spiritual practices, this Karma is not acquired during this immediately preceeding birth. That is the reason that all the Tirthankars do their final spiritual practices of acquiring this Karma during their last but second birth as human beings. During that birth they acquire a high degree of purity of perception. They become Kshayak Samyaktvi (the level of purity where the past Karmas are destroyed not suppressed).

The Acharyas say that the goal of spiritual pursuit should not be the status of a Tirthankar. Though its status is very high the Tirthankar-nam type of Karma is still a Karma and as such a tie. On the path of purity an effort to earn pious Karma is not advisible. The spiritualists never indulge in any activity that leads to bondage, irrespective of its being pious.

All activities by spiritualists are directed toward shedding of the Karmas. As a result of certain activities or practices certain Karmas are wiped and as a consequence this specific bondage is achieved without striving for it. These practices are numbered twenty. These are also known as the twenty practices leading to the Tirthankar status and are believed to be the fundamental guiding factors for attaining the status of Tirthankar. These are—

Illustrated Tirthankar Charitra

960)

सचित्र तीर्थंकर चरित्र



पुष्पमाला

चन्द्र

सुर्य

अनन्त (























शीतल





वासुपूज्य

- of 1 Worship the Arihant Tirthankar).
- 2. Worship of the Siddha (liberated soul).
- 3. Faith in the discourses.
- 4. Worship of the teacher.
- 5. Worship of the senior ascetic.
- 6. Worship of the scholar
- 7. Worship of those who indulge in penance.
- 8. Continued application of knowledge for maximum possible time.
- 9. Purity of perception.
- 10. To praise the virtues of others and be happy at the progress of others.
- 11. To practice the six essentials including Pratikraman analysis) in the prescribed way and at the prescribed time.

- Observe all the yows and codes of 12. conducts with ever increasing indulgence.
- 13. Detachment—always practice apathy for attachment, fondness, conceit, and greed. Develop the attitude of being detached.
- 14. To activate the potential or to practice penance with all intensity.
- 15. To give due importance and respect to the four pronged religious organisation.
- To look after and take care of the detached.
- 17. To enhance knowledge regularly.
- To have faith on the sermons of 18. the detached.
- 19. To give charity to the deserving.
- 20. Devotion for Tirthankar's sermon. and the discipline of the order.

in the eighth chapter of the Jnatasutra and in Avashyak Niryukti these twenty practices are mentioned. Intense practise of even one or two of these practices may lead to the earning of Tirthankar-nam-karma. In the Mahapuran and the Tattvarth Sutra their is a mention of sixteen practices of feelings or attitudes. These encompass all the above twenty practices. Importance has been given to spiritual practices in both these sets of practices.



ध्वजा





सरोवर



समुद्र



विमान-भवन



राशि



निर्धम अगिन



परिशिष्ट २

















Appendix 2



विशिश इ



तीर्थंकरों के अतिशय

(क) तीर्थंकरों के चौंतीस अतिशय

संसार में तीर्थंकर को सर्वश्रेष्ठ पुरुष के रूप में पूज्यता प्राप्त है, क्योंकि वे अध्यात्म की भूमिका पर चार घनघाति कर्मों का नाश कर अनन्त ज्ञान, दर्शन, चारित्र और अनन्त शक्ति सम्पन्न हो जाते हैं। उनके वाहरी और भीतरी व्यक्तित्व में जो विशेषतायें प्रकट होती हैं. आगमिक भाषा में उन्हें चौंतीस अतिशय कहते हैं। जैसे-



लक्ष्मी

पुष्पमाला

चन्द्र

सूर्य

- 9. केश-रोम श्मश्रु नहीं बढ़ते हैं।
- २. अरीर रोगरहित रहता है।
- ३. रक्त और माँस दूध के समान श्वेत होते हैं।
- ४. श्वासोच्छ्वास में कमल जैसी सुगंध होती है।
- ५. आहार-नीहार विधि नेत्रों से अगोचर होती है।
- ६. मस्तक के ऊपर आकाश में तीन छत्र होते हैं।
- ७. उनके आगे-आगे आकाश में धर्मचक चलता है।
- ८. उनके दोनों ओर आकाश में श्वेत चामर होते हैं।
- ९. स्फटिक सिंहासन होता है।
- ९०. इन्द्रध्वज आगे-आगे चलता है।
- 99. जहाँ-जहाँ तीर्थंकर ठहरते हैं. भगवान वहाँ-वहाँ अशोक वृक्ष होता है।
- १२. उनके चारों ओर दिव्य प्रभा-मण्डल होता है।
- 93. तीर्थंकरों के आस-पास का भूमि-भाग रम्य होता है।
- १४. काँटे औंधे मुँह हो जाते हैं।
- १५. ऋतुएँ अनुकूल रहती हैं।
- १६. सुखकारी पवन चलती है।
- 9७. भूमि की धूल जल-बिन्दुओं से शान्त रहती है।
- १८. पाँच प्रकार के अचित्त फूलों का देर लगा रहता है।

- १९. अशूभ शब्द, रूप, गंध, रस, स्पर्श का अभाव हो जाता है और शुभ शब्द आदि प्रकट होते हैं।
- २०-२१. भगवान की वाणी एक योजन तक समान रूप से सुनाई देती है।
 - २२. भगवान का प्रवचन अर्ख-मागधी भाषा में होता है।
 - २३. समस्त श्रोता प्रवचन को अपनी-अपनी भाषा में समझते हैं।
 - २४. भगवान के साम्रिध्य में जन्मजात वैरी भी अपना वैर भूल जाते हैं।
 - २५. विरोधी भी नम्र हो जाते हैं।
 - २६. प्रतिवादी निरुत्तर हो जाते हैं।
- २७-२८, भगवान के आस-पास पच्चीस योजन के परिमण्डल में ईति, महामारी आदि नहीं होती।
- २९-३३. जहाँ-जहाँ भगवान विहार करते हैं वहाँ-वहाँ परचक्र, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, दुर्भिक्ष, रोग आदि के उपद्रव नहीं होते।
 - ३४. भगवान के चरण-स्पर्श से उस क्षेत्र के पूर्वीत्पन्न सारे उपद्रव शान्त हो जाते हैं।

(समवायांग सूत्र ३४)

Illustrated Tirthankar Charitra

(868)

















सुपार्श्व



चन्द्रप्रभ



सुविधि



शीतल





(ख) पैंतीस वचनातिशय

तीर्थंकर केवलजान प्राप्त कर लोक-कल्याण हेलु देशना देते हैं। वे वही कहते हैं जो उन्होंने सत्यरूप में जीवा है इसलिए उनकी भाषा में सत्य के सिवाय कुछ नहीं होता। उनका सम्पूर्ण जीवन १८ दोषों रहित होता है। उनके वचन भी अतिशय सम्पन्न होते हैं। आगम में क्चन की पैंतीस विशेषताओं का उल्लेख है। तीर्थंकरों की वाणी मेघ के समान गम्भीर होती है और वह कभी निष्फल नहीं जाती। उनकी वाणी इन पैंतीस अतिशयों से सम्पन्न होती है-

- लक्षणयुक्तः।
- २. उच्च स्वभावयुक्त।
- ग्राम्य शब्दों से रहिता
- ४. मेघ जैसी गम्भीर।
- ५. प्रतिध्वनि युक्त।
- सरला
- ७. सम (स्वर) युक्त।
- ८. अर्थ की गम्भीरतायुक्त।
- ९. पूर्वापर विरोधरुहित।
- १०. शिष्टता मुचक।
- संदेहरहित। 99.
- पर-दोषों को प्रकट नहीं करने वाली।
- 93. श्रोताओं के हृदय को आर्चन्दित करने वाली।
- १४. देशकाल के अनुरूप।
- १५. विवेच्य विषय का अनुसरण करने वाली।
- १६. परस्पर सम्बद्ध और अति विस्तार से रहित।
- पद व वाक्यानुसारिणी।
- १८. प्रतिपाद्य विषय के बाहर न जाने बाली।
- १९. अमृत-सी मध्रा

- २०. मर्मघात से रहित।
- २१. धर्म-मोक्षरूप पुरुषार्थ की पुष्टि करने वाली।
- २२. अभिधेय अर्थ की गम्भीरता से युक्ता
- २३. आत्म-प्रशंसा व पर-निन्दा से मुक्त।
- २४. सर्वत्र श्लाघनीय।
- २५. कारक. लिंग आदि व्याकरण सम्भत्।
- २६. श्रोताओं के मन में जिज्ञासा जाग्रत करने वाली।
- २७. अद्भृत रचना में सक्षम।
- २८. विलम्ब दोषरहित।
- २९. विभ्रम दोपरहित।
- ३०. विचित्र अर्थ वाली।
- ३१. सामान्य वचन से कुछ विशेषता वाली।
- ३२. वस्तु-स्वरूप का साकार वर्णन प्रस्तुत करने में समर्थ।
- ३३. तत्त्व व ओजयूक्त।
- ३४. स्व-पर को खिन्न नहीं करने वाली।
- ३५. विवक्षित अर्थ को सम्यक् व पूर्ण रूप से सिद्ध करने वाली।

(समवायांग सूत्र)



ध्वजा



कुम्भ



सरोवर



समुद्र



विमान-भवन



राशि



निर्धम अग्नि





परिशिष्ट ३











(\$2\$)









Appendix 3

APPENDIX 3



सिंह

वृषभ

तक्ष्मी

पृष्यमाला

चन्द

सूर्य

THE UNIQUE ATTRIBUTES OF A TIRTHANKAR

(A) THE THIRTY FOUR UNIQUE ATTRIBUTES OF A TIRTHANKAR

The Tirthankars are worshipped as the loftiest beings in this world because they acquire infinite knowledge, perception, purity of conduct, and power by destroying the four vitiating Karmas at spiritual level. This gives rise to unique attributes in them, both at spiritual and physical levels. In canonical terms those are known as Atishaya or out of ordinary. These are—

- 1. There is no growth of hair on the body.
- The body remains free of any ailment.
- 3. The blood and flesh are milky white.
- 4. The breath is fragrant like lotus.
- Food intake and excretion are invisible.
- Above the head there are three canopies (umbrellas) in the sky.
- A wheel, symbolic of religion, moves ahead and behind him in the sky.
- 8. At both flanks there are white whisks in the sky.
- 9. The throne is made of crystal quartz.
- 10. The flag of Indra moves ahead of him.
- 11. Wherever he stays there is an Ashok tree.
- 12. There is a divine aura around him.
- 13. The land around him is pleasant.
- 14. Thorns get reversed.
- 15. The seasons are pleasant and favourable.

- 16. Pleasant wind blows.
- 17. Dust is settled due to moisture.
- 18. There are heaps of five types of lifeless flowers around him.
- 19. There is absence of unpleasant sound, form, smell, colour and touch around him and pleasant things appear.
- 20-21. His voice is heard with same volume and clarity upto a distance of one Yojan.
 - 22 His discourse is in Ardha-Magadhi language.
 - All present in the audience understand his discourse in their respective languages.
 - 24. In his proximity the natural enemies forget their animosity.
 - 25. His opponents become amiable.
 - 26. His dissenters become speechless.
- 27-28. Twenty five Yojans around him there is no epidemic or death.
- 29-33. Wherever he goes there are no afflictions self-inflicted or inflicted by others including flood, drought. diseases, etc.
 - 34. The touch of his feet pacifies and the earlier disturbances of the area.

Illustrated Tirthankar Charitra

(888)

































वासुपूज्य

(B) THIRTY FIVE UNIQUE ATTRIBUTES OF SPEECH

After gaining omniscience the Tirthankars give discourses aimed at public welfare. They utter only that which they have directly experienced, thus in their speech there is nothing but the truth. Their life is free of all 18 vices. Their speech also has unique qualities. The scriptures mention 35 unique attributes.

The voice of a Tirthankar is deep like the thunder of clouds and it is never devoid of purpose and result. Following are the 35 unique virtues—

- 1. It has quality
- 2. It has lofty meaning
- 3. It is free of coloquial terms
- 4. Deep as thunder
- 5. Resonent
- 6. Simple
- 7. Musical
- 8. Profound meaning
- 9. Free of ambiguity
- Respectful
- 11. Free of doubt
- 12. It does not expose faults of other
- 13. Pleasing
- 14. Relevant to the time and place
- 15. It suits the subject-matter
- 16. To the point and precise
- 17. Lyrical
- 18. Strictly relevant to the topic

- 19. Sweet like nectar
- 20. Not harsh or biting
- 21. Supports quest for liberation
- 22. Profoundly meaningful
- 23. Free of self-praise and criticism for others
- 24. To be emulated always
- 25. Follows the rules of grammar
- 26. Incites curiosity in the listener.
- 27. Full of eloquence and beauty
- 28. rree of pauses:
- 29. Free of double meaning
- 30. Having interpretations
- 31. Out of ordinary
- 32. Capable of picturesque description
- 33. Profound in content and effect
- 34. Not annoying to self and others
- 35. Completely logical and vivid



ध्वजा





सरोवर



समुद्र



विमान-भवन



रत्न राशि



निर्धुम अरिन





परिशिष्ट ३













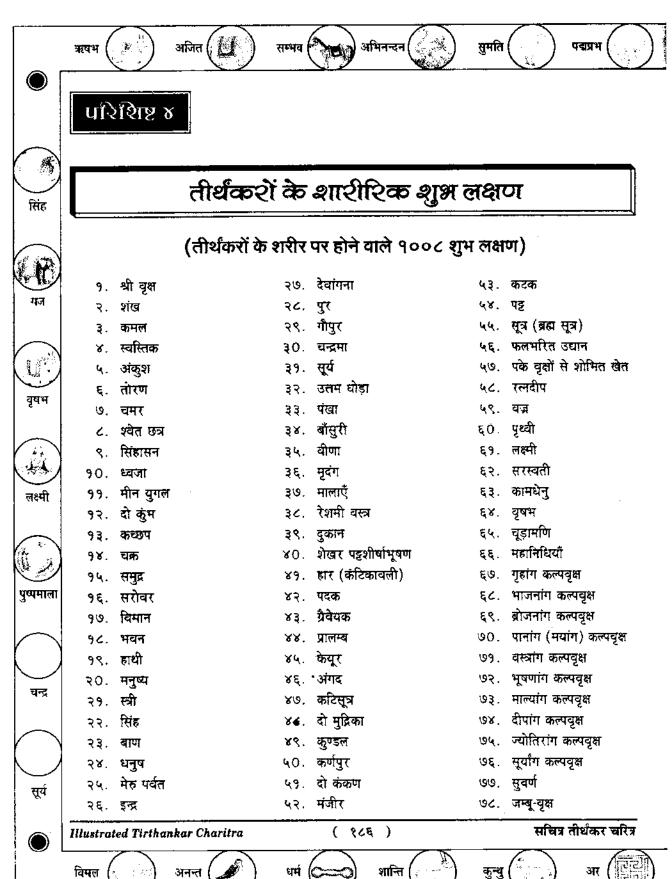
(१८५)

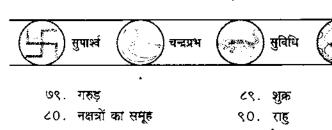






Appendix.







शीतल





वासुपूज्य

९९. चंमर १००. देवदुन्दुमि ९१. केत् ८९. तारागण 909. झारी ९२. सिद्धार्थ-वृक्ष ८२. राजभवन ९०२. कलश ९३. अशोक-वृक्ष ८३. अंगारक ग्रह 90३. ध्वजा ९४. रत्न सिंहासन ८४. रवि ग्रह १०४. छत्र

८५. चन्द्र ग्रह ९५. छत्रत्रय १०५. स्वस्तिक ८६. मंगल ग्रह ९६. भामंडल १०६. चयर

९७. दिव्यध्वनि १०७. दर्पण ८७. बुध ग्रह ९८. पुष्पद्यष्टि १०८. पंखा (ताल व्यंजन) ८८: गुरु

एक सौ आठ मुख्य लक्षण तथा मस्रिकादि ९०० व्यंजन अर्थात् सामान्य लक्षण ये सव मिलकर तीर्थंकरों के एक हजार आठ शभ लक्षण कहे गये हैं। -अइसहस्स लक्खणधरो (उत्तरा. २२/५)

APPENDIX 4

BIRTH-MARKS ON THE BODY OF A TIRTHANKAR

(THE 1008 AUSPICIOUS MARKS)

1. Coconut tree	15. Ocean	29. Gate
2. Conch-shell	16. Pond	30. The moon
3. Lotus	17. Space vehicle	31. The sun
4. Swastika	18. Mansion	32. Horse of good breed
5. Lancet (for elephant)	19. Elephant	33. Fan

6. Arch 20. Man 34. Flute 7. Whisks 21. Woman 35. Vina (a musical 8. White canopy instrument) 22. Lion

9. Throne 36. Mridang (a type of 23. Arrow drum) 10. Flag 24. Bow 37. Garlands 11. Pair of fishes 25. Meru mountain

38. Silk 12. Two urns 26. Indra (king of gods) 39. Shop 13. Tortoise 27. Divine damsel

40. A head-dress 14. Disc 28. Town

परिशिष्ट ४

मल्लि

(829)

Appendix 4





























समुद्र



भवन

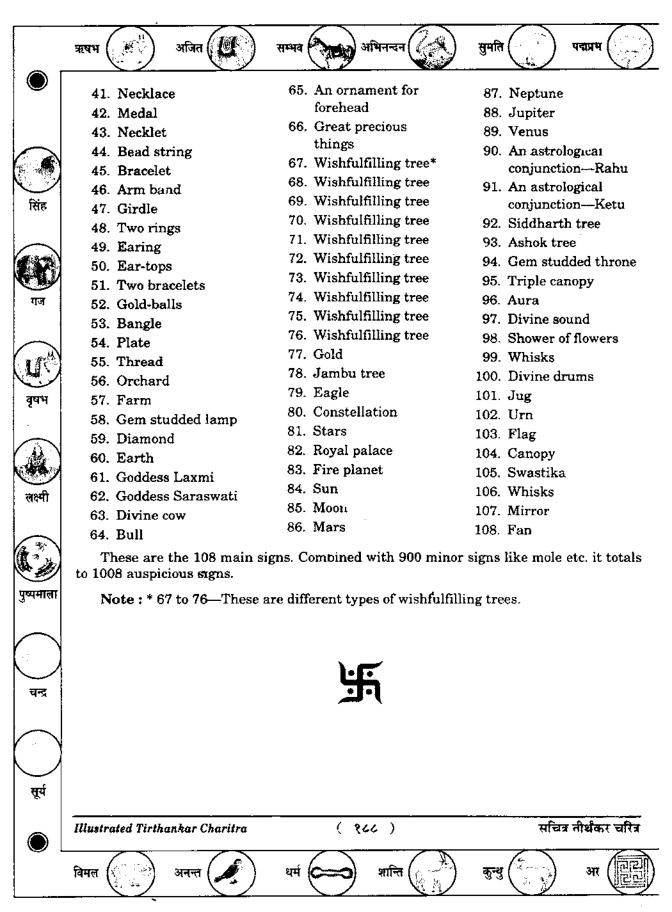


राशि























वासुपूज्य



तीर्थंक२-चिह्न : एक चिन्तन

तीर्यंकर चौबीस हैं। प्रत्येक तीर्यंकर का एक-एक चिन्ह है, जिसे लांछन/लक्षण कहा जाता है। तीर्यंकर मूर्तियाँ प्रायः समान होती हैं। केवल ऋषभदेव की कुछ मूर्तियों के सिर पर जटाएँ पाई जाती हैं तथा पार्श्वनाथ की मूर्तियों के ऊपर सर्प-फण होता है। सुपार्श्वनाथ की कुछ मूर्तियों के सिर के ऊपर भी सर्प-फण मिलते हैं। सुपार्श्वनाथ और पार्श्वनाथ के सर्प-फणों में साधारण-सा अन्तर मिलता है। सुपार्श्वनाथ की मूर्तियों के ऊपर पाँच फण होते हैं और पार्श्वनाथ की मूर्तियों के किपर के ऊपर सात, नी, ग्यारह अथवा सहस्त्र सर्प-फण पाए जाते हैं। इन तीर्यंकरों के अतिरिक्त शेष सभी तीर्यंकरों की मूर्तियों में कोई अन्तर प्रतीत नहीं होता। उनकी पहचान उनकी चरण-चौकी पर अंकित उनके चिक्कों से ही होती है। चिक्क न हो तो दर्शक को पहचानने में बड़ा प्रम हो जाता है। कभी-कभी तो लांछनरहित मूर्ति को साधारण-जन चतुर्थकाल की मान बैठते हैं, जबिक वस्तुतः श्रीवत्स, लांछन और अष्ट प्रातिहार्य से रहित मूर्ति सिद्धों की कही जाती है। इसलिए मूर्ति के द्वारा तीर्यंकर की पहचान करने का एकमात्र साधन तीर्थंकर प्रतिमा की चरण चौकी पर अंकित उसका चिक्क ही है। तीर्थंकर मूर्ति-विज्ञान में चिक्क या लांछन का अपना विशेष महत्त्व है।

इन चिह्नों के सम्बन्ध में विचारणीय बात यह है कि इन चिन्हों का कारण क्या है? ये तीर्थंकर प्रतिमाओं पर कब से और क्यों उत्कीर्ण किए जाने लगे और शास्त्रीय दृष्टिकोण क्या है? कुछ चिह्नों का सम्बन्ध तीर्थंकरों के पूर्व-भवों से भी जुड़ता है जैसे—भगवान महावीर का जीव पूर्व-भव में सिंह बना (भगवान महावीर का लांछन सिंह है)। भगवान पार्थ्वनाथ के जीवन में सर्प का सम्बन्ध रहा है। भगवान ऋषभदेव ने कृषि का प्रवर्त्तन किया। कृषि का सम्बन्ध वृषभ से है। भगवान नेमिनाथ का शंख बजाना भी शंख के साथ सम्बन्ध स्थापित करता है।

२४ तीर्थंकरों में से १७ तीर्थंकरों के चिह्न पशु-पक्षी जगत् से सम्बन्ध रखते हैं। प्राणि जगत् के प्रति उनकी करुणा और आत्मतुल्य दृष्टि इससे ध्वनित होती है।

इस सन्दर्भ में माना जाता है कि इन्द्र भगवान के जन्म-अभिषेक के समय उनके शरीर पर जिस वस्तु की रेखाकृति देखता है उसी को उनका चिह्न घोषित कर देता है। 'त्रिकालवर्ती महायुरुष' में यह उल्लेख भी आता है कि—

> जम्मण काले जस्स दु दाहिण पायम्मि होइ जो चिण्हं। तं लक्खण पाउ तं आगमसुते सुजिण देहे॥

तीर्थंकरों के दायें पैर के अँगूठे पर जन्म के समय इन्द्र जो चिह्न देखते हैं उसी को उनका चिह्न निश्चित कर देते हैं।

मूर्ति-निर्माण के प्रारम्भिक काल में मूर्तियों पर लांछन उत्कीर्ण करने की परम्परा नहीं रही। लोहानीपुर की

मौर्यकालीन या शक-कुष्पणकालीन मूर्तियों पर लांछन नहीं पाए जाते थे। बाद के काल में लांछनों के अंकन की परम्परा

प्रारम्भ हुई और इनका अंकन मूर्ति के पादपीठ पर किया जाने लगा। फिर भी चिह्नों की कारण मीमांसा आज भी शोध

माँगती है कि आखिर इन चिह्नों के साथ कौन से मनोवैज्ञानिक तथ्य जुड़े हैं और कौन-सी श्रेष्ठतायें चिह्नों में झौंकती हैं

जो तीर्यंकरों की विशिष्ट पहचान बनती हैं। चिह्नों के विषय में विशेष जानकारी के लिए देखें तीर्यंकर का १९९०

जनवरी-फरवरी अंक। इस पुस्तक में तीर्यंकरों के चिह्न प्रत्येक पृष्ठ पर बोर्डर में अंकित हैं।

परिशिष्ट ५

(१८९)

Appendix 5















महावीर



ध्वजा



कुम्भ





समुद्र



विमान-भवन



रत्न राशि



निधूम अग्नि

सुमति अजित (अभिनन्दन पद्मप्रभ ऋषभ

'नाथ' शब्द : एक चिन्तन

तीर्यंकरों के नाम के साथ 'नाथ' विशेषण (उपपद) की ऐतिहासिकता पर विचार करने से प्रतीत होता है कि जैनों के प्राचीनतम आगम भगवती सूत्र एवं आवश्यक सूत्र में तीर्थंकरों के लिए 'लोगनाहेणं' 'लोक के नाथ' शब्द का प्रयोग हुआ है। विक्रम की चौथी शताब्दी के आस-पास हुए यतिवृषभाचार्य ने भी 'नाथ' उपपद का प्रयोग किया है-संतिणाहो (ति. प. ४/५४१) अणंतणाह (ति. प. ५/५९९) आदि। यह मानना एक भ्रान्ति है कि नेमिनाथ 'पारसनाथ' शब्द नाथ संप्रदाय के प्रभाव को सूचित करते हैं, अपित् सत्य तो यह है कि जैनों के 'नाथ' शब्द को नाथ सम्प्रदाय के मूल प्रवर्त्तक मत्स्येन्द्रनाथ (ईस्वी की ८वीं शताब्दी) ने नेमिनाथ पारसनाथ की अत्यधिक लोकप्रियता के कारण स्वीकार किया है।

APPENDIX 5

सिंह

U

वृषभ

लक्ष्मी

पुष्पमाला

चन्द्र

सूर्य

THE SYMBOL OF TIRTHANKAR: A STUDY

There are twenty four Tirthankars. Every Tirthankar has a specific representative symbol that is known as "Lanchan".

Generally all the idols of Tirthankars are similar except for Parshvanath which has a serpent hood over the head. Some idols of Rishabhdev show locks or a bun of hair on the head. Suparshvanath idols too have a serpent hood sometimes but there is a marked difference from that over Parshvanath. The hood over Suparshvanath has five serpent heads whereas that over Parshvanath has seven, nine, eleven or one thousand serpent heads. Besides these there is hardly any difference between the idols of different Tirthankars. It is with the help of the symbols carved at the base of these idols that the specific Tirthankar is recognised. Where the symbol is absent the idol cannot be attributed to a specific Tirthankar. Sometimes an idol without symbol is taken to be of a future Tirthankar. In the field of Jain iconography the symbol of a Tirthankar occupies an important place because it is the only means of recognising the specific Tirthankar. Any idol without a symbol, Shrivatsa and eight attributes is of a Siddha (liberated soul) in general.

The points worth considering in this regard are—what is the purpose behind these signs or symbols? When the tradition of carving them on idols began and what is the classical view on this matter?

Some of the themes could be traced back to the earlier incarnations of the Tirthankars. For example during one of its incarnation the being that became Mahavir was a lion. (Mahavir's sign is a lion). In earlier incarnation Bhagavan Parshvanath was

Illustrated Tirthankar Charitra

(१९०)















सुपार्श्व



चन्द्रप्रभ (कुरून)



शीतल





वासुपूज्य

closely associated with serpents. (Parshvanath's sign is a snake). Bhagavan Rishabhdev was the originator of farming and its techniques and bull is closely associated with farming. (Rishabhdev's symbol is bull). There is an incident from Bhagavan Neminath's life when he blew a famous conch-shell. (Neminath's symbol is conch-shell).

All the Tirthankars laid emphasis on equality of all life forms. They also practised and promoted compassion for all beings in the animal kingdom. This is reflected in the fact that seventeen out of the twenty four Tirthankars have animals or birds as their symbols.

In this context traditionally it is believed that at the time of annointing during the post-birth celebrations Indra looks for the birth-mark on the right toe of the new born and accordingly declares the symbol of the Tirthankar. There is a mention of this in "Trikalvarti Mahapurush".

In the early period of Jain sculpture these symbols were not carved on the idols. On the ancient sculptures of Maurya and Kushan era from Lohanipur these symbols are not found. This traditon appears to have started later when at some point these symbols began to be carved at the base of the statues. Still a systematic research is needed in this field in order to reveal the themes, and psychological background of these symbols and the virtues of Tirthankars they are related to. The January-February 1990 issue of Tirthankar (a periodical published from Indore) provides a useful reading on the subject. We have included all these symbols in the page-border in this book.

WORD 'NATH' : A STUDY

A misconception prevails that the suffix 'Nath' with the names of many Tirthankars is the influence of the 'Nath' sect of Yogis. It is baseless as the founder of the Nath sect, Matsyendranth belonged to the 800 A.D. The suffix Nath is found in much earlier Jain works like Bhagavati Sutra and Avashyak Sutra. Yati Vrishabhacharya in his Tiloyana Pannats has also used this suffix (400 A.D.). As such it appears that it was Matsyendra who was influenced by the popularity of Neminath and Parshvanath and started using the suffix Nath.



(१९१)





कुम्भ



सरोवर



समुद्र



विमान-भवन



रत्न राशि



निर्धूम अग्नि





परिशिष्ट ५









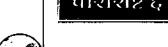






Appendix 5

परिशिष्ट ६



सिंह

U

वृषभ

लक्ष्मी

पुष्पमाला

चन्द्र

सूर्य

पहले तीर्थंकर

- धन्ना सार्यवाह युगलिया
- ३. सीधर्म देवलोक
- ४. महाबल
- ५. ललितांग
- . यज्ञजंघ
- ७. युगलिया
- ८. सीधर्म देवलोक
- ९ वैद्य जीवप्यन्द
- १०. अच्युत 🤄 ोक
- ११. वज्रनाभ राजवर्ती
- १२. सर्वार्धीः वलोक
- १३. तीर्यंकर 🖘 नदेव
- दूसरे तीर्थंकर
 १. विमल
 - २. विजय देवलोक
 - ३. तीर्थंकर अजितनाय
- तीसरे तीयंकर
 - 9. विमलवाहन
 - २. आनत देवलोक
 - ३. तीर्यंकर संभवनाय
- चौथे तीर्यंकर
 - १. धर्मसिंह
 - २ विजय देवलोक
 - ३ तीर्धंकर अभिनन्दन
- पाँचवें अर्थकर
 - १. सामेत्र

२. वैजयन्त दवलोक

तीर्थंकरों के पूर्व-अव

- ३. तीर्थंकर सुमतिनाथ
- छठे तीर्यंकर
 - 🤋 धर्ममित्र
 - २. तीर्थंकर पश्रप्रभ
- सातवें तीर्थंकर
 - १. सुन्दरबाहु
 - २. छठा ग्रैवेयक देवलोक
 - ३. तीर्यंकर सुपार्श्वनाथ
- आठवें तीर्थंकर
 - १. दीर्घबाहु
 - २. वैजयन्त देवलोव.
 - ३. तीर्यंकर चन्द्रप्रम
- नवें तीर्यंकर
 - १. युगबाहु
 - २. वैजयन्त देवलोक
 - ३. तीर्यंकर सुविधिनाय
- दसवें तीर्थंकर
 - 🤈 . लष्टबाहु
 - २. प्राणत देवलोक
 - ३. तीर्यंकर शीतलनाथ
- ग्यारहवें तीर्थंकर
 - 9. दत्त
 - २. महाशुक्त देवलोक
 - ३. तीर्यंकर श्रेयांसनाय
- वारहवें तीर्यंकर
 - १. इन्द्रदत्त

- २. प्राणत देवलोक
- 3 तीथंकर वास्पूज्य
- तेरहवें तीर्थंकर
 - १. सुन्दर
 - २. सहस्रार देवलोक
 - ३. तीर्थंकर विमलनाय
- चौदहवें तीर्थंकर
 - ९. माहेन्द्र
 - २. प्राणत देवलाक
 - ३. तीर्थंकर अनन्तनाय
- पन्द्रहवें तीर्थंकर
 - 🤋 सिंहरथ
 - २. वैजयन्त देवलोक
 - ३. तीर्थंकर धर्मनाथ
- सोलहवें तीर्थंकर
 - 🤈 राजा श्रीषेण
 - २. भोगभूमि के जीव
 - ३. श्रीप्रभदेव
 - ४. अमित:तेज विद्याधर
 - ५. तेरहवाँ स्वर्ग
 - ६. अपराजित बलदेव
 - ७. अच्युत स्वर्ग के इन्द्र
 - ८. वज्रायुध चक्रवर्ती
 - ९. ग्रैवेयक अहमिन्द्र
 - १०. मेघरथ
 - ११. सर्वार्थसिद्ध देवलोक
 - **१२. तीर्थंकर शान्तिनाथ**

Ulustrated Tirthankar Charitra

(१९२)

सचित्र तीर्थंकर चरित्र



अनन्त









कुन्थु 🎘

अर





सुपार्श्व



चन्द्रप्रभ







शीतल



श्रेयांस



वासुपूज्य

ध्वजा

कुम्भ

परा

सरोवर

समुद्र

- सन्नहवें तीर्थंकर
 - 9. लक्सी
 - २. सर्वार्थसिद्ध देवलोक
 - ३. तीर्थंकर कुंधुनाथ
- अठारहवें तीर्थंकर
 - १. सुदर्शन
 - २. नवम ग्रैवेयक देवलोक
 - तीर्थंकर अरनाथ
- उन्नीसवें तीर्थंकर
 - १. नन्दन
 - २. वैजयन्त देवलोकः
 - तीर्थंकर मल्लीनाथ
- बीसवें तीर्थंकर
 - 9. सिंहगिरि
 - २. प्राणत देवलोक
 - ३. तीर्थंकर मुनिसुब्रत
- इक्कीसवें तीर्यंकर
 - १. अदीनसत्य
 - २. अपराजित देवलोक
 - तीर्थंकर निमनाथ
- बाईसवें तीर्थंकर
 - १. धनकुमार

- २. सौधर्म देवलोक
 - ३. राजा सुप्रतिष्ठित
- ४. माहेन्द्र देवलोक
- ५. अपराजित देवलोक
- ६. आनत देवलोक
- ७. राजा शंख
- ८. अपराजित देवलोक
- ९. तीर्थंकर अरिष्टनेमि
- तेईसवें तीर्थंकर
 - 3. मरुभूति
 - २. हाथी का भव
 - 3. सहस्रार देवलोक
 - ४. किरणदेव विद्याधर
 - ५. अच्युत देवलोक
 - ६. यज्रनाभ
 - ७. ग्रैवेयक देवलोक
 - ८. सुदर्शन
 - ९. प्राणत देवलोक
 - तीर्यंकर पार्श्वनाथ
- चीबीसवें तीर्थंकर
 - 9. नयसार
 - २. सौधर्म देवलोक
 - 3. मरीचि

- ४. ब्रह्मस्वर्ग का देव
- ५. कीशिक ब्राह्मण
- ६. पृष्यमित्र ब्राह्मण
- ७. सीधर्म देवलोक
- ८. अग्निद्योत
- ९. द्वितीयकल्पवासी देवलोक
- ९०. अग्निभृति
- **99. सनत्कुमार देवलोक**
- १२. भारद्वाज
- **९३. माहेन्द्र देवलोक**
- १४. स्थावर ब्राह्मण
- १५. ब्रह्मकल्प देवलोक
- १६. विश्वभूति
- १७. महाशुक्र देवलोक
- १८. त्रिपुष्ठ वास्देव **१९. सातवीं नरक**
- २०. सिंह
- २९. चौथी नरक
- २२. प्रियमित्र चक्रवर्ती
- २३. महाशुक्र देवलोक
- २४. नन्दन
- २५. प्राणत देव
- २६. देवानन्दा का गर्भ
- २७. तीर्थंकर महावीर

(त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र)

(सत्तरिसय द्वार ७वें तथा समवायांग में भी उल्लेख है)



विमान-

रत्न राशि



निर्धूम अग्नि















(EP9)







Appendix 6



APPENDIX 6



सिंह

वृषभ

लक्ष्मी

पुष्पमाला

चन्द्र

सूर्य

THE EARLIER INCARNATIONS OF TIRTHANKARS

I Tirthankar

- 1. Dhanna, the Carvan leader
- 2. Twin
- 3. Saudharm dimension
- 4. Mahabal
- 5. Lalitang
- 6. Vajrajangh
- 7. Twin
- 8. Saudharm dimension
- 9. Doctor Jivanand
- 10. Achyut dimension
- Vajranabh
 Chakravarti
- Sarvarthsiddha dimension
- 13. Rishabhdev

II Tirthankar

- 1. Vimal
- 2. Vijay dimension
- 3. Aiitnath

III Tirthankar

- Vimalvahan
- 2. Anat dimension
- 3. Sambhavnath

■ IV Tirthankar

- 1. Dharma Simha
- 2. Vijay dimension
- 3. Abhinandan

■ V Tirthankar

- 1. Sumitra
- 2. Vaijayant dimension
- 3. Sumatinath

VI Tirthankar

- 1. Dharmmitra
- 2. Padmaprabh

■ VII Tirthankar

- Sundarbahu
- Sixth Graiveyak dimension
- 3. Suparshvanath

■ VIII Tirthankar

- 1. Deerghbahu
- 2. Vaijayant dimension
- 3. Chandraprabh

■ IX Tirthankar

- 1. Yugbahu
- 2. Vaijayant dimension
- 3. Suvidhinath

■ X Tirthankar

- 1. Lashtabahu
- 2. Pranat dimension
- 3. Sheetalnath

■ XI Trithankar

- 1. Datta
- 2. Mahashukra dimension
- 3. Shreyansnath

XII Tirthankar

- 1. Indradatta
- 2. Pranat dimension
- 3. Vasupujya

■ XIII Tirthankar

- 1. Sundar
- 2. Sahasrar dimension
- 3. Vimalnath

■ XIV Tirthankar

- 1. Mahendra
- 2. Pranat dimension
- 3. Anantnath

XV Tirthankar

- 1. Simharath
- 2. Vaijayant dimension
- 3. Dharmnath

XVI Tirthankar

- King Shrishen
- 2. A god
- Shriprabhdev
- 4. Amit-tej Vidyadhar
- 5. Thirteeuth
 - dimension of gods
- 6. Aparajit Baldev
- 7. King of Achyut dimension
- 8. Vajrayudh Chakravarti
- 9. King of Graiveyak dimension

Illustrated Tirthankar Charitra

(888)





















सपार्श्व



चन्द्रप्रभ



सुविधि



शीतल





वासुपुज्य

- 10. Meghrath
- 11. Sarvarthsiddha dimension
- 12. Shantinath

XVII Tirthankar

- 1. Ruksi
- 2. Sarvarthsiddha dimension
- 3. Kunthunath

XVIII Tirthankar

- 1. Sudarshan
- 2. Ninth Graivevak dimension
- 3. Arnath

■ XIX Tirthankar

- 1. Nandan
- 2. Vaijayant dimension
- 3. Mallinath

■ XX Tirthankar

- 1. Simhagiri
- 2. Pranat dimension
- 13. Munisuvrat

■ XXI Tirthankar

- 1. Adinsatya
- 2. Aparajit dimension
- 3. Naminath

XXII Tirthankar

Dhankumar

- 2. Saudharm dimension
- 3. King Supratishthit
- 4. Mahendra dimension
- 5. Aparaiit dimension
- 6. Anat dimension
- 7. King Shankh
- 8. Aparajit dimension
- 9. Arishtanemi

XXIII Tirthankar

- 1. Marubhuti
- 2. Elephant
- 3. Sahasrar dimension
- 4. Kirandev Vidyadhar
- 5. Achyut dimension
- 6. Vairanabh
- 7. Graiveyak dimension
- 8. Sudarshan
- 9. Pranat dimension
- 10. Parshvanath

■ XXIV Tirthankar

- Nayasar
- 2. Saudharm dimension
- 3. Marichi.
- 4. Brahma dimension
- 5. Kaushik Brahman
- 6. Pushyamitra Brahman

7. Saudharm dimension

- 8. Agnidyot
- 9. Secondkalpa dimension
- Agnibhuti
- Sanatkumar dimension
- 12. Bhardvai
- 13. Mahendra dimension
- 14. Sthavar Brahman
- 15. Brahmakalpa dimension
- 16. Vishvabhuti
- 17. Mahashukra dimension
- 18. Triprishtha Vasudev
- Seventh hell.
- 20. A lion
- 21. Fourth hell
- 22. Privamitra Chakravarti
- 23. Mahashukra dimension
- 24 Nandan
- 25. Pranat limension
- 26. Foetus of Devananda
- 27. Mahavir

(Trishashtishalaka Purush Charitra) (also in chapter 7th of Sattarisaya and Samavayang)



(१९५)

परिशिष्ट ६

मल्लि



मुनिसुब्रत





अरिष्टनेमि





महावीर

Appendix 6



















विमान-भवन



रत्न सिश











भूमिको अधिनन्दन

सुमति

पद्मप्रभ

परिशिष्ट ७



अश्त क्षेत्र में वर्तमान, अतीत एवं आवी तीर्थंकशें के नाम

गज

गज	l
U	
वृषभ	l











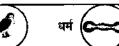




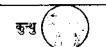
	् २४. महावार	सम्प्रात	अनन्तावज्ञय
	निम्न नी पुण्यात्माओं ने	सम्प्रात भगवान महावीर के शासनकाल में तीर्थंकर-नाम-कर्म थे-१. राजा श्रेणिक, २. सुपार्श्व, ३. उदायी, ४. पो	का उपार्जन किया। जिनके उस भव
	के नाम क्रमशः इस प्रकार	थे-१. राजा श्रेणिक, २. सुपार्श्व, ३. उदायी, ४. पो	हिल अणगार, ५. दृढ़ायु, ६. शंख ,
सूर्य	७. शतक, ८. सुलसा, और	९. रेवती।	



अनन्त	







अर

संख्या	वर्तमान	अतीत	भविष्य
9.	ऋषभदेव	केवलज्ञानी	महापद्म ⁹
₹.	अजितनाथ	निर्वाणी	सुरदेव ^२
₹.	संभवनाथ	सागर	सुपार्श्व ^३
٧.	अभिनन्दन	महायश ं	स्वयंप्रभ ^४
٧.	सुमतिनाथ	विमल	सर्वानुभूति ^५
ξ.	पद्मप्रभ	सर्वानुभृति	देवश्रुति
७.	सुपाइर्वनाथ	श्रीधर	उदयनाथ ^६
۷.	चन्द्रप्रभ	दत्त	पेढालपुत्र
٩.	सुविधिनाथ	दामोदर	पोहिल
90.	शीतलनाथ	सुतेजा	शतकीर्ति ^७
99.	श्रेयांसनाथ	स्वामीना थ	मुनिसुद्रत
97.	वासुपूज्य	मुनिसुव्रत	सर्वभावविद्
93.	विमलनाय	सुमति	अमम
98.	अनन्तनाथ	शिवगति	निष्कषाय
94.	धर्मनाथ	अस्तांग	निष्पुलाक
9٤.	शान्तिनाथ	नमोश्वर	निर्मम ^८
9७.	कुंथुनाथ	अनिल	चित्रगुप्त ^९
94.	अरनाथ	यशोधर	समाधि
98.	मल्लीनाथ	कृतार्थ	संवर
₹0.	भुनिसुब्रत	जिनेश्वर	अनिवृत्ति
₹9.	नमिनाथ	शुद्धमति	विजय
२२.	अरिष्टनेमि	शिवंकर	विमल
₹₹.	पार्श्वनाथ	स्यन्दननाथ	देवीपपात
२४.	महावीर	सम्प्रति	अनन्तविजय

(१९६)

सचित्र तीर्थंकर चरित्र

(स्थानांग, स्थान ९, अभयदेव वृत्ति)



सुपार्श्व















वासुपूज्य



TIRTHANKARS OF BHARAT AREA PRESENT, PAST AND FUTURE

S. No.	Present	Past	Future
1.	Rishabhdev	Kewal Jnani	$Mahapadma^{1}$
2.	Ajitnath	Nirvani	$Surdev^2$
3.	Sambhavnath	Sagar	Suparshva ³
4.	Abhinandan	Mahayash	Svayamprabh ⁴
5.	Sumatinath	Vimal	Sarvanubhuti ⁵
6.	Padmaprabh	Sarvanubhuti	Devshruti
7.	Suparshvanath	Shridhar	Udaynath ⁶
8.	Chandraprabh	Datta	Pedhalputra
9.	Suvidhinath	Damodar	Pottil
10.	Sheetalnath	Suteja	Shatakirti ⁷
11.	Shreyansnath	Swaminath	Munisuvrat
12.	Vasupujya	Munisuvrat	Sarvabhavavid
13.	Vimalnath	Sumati	Amam
-14.	Anantnath	Shivgati	Nishkashay
15.	Dharmnath	Astanga	Nishpulak
16.	Shantinath	Namoshvar	Nirmam ⁸
17.	Kunthunath	Anil	Chitragupta ⁹
18.	Arnath	Yashodhar	Samadhi
19.	Mallinath	Kritarth	Samvar
20.	Munisuvrat	Jineshvar	Anivritti
21.	Naminath	Shuddhamati	Vijay
22 .	Arishtanemi	Shivankar	Vimal
23.	Parshvanath	Syandannath	Devopapat
24.	Mahavir	Samprati	Anantvijay

Following nine will be the incarnations of pious souls that earned Tirthankar-namkarma during Mahavir's period. There names in sequence are—1. King Shrenik, 2. Suparshva, 3. Udayi, 4. Pottil ascetic, 5. Dridhayu, 6. Shamkh, 7. Shatak, 8. Sulasa, and 9. Revati.

(Sthanang, Chapter IX, Abhaydev)

परिशिष्ट ७

(१९७)

Appendix 7



मल्लि



मुनिसुव्रत











महावीर

ध्वजा



कुम्भ







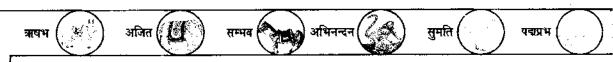


विमान-भवन



रत्न राशि





पारेशिष्ट ट



सिंह

गज

U

वृषभ

त्रक्ष्मी

पुष्पमाला

चन्ट

सूर्य

महाविदेह क्षेत्र में तीर्थंकर (बीस विहरमान)

महाविदेह क्षेत्र में एक सौ बीस तीर्थंकर वर्तमान में विद्यमान हैं। बीस विहरमान तीर्यंकरों के नाम हैं-

- श्री सीमन्धर स्वामी
- २. श्री युगमन्धर स्वामी
- ३. श्री बाहु स्वामी
- ४. श्री सुबाह स्वामी
- ५. श्री सुजात स्वामी
- ६. श्री स्वयंप्रभ स्वामी
- श्री ऋषभानन स्वामी
- ८. श्री अनन्तवीर्य स्वामी
- ९. श्री सरप्रभ स्वामी
- 90. श्री विशालधर स्वामी

- श्री वजधर स्वामी
- १२. श्री चन्द्रानन स्वामी
- 9३. श्री चन्द्रबाह स्वामी
- १४. श्री भूजंगम स्वापी
- 94. श्री ईश्वर स्वामी
- १६. श्री नेमिप्रभ स्वामी
- ७७. श्री वीरसेन स्वामी
- १८. श्री महाभद्र स्वामी
- १९. श्री देवयश स्वामी
- २०. श्री अजितवीर्य स्वामी

श्री सीमन्धर स्वामी

'सीमन्धर' प्रभु पहले विहरमान तीर्थंकर हैं। इनका जन्म 'जम्बूद्वीप' के पूर्व महाविदेह क्षेत्र में पुष्पकलावती विजय की पुण्डरीकिणी नगरी में हुआ। इनके पिता का नाम महाराजा 'श्रेयांस' और माता का नाम 'सत्यकी' है। चौदह स्वप्नों से सूचित उस पुत्र-रत्न के वृषभ का लांछन-चिह्न देखकर सबने उन्हें महापुरुष माना और उनका नाम दिया 'सीमन्धर' अर्थात् संयम की सीमा को धरने वाले।

युवावस्था में आपका देहमान पाँच सौ धनुष का हो गया। रुक्मणी नाम की एक सुन्दर राजकन्या से आपका विवाह हुआ।

तिरासी लाख पूर्व तक संसार में रहकर दीक्षित बने, केवलझान प्राप्त किया। आपकी सर्वायु चौरासी लाख पूर्व की है।

वर्तमान काल में महाविदेह क्षेत्र की विभिन्न विजयों में विचरण करने वाले बीस विहरमान तीर्यंकरों का जन्म जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में हुए १७वें तीर्यंकर श्री कुंधुनाथ निर्वाण के बाद एक ही सुमय में हुआ था।

२0वें तीर्थंकर मुनिसुव्रत के निर्वाण के बाद सबने एक ही समय में दीक्षा ग्रहण की।

ये बीसों तीर्थंकर एक मास तक छन्चावस्था में रहकर एक ही समय में केवलज्ञानी हुए।

ये बीसों तीर्थंकर भविष्यकाल की चौबीसी के सातवें तीर्थंकर श्री उदयनाथ जी के निर्वाण के बाद एक साथ मोक्ष जायेंगे।

ये बीसों तीर्थंकर जिस समय मोक्ष प्रधारेंगे उसी समय महाविदेह क्षेत्र के दूसरे विजय में जो-जो तीर्थंकर उत्पन्न हुए होंगे, वे दीक्षा ग्रहण करके तीर्थंकर पद प्राप्त करेंगे। ऐसी परम्परा अनादिकाल से चली आ रही है और भविष्य में भी अनन्तकाल तक चलती रहेगी, क्योंकि कम-से-कम बीस तीर्थंकर तो अवश्य विद्यमान रहते हैं। इनसे कभी कम नहीं होते हैं और अधिक-से-अधिक १७० तीर्थंकरों के होने की नियामकता है।

Illustrated Tirthankar Charitra

(१९८)

सचित्र तीर्थंकर चरित्र



अनन्त 🍃















सुपार्श्व







सुविधि

शीतल







वासुपूज्य

APPENDIX 8

THE TIRTHANKARS IN MAHAVIDEH AREA (THE TWENTY VIHARMANS)

At present one hundred and twenty Tirthankars exist in the Mahavideh area. The names of the twenty Viharman Tirthankars are as follows—

- 1. Shri Simandhar Swami
- 2. Shri Yugmandhar Swami
- 3. Shir Bahu Swami
- 4. Shri Subahu Swami
- 5. Shir Sujat Swami
- 6. Shri Svayamprabh Swami
- 7. Shri Rishabhanan Swami
- 8. Shri Anantvirya Swami
- Shri Surprabh Swami
- 10. Shri Vishaldhar Swami

- 11. Shri Vajradhar Swami
- 12. Shri Chandranan Swami
 - Shri Chandrabahu Swami
- 14. Shri Bhujangam Swami
- 15. Shri Ishwar Swami
- Shri Nemiprabh Swami
- 17. Shri Virsen Swami
- 18. Shri Mahabhadra Swami
- 19. Shri Devyash Swami
- 20. Shri Ajitvirya Swami

Shri Simandhar Swami

He is the first Viharman Tirthankar. He was born in the Pundarikini town of the Pushpakalavati state of the east Mahavideh area in the Jambu continent. His father was king Shreyans and mother Satyaki. He was considered to be a greatman as his mother had seen the fourteen great dreams. His symbol is bull. He was given the name Simandhar because he followed the discipline to highest limit.

When be became young his body grew to 500 Dhanush in height and he was married to a princess named Rukmani.

After an age of 8.3 million Purvas he became an ascetic and attained omniscience. His complete age is 8.4 million Purvas.

The twenty Viharman Tirthankars existing at present in the Mahavideh area were born at the same time just after the Nirvana of the 17th Tirthankar of Bharat area, Kunthunath. All of them took Diksha together just after the Nirvana of 20th Tirthankar Manisuvrat. Just after one month of becoming ascetics they all attained omniscience. They all will get liberated at the same time after the Nirvana of the seventh Tirthankar of future ascending cycle of time, shri Udaynath.

When all these Tirthankars are liberated other future Tirthankars will attain omniscience in the other part of Mahavideh area. This is an unbroken tradition since time immemorial and will continue for all the time to come. The rule is that a minimum of twenty Tirthankars must always exist. The maximum number can go upto 170.

परिशिष्ट ८

(१९९)

Appendix 8





















ध्वजा



कुम्भ











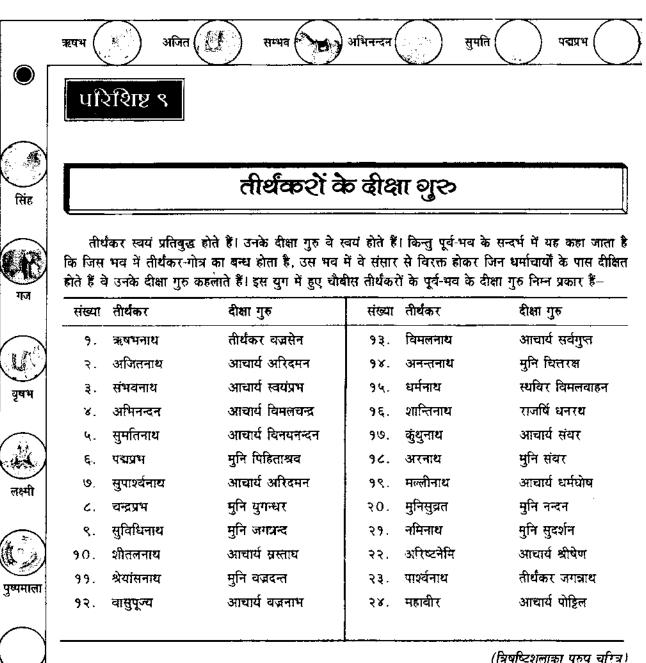












(त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र)



Illustrated Tirthankar Charitra

(२००)

सचित्र तीर्थंकर चरित्र



अनन्त













चन्द्र

सूर्य



सुपार्श्व



चन्द्रप्रभ 💮 सुविधि



) शीतल





वासुपूज्य

ध्वजा

कुम्भ

पद्म सरोवर

समुद्र

विमान-भवन

> रत्न राशि

निर्धुम

अग्नि

APPENDIX 9

THE INITIATORS OF TIRTHANKARS

The Tirthankar is a self-enlightened person. He also is his own initiator. But there is a tradition that the initiator (Guru) from the birth during which he acquires the Tirthankar-nam-karma is termed as the Diksha Guru (initiator). The names of the initiators of the twenty four Tirthankars of the present era are as follows—

S. No.	Tirthankar	Diksha Guru (Initiator)
1.	Rishabhdev	Tirthankar Vajrasen
2 .	Ajitnath	Acharya Aridaman
3.	Sambhavnath	Acharya Svayamprabh
4.	Abhinandan	Acharya Vimal Chandra
5.	Sumatinath	Acharya Vinaynandan
6.	Padmaprabh	Muni Pihitashrav
7.	Suparshvanath	Acharya Aridaman
8.	Chandraprabh	Muni Yugandhar
9.	Suvidhinath	Muni Jagannand
10.	Sheetalnath	Acharya Srastagh
11.	Shreyansnath	Muni Vajradant
12.	Vasupujya	Acharya Vajranabh
13.	Vimalnath	Acharya Sarvagupta
14.	Anantnath	Muni Chittaraksha
15 .	Dharmnath	Sthavir Vimalvahan
16.	Shantinath	Rajarshi Dhanrath
17.	Kunthunath	Acharya Samvar
18.	Arnath	Muni Samvar
19.	Mallinath	Acharya Dharmghosh
20.	Munisuvrat	Muni Nandan
21.	Naminath	Muni Sudarshan
22 .	Arishtanemi	Acharya Shrishen
23.	Parshvanath	Tirthankar Jagannath
24.	Mahavir	Acharya Pottil

(Trishashtishalaka Purush Charitra)

परिशिष्ट ९

(२०१)

Appendix 9











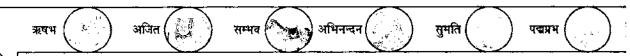












परिशिष्ट १०

तीर्थंकर और केवली में क्या अन्तर है ?

आंतरिक निर्मलता की अपेक्षा साधकों के कई प्रकार हैं। जिनकल्पी, अभिग्रहधारी, प्रमत्त, अप्रमत्त, सरागी. वीतरागी आदि। प्रथम (सरागी) स्तर साधु का है तो आखिरी वीतराग का, तीर्थंकर और केवलज्ञानी का। यद्यिप तीर्थंकर और केवलज्ञानी की ज्ञान-सम्पदा में अन्तर नहीं होता, किन्तु तीर्थंकर पद अपने आप में महत्त्वपूर्ण है। उसकी अपनी अलग विशेषताएँ हैं। दोनों के बीच मुख्य अन्तर इस प्रकार हैं—

- 9. तीर्थंकर के तीर्थंकर-नाम-कर्म का उदय होता है; सामान्य केवली के नहीं!
- २. तीर्थंकर पूर्व-जन्म में दो भव से निश्चित सम्यग्दृष्टि होते हैं; केवली के लिए ऐसा नियम नहीं
- तीर्थंकर गर्भ में अवधिज्ञानी होते हैं; केवली के लिए यह नियम नहीं!
- ४. तीर्थंकर की माता १४ स्वप्न देखती है; केवली की माता के लिए जरूरी नहीं।
- पं. तीर्थंकर पुरुष होते हैं (तीर्थंकर मल्ली का स्त्री होना आश्चर्य माना गया); केवली स्त्री, पुरुष और कृतः
 नपुंसक सभी हो सकते हैं।
- ६. तीर्थंकर स्तनपान नहीं करते; केवली करते हैं।
- ७. तीर्थंकर दीक्षा से पूर्व नियमित वर्षीदान देते हैं; केवली दे सकते हैं, पर ऐसा नियम नहीं है।
- तीर्थंकर केवलंडान की प्राप्ति ते पहले प्रवचन नहीं करते, प्रश्न का उत्तर दे सकते हैं; सामान्य केवली छद्मस्य अवस्था में भी उपदेश देते हैं।
- ९. तीर्थंकर के ५ कल्याणक होते हैं; केवली के नहीं।
- 90. तीर्थंकर को दीक्षा लेते ही मन:पर्यवज्ञान हो जाता है; केवली को नहीं।
- 99. तीर्थंकर स्वयंबुद्ध होते हैं; केवली के लिए यह नियम नहीं।
- 9२. तीर्थंकर को दीक्षा के पूर्व लोकान्तिक देव उद्बोधन देते हैं (देवों का जीताचार है); सामान्य केवली के लिए देव नहीं आते।
- 93. तीर्थंकर चतुर्विध तीर्थ की स्थापना करते हैं; केवली नहीं।
- १४. तीर्थंकर का शासन चलता है; सामान्य केवली का नहीं।
- 9५. तीर्थंकर के मुख्य शिष्य गणधर होते हैं; केवली के शिष्य गणधर नहीं होते।
- 9६. तीर्थंकर के ८ प्रातिहार्य होते हैं; केवजी के नहीं।
- 99. तीर्थंकर के ३४ अतिशय होते हैं; केवली के नहीं।
- १८. तीर्थंकर की वाणी के ३५ विशिष्ट गुण होते हैं; केवली के नहीं।
- 9९. तीर्थंकर भव में १, २, ३, ५ और ११वाँ गुणस्थान स्पर्श नहीं करते; केवली ११वाँ छोड़ सभी गुणस्थान का स्पर्श कर सकते हैं।

Illustrated Tirthankar Charitra

(२०२)

सचित्र तीर्थंकर चरित्र

विमत्त

अनन्त 🏈







भर (



सिंह



वृषभ



लक्ष्मी



पुष्पभाला

_

चन्द्र

सूर्य









शीतल





वासुपूज्य

- २०. तीर्यंकर के केवली-समुद्धात नहीं होता; केवली के होता है।
- २१. तीर्थंकर का जन्म क्षंत्रिय कुल में ही होता है; केवली सभी कुलों के हो सकते हैं।
- २२. तीर्थंकर के सम-चतुरस्र संस्थान ही होता है; केवली के ६ में से कोई भी हो सकता है।
- २३. तीर्थंकर का आयुष्य जघन्य ७२ वर्ष, उत्कृष्ट ८४ लाख पूर्व का होता है; सामान्य केवली का आयुष्य जघन्य ९ वर्ष, उत्कृष्ट करोड़ पूर्व का होता है।
- २४. तीर्थंकर की अवगाहना जघन्य ७ हाथ, उत्कृष्ट ५०० धनुष्य की होती है; सामान्य केवली की अवगाहना जघन्य २ हाथ, उत्कृष्ट ५ धनुष्य की होती है।
- २५. तीर्थंकर मात्र १५ कर्म-भूमि में ही होते हैं; केवली संहरण की अपेक्षा सम्पूर्ण अदाई द्वीप में हो सकते हैं।
- २६. तीर्थंकर स्वयं ही दीक्षा लेते हैं, गुरु से नहीं; केवली स्वयं या गुरु से भी दीक्षा ले सकते हैं।
- २७. तीर्थंकर तीसरे-चौथे आरे में ही होते हैं; सामान्य केवली सामान्यतः चौथे आरे में और चौथे आरे में जन्मे हुए पाँचवें में भी केवली हो सकते हैं।
- २८. दो तीर्थंकर आपस में मिलते नहीं; केवली मिलते हैं।
- २९. तीर्थंकर जधन्य २०, उत्कृष्ट १७० होते हैं; केवली जधन्य २ करोड़, उत्कृष्ट ९ करोड़ होते हैं।
- ३०. तीर्थंकर के अर्थ रूपी उपदेश से गणधर द्वादशांगी की रचना करते हैं; केवली के ऐसा नहीं होता।
- 39. तीर्थंकर के केवलज्ञान प्राप्ति के बाद उपसर्ग आते नहीं; केवली के उपसर्ग आ सकते हैं।
- ३२. समवसरण की रचना तीर्थंकर के लिए होती है; केवली के लिए नहीं।
- ३३. तीर्थंकर का प्रथम उपदेश खाली नहीं जाता; केवली के लिए ऐसा नियम नहीं।
- ३४. नरक या देव गति से आए **हुए मनुष्य ही तीर्यंकर बनते हैं**; केवली चारों गति से आकर जन्मे हुए बन सकते हैं।
- ,३५. तीर्थंकर के वेदनीय कर्म शुभाशुभ, शेष तीन अघाति कर्म एकान्त शुभ; केवली के आयुष्य कर्म शुभ, शेष तीन शुभाशुभ होते हैं।
- ३६. तीर्थंकर की सभा में अभिव नहीं आता; केवली की सभा में आ सकता है।
- ३७. तीर्थंकर एक क्षेत्र में एक ही होते हैं; केवली अनेक हो सकते हैं।

(प्रवचन सारोद्धार के आधार पर)





ध्वजा



कुम्भ

पदा सरोवर

لوت

समुद्र



विमान-भवन



रत्न राशि



निर्धूम अग्नि





(२०३)







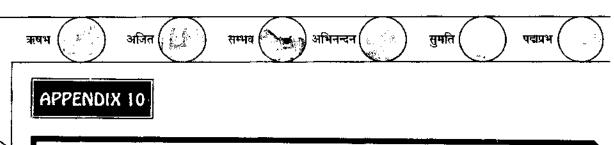












THE DIFFERENCE BETWEEN TIRTHANKAR AND OMNISCIENT (KEWALI)

Depending on mental alertness or dynamism of the practicer there are numerous levels of practicers, viz. Jinakalpi (solitary), Abhigrahdhari (who gives emphasis on specific resolution), Pramatta (partially alert), Apramatta (absolutely alert), Saragi (partially detached), Vitragi (absolutely detached) etc. The first step in this progression is Sadhu (ascetic) and the last is Vitrag, Tirthankar and Kewal Jnani (omniscient). Although there is no difference in the level of knowledge of a Tirthankar and an omniscient, the status of Tirthankar has its own importance. It has its own attributes and recognition. The difference between these two states of highest purity are as follows—

- 1. In a Tirthankar there is precipitation of the Tirthankar-nam-karma. This is absent in case of common omniscient.
- 2. For two earlier births a Tirthankar necessarily acquires right-perception. It is not a rule for a common omniscient.
- 3. A Tirthankar while in the womb has Avadhi Jnan (all knowledge of the physical world). It is not a rule for a common omniscient.
- 4. The mother of a Tirthankar has fourteen great dreams at the time of conception) It is not so in the case of a common omniscient.
- 5. A Tirthankar is always a male, the case of Mallinath being an unique exception. For a common omniscient this rule does not apply.
- 6. A Tirthankar is not breast-fed; whereas a common omniscient (Kewali) is.
- A Tirthankar gives charity for one year immediately before Diksha, as a rule. A
 Kewali does not necessarily.
- 8. A Tirthankar does not give discourse before attaining omniscience, he may however, answer a question. A Kewali does give discourses even as a common ascetic.
- 9. In a Tirthankar's life there are five auspicious events. It is not so in case of a Kewali.
- A Tirthankar acquires Manahparyav Jnan immediately after his Diksha, A Kewali does not.
- 11. A Tirthankar is self-enlightened. A Kewali is not necessarily.
- 12. Before his Diksha a Tirthankar is formally asked for that by the gods. For Kewali no god arrives.
- A Tirthankar establishes the four pronged religious organisation or ford; not a Kewali.
- 14. A Tirthankar has a religious order; not a Kewali.

Illustrated Tirthankar Charitra

15. The principal disciples of a Tirthankar are Ganadhars. A Kewali's disciples are not.

208)

सचित्र तीर्थंकर छरित्र

विमल अनन्त अर्थ अर्थ अर्थ अर्थ अर्थ







गज



वृषभ



लक्ष्मी



पुष्पमाला

____ चन्द्र

— सूर्य



चन्द्रप्रभ

सुदिधि



शीतल





वासुपूज्य



- 17. A Tirthankar has thirty four unique attributes; not a Kewali.
- 18. A Tirthankar's speech has thirty five unique attributes; not a Kewali's.
- 19. A Tirthankar in his progression to purity does not touch the I, II, III, V and XI Gunasthans (the specific stages on the path of purity); whereas a Kewali may touch all Gunasthans except the XI.
- 20. A Tirthankar does not have Kewali-Samudghat (a special process of spiritophysical transformation); a Kewali has.
- 21. A Tirthankar is born in the Kshatriya caste. A Kewali may be from any and all castes.
- 22. A Tirthankar has Sam-chaturasra Samsthan (one of the six types of anatomical structures). A Kewali may have any of the six.
- 23. The minimum and maximum age of a Tirthankar is 72 years and 8.4 million Purvas respectively. In case of a Kewali it is 9 years and 10 million Purvas.
- 24. The height of a Tirthankar may be between 7 Haath (about seven feet) and 500 Dhanush (about 2000 feet). A Kewali is between 2 Haath and 20 feet.
- 25. A Tirthankar may exist only in fifteen specific Karma-bhumi's (the worlds of action). A Kewali may exist anywhere in the two and a half continents.
- 26. A Tirthankar is always self initiated. A Kewali may also be initiated by others.
- 27. A Tirthankar exists only in the third and fourth parts of the six part half cycle of time. A Kewali exists generally in the fourth part, however, one born in the fourth part may attain the status during the fifth part also.
- 28. Two Tirthankars never happen to meet each other; whereas Kewalis do.
- 29. The minimum number of Tirthankars existing at one time is twenty and maximum is 170. For Kewali's these numbers are 20 million and 90 million.
- 30. The Ganadhars create the twelve canons based on Tirthankar's preachings. This is not so in case of a Kewali.
- 31. A Tirthankar does not face any afflictions after he becomes an omniscient. A Kewali may have to face.
- 32. A Samavasaran (divine pavilion) is created for a Tirthankar; not for a Kewali.
- 33. The first discourse of a Tirthanker is never a failure; it is not necessarily so in case of a Kewali.
- 34. The soul of a Tirthankar always descends from the dimension of gods or ascends from hell. The soul of a Kewali may come from any of the four dimensions.
- 35. In case of a Tirthankar the Vedaniya Karma (the Karma of sufference) is of goodbad quality and the remaining non-vitiating Karmas are of exclusively good quality. In case of a Kewali only the Ayushya Karma (age determining) is of exclusively good quality, the remaining three being good-bad.
- 36. Only worthy souls arrive in the assembly of a Tirthankar; whereas in a Kewali's assembly even unworthies may come.
- 37. There is only one Tirthankar in one specific area. Kewali's may be many.

(according to Pravachan Saroddhar)

परिशिष्ट १०

(२०५)

Appendix 10







मृनिसुव्रत











महावीर



ध्वजा







समुद्र



विमान-भवन

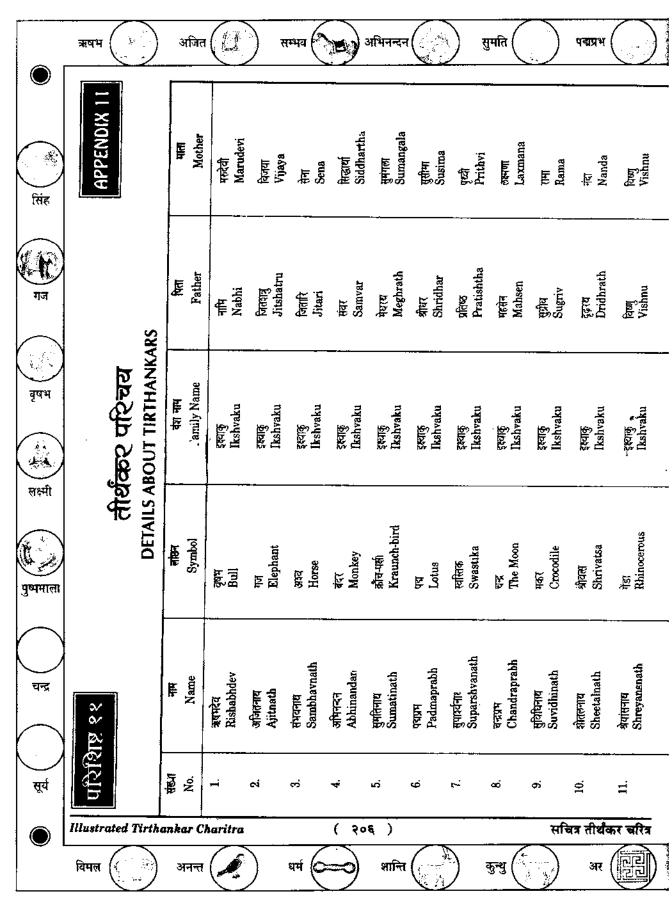


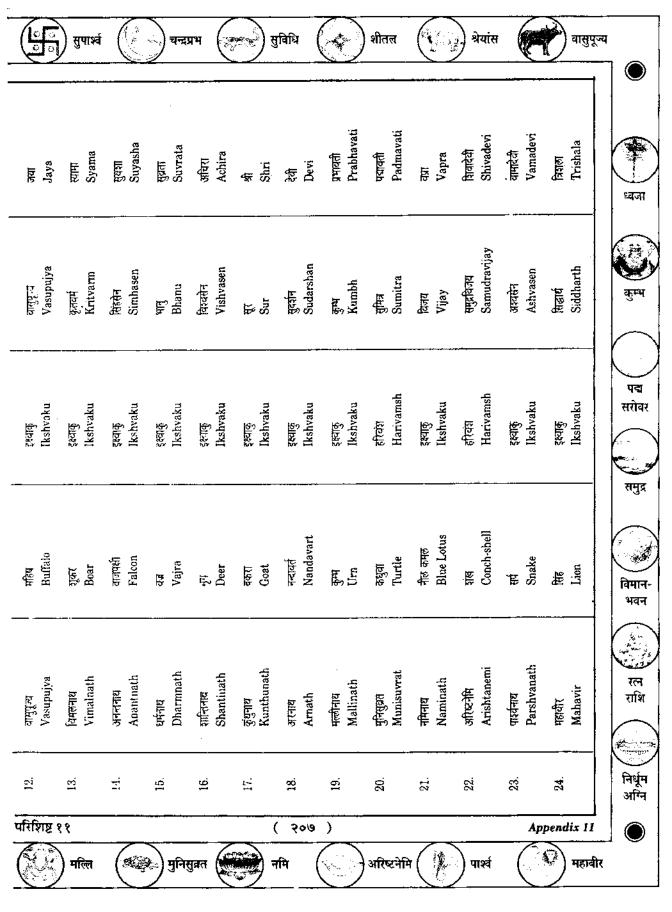
राशि



अग्नि







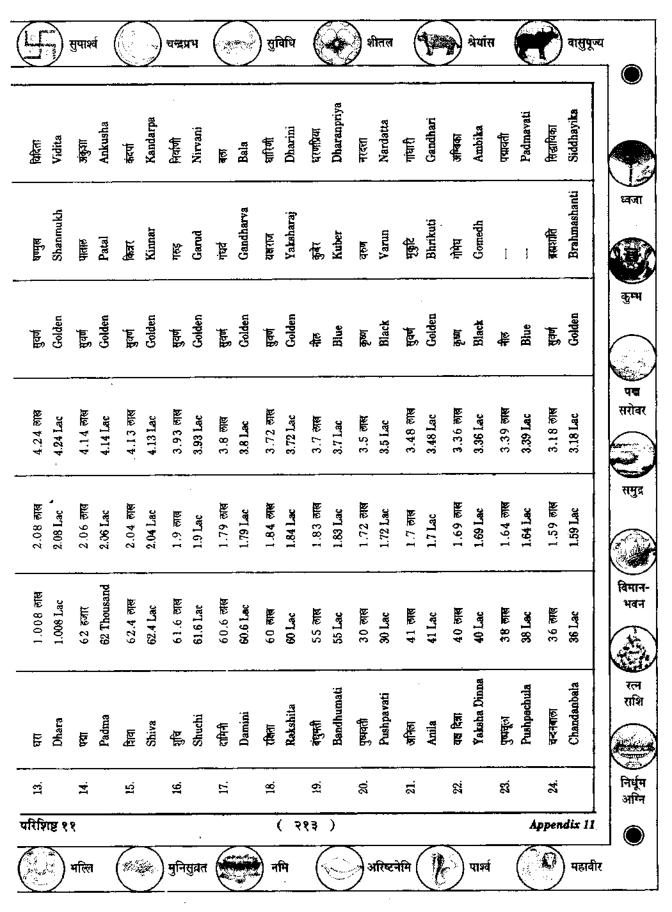
	ऋषभ (अजित () सम्भ	a Com	अभि-	ान्दन		सुमति (पद्मप्रभ	
	क्रान स्थान क्रान स्थान Place of Enlightenment Date of Enlightenment	12-11-11	101111	8—II—\$	10—II—14	1II11	1—[15	12—11—6	12—II—7	8—1—3	10—11—14	11—11—15	11-1-2
सिंह	द्वान स्थान Place of Enlightenment	युरिमताल Purimtal	अयोध्या Ayodhya	. सावत्यी Savathi	अयोध्या Ayodhya	अयोध्या Ayodhya	कीशांबी Kaushambi	वाराणकी Varanasi	चन्द्रपुरी Chandrapuri	काकदी Kakandi	भद्दिलपुर Bhaddilpur	सिंहपुरी Simhapuri	चमापुरी Champapuri
मज	cten filte Date of R. Annoiation	1-11-8	11119	9—1—15	11—12	2-1-9	8—II—13	3—1—13	10—II—13	9-II-8	11-11-12	12-11-13	12—1—14
वृषभ	जन्म तिथि Date of Birth	1-11-8	1118	91-14	11-1-2	2I8	8-11-12	3-1-12	10-II12	9II5	11—11—12	12—11—12	- 12-11-14
तक्ष्मी	जन्म मूमि Place of Birth	विनीता Vinita	विनीला Vinita	सम्बन्धी Savathi	विनीमा Vinita	विमीता Vinita	कौशांवी Kaushambi	वाराणसी Varanasi	बन्द्रपुरी Chandrapuri	काकरी Kakandi	भहिःजुर Bhaddilpur	सिंहपुरी Simhapuri	क्यापुरी Champapuri
पुष्यमाला	च्यवन सिधि Date of Descent	4-11-4	2-1-13	12-1-8	214	5-1-2	11118	6—11—8	1—II—5	12II9	2116	3II8	3-1-9
चेन्द्र	च्यवन स्थान Source of Descent	सर्वायंतिस्ड Sarvarthsiddha	विजय Vijay	सत्तम ग्रैयेयक Seventh Graiveyak	जयत Jayant	जयंत Jayant	नवम ग्रैवेयक Ninth Graiveyak	षञ्ज ग्रैवेयक Sixth Graiveyak	वैजयन Vaijayant	ऑनत Anat	प्राणत Pranat	अच्युत Achyut	प्राण्त Pranat
सूर्य	44 44 5.0° 5.0° 5.0° 5.0° 5.0° 5.0° 5.0° 5.0°	ı-i	c3	eró		ည်	ý	£-;	∞i 	6	10.	;	21
	Illustrat	ed Tirtho	inkar Ch	aritra		(२०८)	Th.			चित्र तीर्थ	कर चरित्र
	विमल (र्		अनन्त () धर्म) श	र्गित 🐙	<u>**)</u>	कुन्ध (अर	

्री सुपा सुपा	र्श्व 🤇	चन्द्रप्र	म ्	्रे सुन्	वेधि (शीत	ल ((F 3)	श्रेयांस	वासुपूज्य	
10-I-6 2-II-14	10—1—15	10-1-9	8-1-12	9-11-11	12—11—12	- - - - - - - - - - - -	7—II—15	1-11-4	2—11—10	= कार्तिक, ९ = मंगसर,	adh, 5 ≈ Shravan,	
कम्पिलपुर Kampilpur अयोध्या	Ayodhya एलपुरी Ratnapvri	हस्तिनापुर Hastinapur हस्तिनापुर	Hastinapur मिषिला Mithila	मधुरा Mathura	राजगृह Rajgriha	मधुरा Mathura	मिरनार Girnar	वाराणसी Varanasi	ऋजुबालुका नदी Rijubaluka River	भाद्रपद, 7 = अस्तोज, 8 =	दूसरी सख्या पक्ष की है-शुक्क पक्ष = 1, कृष्ण पक्ष = II। तीसरी संस्या । से 15 तिरियों की है। In the mention of dates the first number indicates month—1 = Chaitra, 2 = Vaishakh, 3 = Jyeshtha, 4 = Ashadh, 6 = Bhadrapad, 7 = Asoj, 8 = Kartik, 9 = Mangsar, 10 = Paush, 11 = Magh, 12 = Falgun. The second number indicates the fortnight—Bright half of the month = 1, Dark half of the month = II.	গ্রনা
11-I-4 2-II14	11—1—13	3—II—14	9—[—]	9—1—11	12~1~12	4—II—9	9	101111	9—II—10	5 = श्रीवण, 6 =	2 = Vaishakh, 3 = Falgun, half of the month = I	3 5"4
11-1-3	1113	3-II-13 2-II-14	9-1-10	9111	3—II—8	5II8	5—1—5	10-11-10	1—II—13	3 = ज्येष्ठ, 4 = आषाद,	onth—1 = Chaitra, ush, 11 * Magh, 12 = he month = 1, Dark∣	पदा सरोवर
कम्पिल्युर Kampilput विनीता	Vinita रालपुरी Ratnapuri	हस्तिनापुर Hastinapur हस्तिनापुर	Hastinapur हस्तिनपुर Hastinapur	मिथिला Mithila	राजगृह Rajgriha	मधुरा Mathura	सीतुर Sauripur	वाराणसी Varanasi	शत्रियकुण्ड Kshatriyakund	, 2 = दैशाख,	दूसरी संख्या पक्ष की है-धुक्क पक्ष = 1, कृष्ण पक्ष = II। तीसरी संख्या । से 15 तिरियों की है। In the mention of dates the first number indicates month—1 = Chaitra, 2 = Vaishakh, 3 = 6 = Bhadraped, 7 = Asoj, 8 = Kartik, 9 = Mangsar, 10 = Paush, 11 = Magh, 12 = Falgun. The second number indicates the fortnight—Bright half of the month = 1, Dark half of the month = II The third number indicates the dates from 1 to 15.	समुद्र
2-1-12	212	6-11-7	12—1—2	12—1—4	5—1—15	41-15	8—II—I2	1-II-4	416	प्रथम संख्या माह की है-। गए, 12 = फाल्युन।	दूसरा सख्या पक्ष की हदुक्ल पक्ष = 1, कृष्ण पक्ष = 11। तीसरी संख्या 1 से 15 तिरियों की है। In the mention of dates the first number indi 6 = Bhadrapad, 7 = Asoj, 8 = Kartik, 9 = Mangsar The second number indicates the fortnight—Brigh The third number indicates the dates from 1 to 15.	विमान- भवन
सहसार Sahasrar प्राथत D	rranat विजय Vijay	सर्वाधीसद्ध Sarvarthsiddha सर्वाधीसद्ध	Sarvarthsiddha सर्वाधीसङ Sarvarthsiddha	जयत Jayant	अपराज्सि Aparajit	प्राणत Pranat	अपराजित Aparajit	प्राणत Pranat	प्राणत Pranat	1	Į'	स्ल गृशि
13. 13.	15.	16.	18.	.91		21.	22.	23.	75	.: بات	Note :	निर्धूम अग्नि
परिशिष्ट ११ मिल्ल		🎉) मुनिसुब	па (Май	्र निम	(२० ^९	()	्रे अरिष्ट	——— :नेमि (पार्श्व	Appendix 11	

	ऋषभ 🤇	X ()	अजित 🕞		सम्भव (र	(ES)	अभिनन्दन (सुमति		पद्मप्रभ	
	न्यवारी की संख्या Number of Disciples Number of Ascetics	84 हजार 84 Thousand	1 लाख 1 Lac	2 सम्ब 2 Lac	3 लाख 3 Lac	3.2 लाख 3.2 Lac	3.3 लाख 3.3 Lac	3 लाख 3 Lac	2.5 मास 2.5 Lac	2 ores	ा अध 1 Lac	84 Fhousand
सिंह	want of then Number of Disciples	84	95	102	116	100	107	96	93	80	81	9.4
गज	puri mut Chief Disciple	पुण्डरीक Pundarik	सिंहसेन Simhasen	चार Charu	दजनाथ Vajranabh	चामर Chamar	सुवत Suvrat	each Vidarbh	दत Datta	वराहक Varahak	आम्द Anand	गोह्यभ Goshubh
वृ षभ	Age Age	84 तास पूर्व 84 Lac Purva	72 हास पूर्व 72 Lac Purva	60 लास पूर्व 60 Lac Purva	50 लास पूर्व 50 Lac Purva	40 ভাৰ দুৰ্ব 40 Lac Purva	30 लास पूर्व 30 Lac Purva	20 लास पूर्व 20 Lac Purva	10 लास पूर्व 10 Lac Purva	2 लास पूर्व 2 Lac Purva	ा हास पूर्व 1 Lac Purva	84 Nara क्य 84 Lac Years
लक्ष्मी	Beriod of Practices	1,000 वर्ष 1,000 Years	12 av 12 Years	14 वर्ष 14 Years	18 वर्ष 18 Years	20 avf 20 Years	6 माह 6 Months	9 महि 9 Months	3 मह 3 Months	4 महि 4 Months	3 मह 3 Months	2 Tife 2 Months
पुष्पमाला	Prefer Rifte Date of Nirvana	11—II—13	15	1-1-5	2-1-8	1-1-9	9—II—11	12-11-2	6-117	6-1-9	2—II—2	5-11-3
यद	Place of Nirvana	अन्द्रपद गिरि Ashtapad Mount	सम्नेतशिक्षर Sammetahikhar	सम्पेतशिक्षर Sammetshikhar	सम्मेतिशवर Sammethikhar	सम्मेतीशक्षर Sammetshikhar	सम्मेतिशिखर Sammetshikhar	समेतशिखर Sammetshikhar	सम्मेतशिखर Sammetshikhar	समेतीशवर Sammetshikhar	सम्पेतशिषर Sammetshikhar	समेतशिक्षर Sammetshikhar
सूर्य	7 (1 th	₽ -i	67	හ	4	sci	ý	r-:	æi	க்	10.	11
	Illustrate	d Tirtha	$\overline{}$	ritra		(२१		- Y		-		कर चरित्र
	विमल 🧐	<u> </u>	अनन्त (धर्म (С	<u></u>	शान्ति (कुन्धु ।	لاک	अर	

	सुपार्श्व		्रे चन्द्रप्रभ		ु सुवि	fü (•)	ीतल	Y) श्रेयांस		बासुपूज्य	7 🙈
72 हजार 72 Thousand	68 हजार 68 Thousand	66 हजार 66 Thousand	64 हजार 64 Thousand	62 हजार 62 Thousand	60 हजार 60 Thousand	50 हजार 50 Thousand	40 हजार 40 Thousand	30 हजार 30 Thousand	20 हजार 20 Thousand	18 हजार 18 Thousand	1 ६ हजार 16 Thousand	14 हजार 14 Thousand	
99	57	20	4 £	36	35	33	28	18	17	::	10	=	ध्यजा
guy guy Subhum	मन्दर Mandar	यशोधर Yashodhar	अftez Arishta	सम्प्रयुध Chakrayudh	kaving Swayambhu	कुम Kumbh	अभीशक Abhikshak	इन्द्र Indra	गुम Shubh	यादम Vardatta	देन Dipna	इन्पूति Indrabhutí	कुम्भ
72 लाख वर्ष - 72 Lac Years	60 ਨਾਥ ਕਾਰ 60 Lac Years	30 तम्ब क्वं 30 Lac Years	10 लाब क्षे 10 Lac Years	i enta ará I Lac Years	9.5 हजार वर्ष 95 Thousand Years	84 हजार वर्ष 84 Thousand Years	5.5 हजार वर्ष 55 Thousand Years	30 हजार वर्ष 30 Thousand Years	10 हजार वर्ष 10 Thousand Years	। हजार वर्ष 1 Thousand Years	100 वर्ष 100 Years	72 Years	पदा सरोवर
) We 1 Month	2 माह 2 Months	3 ad 3 Years	2 ad 2 Years	। वर्ष I Year	16 av 16 Years	3 वर्ष 3 Years	i दिन 1 Day	i i माह ii Months	9 मह 9 Months	54 दिन 54 Days	84 दिन 84 Days	1/2 au	समुद्र
4—1—14	4II7	1-1-5		3—II—13	2-11-1	9—i— 10	12—1—12	3—11—9	2—II—10	4—1—8	2-1-8	8—11—15	विमान- भवन
चमापुरी Champapuri	सम्पेत्रशिखर Sammetshikhar	समेत्रीशहर Sammetshikhar	समेताशवर Sammetshikhar	मम्दाशिखर Sammetshikhar	सम्देतशिखर Sammetshikhar	सम्पेतशिखर Sammetshikhar	समेतशिखर Sammetshikhar	सम्मेतीत्रावर Sammetshikhar	सम्मेतिशवर Sammetshikhar	गिर्मनार Girnar	सम्पेतशिखर Sammetshikhar	पादापुरी Pavapuri	रूल राशि
12.	13.	14.	15.	.91	17.	78.	19,	20.	21.	22.	83	ž	निर्धूम अग्नि
परिशिष्ट १	११				(२११)				Ap	pendix 11	
	मल्लि) मुनिसुद्रत		नि	(<u></u>	ारिष्टनेमि । ———) पार्श्व		महावीर	<u></u> .

	ऋषभ 🤇		अजित (सम्भव		अभिनन	दन 🦪		सुमति 🤇	7.	पद्मप्रभ (
	शासन देवी Goddess of Organisation	चक्रेश्वरी Chakreshwari	अभितवाला Aiithala	gftafft Duritari	काली Kali	महाकाली Mahakali	श्यामा Shyama	शाना Shanta	ygje Bhrikuti	मुतारका Sutaraka	अशोका Ashoka	मानवी Manavi	tign Chanda
िर्सिह	शासन देव Ged of Organisation	मोमुख Gomukh	महायक्ष Mahavaksha	Syya Trimukh	यक्षनायक Yakshanayak	gga Tumburu	कुतुम Kusum	मतंग Matang	विजय Vijay	अजित Ajit	ब्रह्म Brahma	यक्षराज Yaksharaj	कुमार Kumar
TION CONTRACTOR OF THE PARTY OF	शरीर वर्ण Body Colour	सुवर्ण Golden	सुवर्ण Golden	सुवर्ष Golden	gaví Golden	सुवर्ण . Golden	Red .	सुवर्ष Golden	rda White	ada White	tàn White	सुवर्ण Golden	रक Red
ब् षम	आविका संख्या Female Lasig	5.54 सम्ब 5.54 Lac	5.45 सास 5.45 Lac	6.36 हाल 6.36 Lac	5.27 लाख 5.27 Lac	5.16 काख 5.16 Lac	5.05 लाख 5.05 Lac	4.93 लाख 4.93 Lac	4.99 हास 4.99 Lac	4.71 लाख 4.71 Lac	4.58 हास 4.58 Lac	4.48 लाख 4.48 Lac	4.36 eNa 4.36 Lac
तक्ष्मी	त्राथक संख्या Male Laity	3.5 लाब 3.5 Lac	2.98 हम्ब 2.98 Lac	9.93 लाब 9.93 Lac	2.88 लाब 2.88 Lac	2.81 मध्	2.76 end 2.76 Lac	2.57 मन 2.57 Lac	2.5 हाख 2.5 Lac	2.29 सम्ब 2.29 Lac	2.89 明確 2.89 Lac	2.79 हाख 2.79 Lac	2.15 लाब 2.15 Lac
पुष्यमाला	साम्बी संख्या Number of Pemale Ascetics	3 रमस 3 Lac	3.3 लाख 3.3 Lac	3.36 लास 3.36 Lac	6.3 लाख 6.3 Lac	5.3 लख 5.3 Lac	4.2 काल 4.2 Lac	4.3 लाख 4.3 Lac	3.8 लाख 3.8 Lac	1.2 研辑 1.2 Lac	1 लाख 1 Lac	1.03 मस 1.03 Lac	। लाख 1 Lac
चन्द्र	प्रथम साधी Head of Female Ascelies	ब्राह्मी Brahmi	फास्गु Phalgu	स्यामा Shyama	अजिता Ajita	काश्यपी Kashyapi	Rati	सोमा Soma	सुमना Sumana	वार्काण Varuni	सुयभा Suyasha	धारिणी Dharini	धरणी Dharani
सूर्य	## .5g	-i	64	က်	₹	νci	9	7.	∞i	ъ́	10.	===	12.
	Illustrate	d Tirtha	nkar Ch	aritra			२१२) - 	<u> </u>		स्	चत्र तीर्थ	कर चरित्र
	विमल 🦪		अनन्त (धर्म	() शा	नेत (ू		कुन्थु 🤃		अर (





ઘાંરેશિષ્ટ શ્ર



त्रिषष्ठि (६३) शलाका पुरुष

२४ तीर्थंकर, १२ चक्रवर्ती, ९ बलदेव, ९ वासुदेव, ९ प्रतिवासुदेव-ये तिरेसठ व्यक्ति महापुरुष कहलाते हैं। इनमें चक्रवर्ती आदि महापुरुषों के सन्दर्भ में ज्ञातव्य हैं-

चक्रवर्ती-मनुष्य लोक के सबसे बड़े सम्राट को चक्रवर्ती कहते हैं। वे समुचे भरत, ऐरावत अथवा महाविदेह की एक दिजय के स्वामी होते हैं। बत्तीस हजार देशों पर उनका अधिकार होता है। बत्तीस हजार नरेश उनकी आज्ञा शिरोधार्य करते हैं। पच्चीस हजार देवता उनकी सेवा में रहते हैं। नवनिधान व चौदह रत्न के वे स्वामी होते हैं। उनके चौंसठ हजार रानियाँ होती हैं। बीस-बीस हजार सोने-चाँदी की एवं सोलह हजार रत्नों की खानें होती हैं। चौरासी-चौरासी लाख हाथी-घोड़े और संग्रामिक रच होते हैं, छियानवे करोड़ पैदल सेना होती है, निन्यानवे लाख अंगरक्षक होते हैं, सोलह हजार मंत्री होते हैं। उनमें चालीस लाख अष्टापद जितना बल होता है। चक्रवर्ती मनुष्य लोक में जघन्य बीस और उत्कृष्ट एक सी पचास तक हो सकते हैं।

भरत क्षेत्र के इस अवसर्पिणी काल के बारह चक्रवर्ती महापुरुषों के नाम हैं-१. भरत, २. सगर, ३. मधवा, ४. सनत्कृमार, ५. शांतिनाथ, ६. कुंथुनाथ, ७. अरनाथ, ८. सुभूम, ९. पद्म, १०. हरिषेण, ११. ज्यसेन, १२. ब्रह्मदत्ती

बलदेव-बलदेव वासुदेव के मातेर-बड़े भाई होते हैं। छोटे भाई के साथ इनका अत्यधिक स्नेह होता है। इनकी माता चार स्वप्न देखती हैं। इनमें दस लाख अष्टापद की ताकत होती है। चार हजार देवता इनकी सेवा करते हैं। हल-मुसल आदि इनके शस्त्र होते हैं जो हजार-हजार देवों से अधिष्ठित माने गये हैं। अधिक प्रेम होने के कारण दोनों भाई साय ही राज्य करते हैं। वासुदेव की मृत्यु के बाद बलदेव दीक्षा लेकर घोर तपस्यादि द्वारा आत्म-साधना करते हैं फिर कई मोक्ष जाते हैं और कई स्वर्गगामी होते हैं।

वासदेव-वासदेव पूर्व-भव में अवश्य निदान-नियाणा करके नरक या स्वर्ग में जाकर फिर वासूदेव रूप में अवतार लेते हैं। उनके गर्भ में आने पर माता सात स्वप्न देखती हैं। शरीर का वर्ण कृष्ण होता है। बीस लाख अष्टापद जितना बल होता है और प्रतिवासुदेव को मारकर वे त्रिखण्डाधीश बनते हैं। सोलह हजार देश उनके अधीन होते हैं। सोलह हजार नरेश एवं आठ हजार देवता उनकी सेवा करते हैं। उनके सोलह हजार रानियाँ होती हैं। सात रत्न होते हैं जो हजार-हजार देवों से सेवित कहे गये हैं।

प्रतिवासुदेव-प्रतिवासुदेव पूर्व-जन्म में नियाणा करके आते हैं और प्रायः तीन खण्ड के राजा होते हैं। इनकी ऋछि वासुदेव से कुछ कम होती है। ये निश्चित रूप से वासुदेव के हाथ से मारे जाते हैं एवं नरक में जाते हैं।

मनुष्य लोक में बलदेव, वासुदेव व प्रतिवासुदेव जघन्य बीस एवं उत्कृष्ट एक सी साठ हो सकते हैं। इनके परस्पर मिलने के विषय में यह मान्यता है कि तीर्यंकर-तीर्यंकर, चक्रवर्ती-चक्रवर्ती, वासुदेव-वासुदेव तथा वासुदेव-चक्रवर्ती प्राय: कभी नहीं मिल सकते।

(त्रिपष्टिशलाका पुरुष चरित्र)

Illustrated Tirthankar Charitra

(288)

सचित्र तीर्थंकर चरित्र

विमल







सिंह

वृषभ

लक्ष्मी

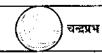


पृष्पमाला

चन्द्र

सूर्य













इस अवसर्पिणी काल में नव-नव वासुदेव, बलदेव एवं प्रतिवासुदेव हुए हैं, जिनके नाम इस प्रकार हैं-

संख्या	बसदेव	वासुद ेव	प्रतिवासुदेव	तीर्यंकर काल
9.	विजय	রি দূ ড্ <u>ত</u>	अश्वग्रीव	श्रेयांस
₹.	अचल	द्विपृष्ठ	तारक	वासुपूज्य
₹.	सुधर्म	स्वयंभू	मेरक	विमलनाथ
٧.	सुप्रभ	पुरुषोत्तम	मधुकैटभ	अनन्तनाय
ц.	सुदर्शन	पुरुषसिंह	निशुम्म	धर्मनाथ
ξ.	नन्दी	पुरुषपुण्डरी क	बलि	अरनाथ व मल्लीनाय के अन्तराल में
Ġ.	नन्दिमित्र	व त	प्रकाद	अरनाय व मल्लीनाय के अन्तराल में
۷.	रामु	नारायण (लक्ष्मण)	रावण	मुनिसुव्रत व निमनाय के अन्तराल में
٩.	.बलमद्र (बलराम)	শ্বীকৃ জ্ঞা	जरासन्ध	नेमिनाय



THE SIXTY THREE GREAT MEN

In the Jain tradition thre are sixty three highly endowed persons who are known as Shalaka Purush or great men. They are 24 Tirthankars, 12 Chakravartis, 9 Baldevs. 9 Vasudevs, and 9. Prativasudevs. Brief descriptions of these great men are as follows—

Chakravarti-The highest monarch in the human world is known as Chakravarti. He reigns over one specific section of any of the three worlds known as Bharat, Airavat, or Mahavideh. The number of countries under his reign is 32,000. He has 32,000 subordinate kings and 25,000 gods in his attendance. He is the owner of nine types of wealth and fourteen types of gems. He has 64,000 queens, 20,000 mines each of gold and silver and 16,000 mines of gems. His army comprises of 8.4 million each of elephants, horses and chariots; 960 million foot soldiers; 9.9 million personal guards; and 16,000 ministers. He has the combined power of 4 million octopeds (a mythical creature). The minimum and maximum number of Chakravartis in all dimensions inhabited by humans are 20 and 150.

The names of twelve Chakravartis of Bharat area during the current descending cycle are-1. Bharat, 2. Sagar, 3. Maghava, 4. Sanat Kumar, 5. Shantinath, 6. Kunthunath. 7. Arnath, 8. Subhum, 9. Padma, 10. Harishen, 11. Jaisen, 12. Brahmadatta.

परिशिष्ट १२

मल्लि

(२१५)

Appendix 12



















ध्वजा







समुद्र



विमान-भवन



रत्न राशि



अग्नि



Vasudev-A Vasudev in his earlier births sheds some specific Karmas and determines to acquire this status. His soul then incarnates either in the heaven or the hell and then is born as Vasudev. At the time of his conception his mother sees seven great dreams. His complexion is dark. He has the strength equivalent to 2 million octopeds and he conquers three continents by killing the Prativasudev. He has 16,000 kingdoms and kings under his subjugation and 8,000 gods in his attendance. He has 16,000 queens and seven gems.

Prativasudev-They also determine their status in their earlier births and are monarchs of three continents. Their powers are slightly lower than that of the Vasudevs. They are necessarily killed by the Vasudevs and go to hell.

The maximum and minimum numbers of Baldev, Vasudev and Prativasudev are 108 and 20. It is believed that as Tirthankar does not meet another Tirthankar, a Chakravarti and a Vasudev also do not meet another Chakravarti and Vasudev respectively. Also a Vasudev does not meet a Chakravarti.

(Tirshashtishalaka Purush Charitra)

The names of nine Vasudevs, Baldevs and Prativasudevs of Bharat area during the present descending cycle are as follows-

S. No.	Baldev	Vasudev	Prativasudev	Tirthankar Period
1.	Vijay	Triprishtha	Ashvagriv	Contemporary to Shreyans
2.	Achal	Dviprishtha	Tarak	Contemporary to Vasupujya
3.	Sudharm	Svayambhu	Merak	Contemporary to Vimalnath
4.	Suprabh	Purushottam	Madhukaitabh	Contemporary to Anantnath
5.	Sudacshan	Purushsimha	Nishumbh	Contemporary to Dharmnath
6.	Nandi	Purushpundarik	Bali	between Arnath and Mallinat
7.	Nandimitra	Datta	Prahlad	between Arnath and Mallinat
.8.	Ram	Narayan (Laxman)	Ravan	between Munisuvrat and Naminath
9.	Balbhadra	Krishna	Jarasandh	Contemporary to Neminath
	(Balram)			

सचित्र तीर्थंकर चरित्र (२१६) Illustrated Tirthankar Charitra

विमल













सूर्य

गज

वृष्यभ

लक्ष्मी

पुष्पमाला

चन्द्र



सुपार्श्व













वासुपुज्य

परिशिष्ट १३

तीर्थंक२ का शारीरिक बल : एक औप्रमिक आकलन

प्राणी में छिपी हुई अनन्त क्षमताओं का आविष्करण तीर्यंकरत्व है। तीर्यंकर अनन्त बली होते हैं। तीर्यंकर की शारीरिक क्षमताओं के गणितीय समीकरण प्राचीन ग्रन्थों में इस प्रकार मिलते हैं-

- बारह योद्धाओं में जितना शरीर बल होता है, उतना एक वृषभ (साँड़) में होता है।
- दस वृषभों में जितना बल होता है, उतना एक घोड़े में होता है।
- बारह घोड़ों में जितना बल होता है, उतना एक महिष (मैंसे) में होता है।
- पन्द्रह भैंसी में जितना बल होता है, उतना एक हाथी में होता है।
- पाँच सी हाथियों में जितना बल होता है. उतना एक केशरी सिंह में होता है।
- दो हजार केशरी सिंही में जितना बल होता है, उतना एक अष्टापद में होता है।
- दस लाख अष्टापदों में जितना बल होता है, उतना एक बलदेव में होता है।
- दो बलदेवों में जितना बल होता है, उतना एक वासुदेव में होता है।
- दो वासदेवों में जितना बल होता है, उतना एक चक्रवर्ती में होता है।
- एक लाख चक्रवर्तियों में जितना बल होता है, उतना एक नागेन्द्र में होता है।
- एक करोड़ नागेन्द्र में जितना बल होता है, उतना एक इन्द्र में होता है।
- असंख्य इन्द्रों में जितना बल होता है, उसकी तुलना तीर्यंकर की कनिष्ठा (चिड्डी) अंगुली से भी नहीं की जा सकती।

(जैन धर्म का मौलिक इतिहास, भाग १, पू. ५६३) देखी विशेषायश्यक भाष्य मूल गाथा ७०-७१



ध्वजा





समुद्र



भवन



राशि



निर्धूम अग्नि

परिशिष्ट १३

(289)

Appendix 13







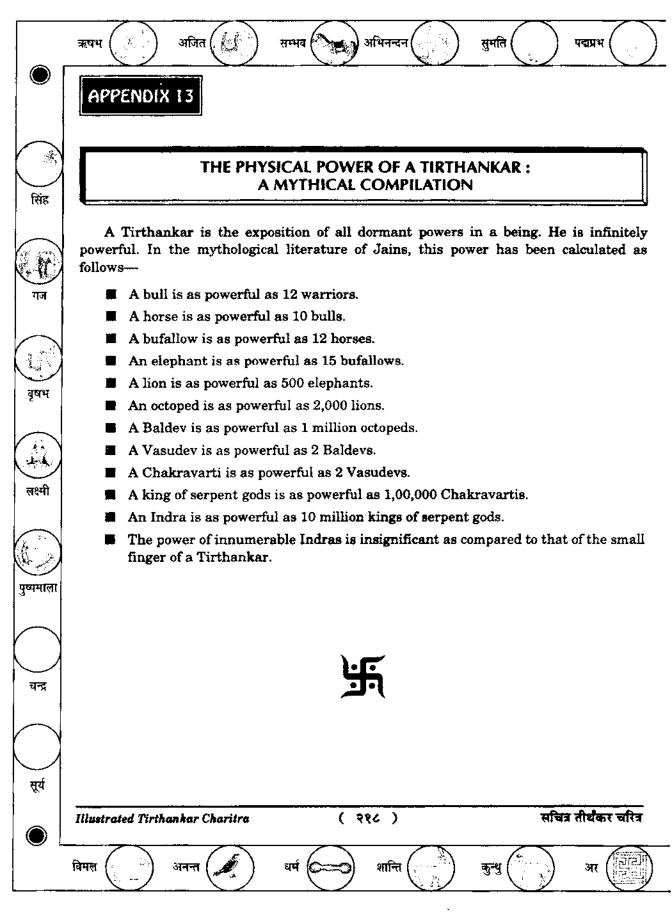
















चन्द्रप्रभ





सविधि

शीतल





परिशिष्ट १४

तीर्थंकरों की समवसरण रचना

[आज के युग में विज्ञान की विभिन्न शाखाओं की मौति सभा विज्ञान भी विकसित हुआ है। एक विशाल प्रवचन समा में लाखों मनुष्यों के आने, बैठने और शान्तिपूर्वक प्रवचन सुनने और वापस शान्तिपूर्वक जाने की व्यवस्था करना-एक बहुत बड़ी व्यवस्थाप्रवण बृद्धि का कार्य है। इस व्यवस्था के लिए बड़े-बड़े विशेषज्ञ अपनी कुशलता का प्रदर्शन करते हैं। फिर भी विशाल समाओं में भगदड़ मचती है, अव्यवस्था में सैकड़ों लोग दबे कुचले जाते हैं। हजारों की भीड़ की नियंत्रित करने में पुलिस के भी हाथ-पैर ढीले पड जाते हैं।

आज से हजारों वर्ष पूर्व तीर्थंकरों के समवसरण की रचना होती थीं, जिसमें लाखों मनुष्य ही नहीं किन्तु अगणित देव और **तिर्यंच** भी आते थे।

एक योजन अर्थात् ४ कोस (१२ किलोमीटर) लगभग के क्षेत्रफल में सभा-मंडप में अगणित देव, मनुष्य व तिर्यंचों का आगमन, सभी का अपने-अपने नियत स्थान पर आसन ग्रहण करना, वाहनों के लिए पार्किंग व्यवस्था तथा प्रवचन सनकर तीर्थंकरों का प्रसाद ग्रहण कर वापस शान्तिपूर्वक जाने की यातायात व्यवस्था का व्यवस्थित और वैज्ञानिक वर्णन जो प्राचीन निर्युक्ति आदि ग्रंथों में मिलता है वह सचमुच आश्चर्यकारक होने के साथ ही उस युग की विकसित कशन व्यवस्था-बृद्धि का भी परिचायक है। तीर्थंकरों के समवसरण की रचना के विषय में यहाँ संक्षिप्त जानकारी प्रस्तृत है।

तीर्थंकरों के समवसरण का दर्शन. चिन्तन और अनुप्रेक्षण करने से भावना, श्रद्धा, प्रतीति और सम्यक्त्व की स्पर्शना निर्मल एवं सुदृढ़ होती है। वीतराग तीर्थंकरों के सान्निध्य में बैठने (उपासना) से, उनके दर्शन और प्रवचन-श्रवण से उनके भामण्डल तथा विविध अतिशयों के प्रभाव से मनुष्यों और देवों के ही नहीं, तिर्यंचों के जीवन में भी शुभ भावों का प्राद्भीय हो जाता है। परस्पर यिरोधी प्रकृति वाले तिर्यंचों और मानवों में परस्पर वैर वृत्ति और क्रूर वृत्ति शान्त हो जाती है। यहाँ रोग, शोक, उपद्रव, भय, संकट आदि भी निकट नहीं आते। इतना ही नहीं तीर्थंकर के प्रवचन श्रवण से ज्ञान, विज्ञान आदि से लेकर क्रमशः संवर, निर्जरा और मोक्ष की उपलब्धि का भी अलभ्य लाभ मिलता है।

समवसरण में भगवान के दर्श-वन्दन-श्रवणादि का महान् फल

भगवान महावीर का समवसरण में पर्दापण का वृत्तान्त सुनकर उनके दर्शन श्रवणादि का महाफल बताते हुए कहा है- 'हे देवानुष्रियो ! यह हमारे लिए महाफल का कारण है। तथारूप अरिहन्त भगवन्तों के नाम-गोत्र का सुनना भी महाफलरूप हैं, फिर उनके अभिगमन (सन्मुख जाने), वन्दन, नमन, परिपृच्छा, पर्युपासना का तो कहना ही क्या ? आर्य सद्धर्म के एक भी स्वयन का श्रवण बहुत बड़ी बात है। उनका वन्दन, नमनादि इस भव में, पर-भव में, जन्म-जन्मान्तर में, हमारे लिए हितकर, सुखकर, शान्तिप्रद निःश्रेयसरूप-मोक्षप्रद होगा।"?

परिशिष्ट १४

(२१९)

Appendix 14











अरिष्टनेमि





महावीर



सरोवर



समुद्र



भवन



राशि



अग्नि

^{&#}x27;'सवणे नाणे वित्राणे, पच्चक्खाणे य संजमे। अणण्हए तवे चेव वींदाणे अकिरिया सिद्धि।'' -भगवती सूत्र, श. २३-५/१११

ममणे भगवं महावीरे 💛 इह समोसढे 🤍 तं पहाफलं भी देवाणृपिया ! तहारूवाणं अरहंताणं भगवंताणं णाम-गीयस्स वि सवणयाए, किमंग एण अभिगमण-वंदण-णमंसण-चंडपुच्छण-पञ्जूबासणयाए ? एगस्स वि आरियस्स धम्मियस्स सुवयणस्स सवणयाए, किमंग पुण -औपपातिक सुत्र, सु. ३८ विउत्तस्स अङ्गस्स गहणयाए?

जिज्ञासा उठती है, समवसरण क्या है? उसकी रचना कैसी होती है? उसकी रचना कौन करते हैं? तीर्यंकर भगवान समवसरण में कब और कितने समय तक उपदेश देते हैं? आदि विषयों का सरस सन्दर समाधान हमें आगमों और उनकी निर्युक्ति, वृत्ति एवं भाष्यों के आधार पर प्राप्त होता है।

समवसरण तीर्थंकर भगवन्तों की धर्म-परिषद् होती है। समवसरण का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ है "सम्यक् रूप से एक जगह गमन अर्थात मिलन जहाँ हो वह समवसरण है। अथवा नाना परिणाम वाले जीव जहाँ सम्यकु प्रकार से आकर एकत्रित होते हैं, वह समयसरण है।" आशय यह है कि तीर्थंकर भगवान की धर्मसभा में विभिन्न कोटि के भव्य आत्माओं-विशेषतः मनुष्यों, तिर्यंचों और देवों का दर्शन-श्रवणादि के लिए एकत्र होना समवसरण है। वर्तमान में लोकसभा में जैसे विभिन्न राज्यों के प्रतिनिधि एकत्र होकर विभिन्न राज्यों की समस्याओं के विषय में विचार-विमर्श करते हैं, निर्णय लेते हैं, उससे भी अनेक गुणी विशाल और विभिन्न कोटि के जीवों की धर्मसभा होती है-समवसरण।

समवसरण की देवादिकृत विशिष्ट रचना

सिंह

वृषभ

लक्ष्मी

पुष्पमाला

चन्द्र

सूर्य

जिस ग्राम, नगर या क्षेत्र में अभूतपूर्व समवसरण की रचना करनी होती है, वहाँ पहले महर्द्धिक देव अभियोग्य देवों को सुचित करते हैं, तब वे अभियोग्य देव वहाँ एक योजन परिमण्डल में व्याप्त भूमि को संवर्तक वायु से साफ व समतल करके अचित्त गन्धोदकपूर्ण बादलों से सुगन्धित जलवृष्टि करते हैं, तत्पश्चात् उस भूमि को सुगन्धित बनाने के लिए अचित्त फूलों की वर्षा करते हैं। फिर चन्द्रकान्त, इन्द्रनील आदि रत्नों से योजनपरिमित भूमि को चित्रित कर देते हैं। तत्पश्चात् व्यन्तरदेव चारों दिशाओं में मणि, कनक और रत्नों से जटित (मुख्य द्वार) बनाते हैं। उन पर छत्र, स्तम्भपुत्तिका, मकर-मुख ध्वज तथा स्वस्तिकादि चिन्हों की रचना करते हैं।

तत्पश्चात सरेन्द्रगण वैक्रिय-शक्ति से विभिन्न रत्नों से निर्मित तथा मणि, काञ्चनयुक्त कंगरों से सशोभित तीन श्रेष्ठ प्राकार (परकोटे) बनाते हैं। इन तीनों में से बाह्य प्राकार चाँदी का होता है, जो भवनपतियों के इन्द्र बनाते हैं। मध्य का प्राकार सोने का होता है. जो ज्योतिष्क देवेन्द्र बनाते हैं और अन्तरंग प्राकार रत्नमय होता है जिसकी रचना वैमानिक देवेन्द्र करते हैं। इन तीनों प्राकारों पर कंगूरे (कपिशीर्षक) भी पूर्ववत् भवनपतीन्द्र, ज्योतिष्केन्द्र तथा वैमानिकेन्द्र क्रमशः स्वर्ण-रत्न-मणियों के बनाते हैं तथा सर्वरत्नमय द्वार भवनपतिदेव बनाते हैं। तदनन्तर चारों ओर सभी दिशाओं में काला अगर, कुन्दरुक आदि से मिश्रित मनोरम गन्ध से युक्त धूपघटिका व्यन्तरदेव स्थापित करते हैं।

यह सब रचना करने के बाद ईशानदेव रत्नमय आभ्यन्तर प्राकार के बहमध्य देश भाग में भगवान के प्रमाण से बारह गुणा बड़ा श्रेष्ठ अशोक वृक्ष तथा उसके नीचे सर्वरत्नमय पीठ बनाते हैं। पीठ के ऊपर चैत्य वृक्ष फिर उसके नीचे देवच्छन्दक का निर्माण करते हैं। उसके आभ्यन्तर में पादपीठ सहित स्फटिकमय सिंहासन का निर्माण करते हैं। उस पर क्रमशः ऊपर-ऊपर तीन छत्र होते है। सिंहासन के दोनों पार्श्व में बलीन्द्र और चामरदेव चामर हाथ में लिए खडे रहते हैं। व्यन्तरदेव सिंहासन के आगे कुछ दूरी पर स्वर्ण-कमल पर धर्मचक्र स्थापित करते हैं। तीर्थंकर प्रभु के चरणों में आने बाले सभी देव उत्कृष्ट हर्ष-उल्लास से प्रेरित होकर सिंहनाद करते हैं।

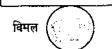
ऐसा नियम है कि जिस समबसरण में सभी देवेन्द्र आते हैं, वहाँ इसी प्रकार समबसरण की रचना उक्त प्रकार से पृथक-पृथक देव करते हैं, किन्तु जहाँ विशिष्ट ऋद्धिमान, इन्द्र, सामानिक आदि आते हैं, वहाँ प्राकारादि की रचना वे ही करते हैं, यदि वे नहीं आते हैं तो भवनपति आदि दूसरे देव समवसरण की रचना करते भी हैं, नहीं भी करते।

- समवसरण से सम्बन्धित वर्णन आवश्यक निर्यक्ति, मलयगिरि वृत्ति, बृहत्कल्पभाष्य तथा समवसरण कल्प में हैं।
- (अ) सु गती सम्यगेकत्र गमन मिलनं समवसरणम्-ओधनिर्युक्ति। (आ) समवसरन्ति नाना परिणामा जीवाः येषु तानि समवसरणानि -भगवती, श. ३०, उ. १। यत्र भगवान धर्ममाचष्टे तत्र समवसरणम्-अभिधान, भा. ७, पृ. ४६६।
- 'पंचाशक' तथा 'समवसरणस्तव' में समवसरण भि को शुद्ध, सगन्धित एवं समतल करने हेत् वायुकुमार, मेघकुमार एवं क्रतुकुमार -पंचाशक, गा. १३, समवसरणस्तव, गा. ३ आदि देव प्रवृत्त होते हैं, ऐसा उल्लेख है।

Illustrated Tirthankar Charitra

(२२०)

सचित्र तीर्थंकर चरित्र

























ासुपुज्य

समवसरण में तीर्थंकरादि का प्रवेश व बैठने की मर्यादा

इस प्रकार समयसरण की रचना सम्पन्न हो जाने पर सूर्योदय होने पर प्रथम पौरुषी में अथवा पिछली पौरुषी आ रही हो, उस समय तीर्थंकर भगवान पूर्व द्वार से समबसरण में प्रवेश करते हैं। वे देवपरिकल्पित दो सहस्रदल कमल पर पैर रखते हुए चलते हैं। भगवान के चलने के समय आगे और पीछे उस समय सात-सात पद्म स्थापित हो जाते हैं। तत्पश्चात् भगवान पूर्व द्वार से प्रविष्ट होकर चैत्य वृक्ष को आदिक्षणा-प्रदक्षिणा करके पूर्व दिशा में मुख करके सिंहासन पर विराजमान हो जाते हैं।

शेष तीन दिशाओं में सिंहासनादि से युक्त भगवान की आकृति जैसी ही सुन्दर देव-निर्मित प्रतिकृतियाँ स्थापित हो जाती हैं। भगवान चारों तरफ दर्शकों को दिखाई देते हैं।

भगवान के पादमूल (चरणों के समक्ष) में ज्येष्ठ गणधर प्रणाम करके बैठ जाते हैं। वे ज्येष्ठ गणधर या अन्य गणधर दक्षिण-पूर्व विदिशा में भगवान के न अति दूर न अति निकट वन्दन करके बैठते हैं। शेष गणधर भगवान को वन्दना करके उनके आगे और पार्श्व भाग में बैठ जाते हैं।

तदनन्तर केवली आदि अतिशय ज्ञानी मुनि पूर्व द्वार से प्रवेश करके भगवान की तीन बार प्रदक्षिणा करके 'नमस्तीर्थाय' कहकर प्रथम गणधर और शेष गणधरों के पीछे बैठ जाते हैं तथा जो बाकी के मनःपर्यवज्ञानी, अवधिज्ञानी, चतुर्दशपूर्वधर, त्रयोदशपूर्वधर, यावत् दशपूर्वधर, खेलीषधि आदि लब्धिधारी, अतिशायी मुनिवर होते हैं, वे भी पूर्व द्वार से प्रविष्ट होकर भगवान को तीन बार प्रदक्षिणा व वन्दना करके 'नमस्तीर्थाय', 'प्रथमगणधराय नमः', 'केविलिभ्यो नमः', 'अतिशायिभ्यः साधुभ्यो नमः', इस प्रकार बोलकर अतिशायी साधुओं के पीछे बैठ जाते हैं।

इसके पश्चात् श्रमणियाँ पूर्व द्वार से प्रविष्ट होकर तीर्थंकर भगवान को तीन वार प्रदक्षिणा व वन्दना करके तीर्थं, केवली, अतिशायी श्रमण तथा शेष साधुओं को नमन करके वैमानिक देवों के पीछे खड़ी रहती हैं, बैठती नहीं हैं। इसके पश्चात् वैमानिक देवियाँ भी पूर्व द्वार से प्रविष्ट होकर भगवान को प्रदक्षिणा एवं वन्दना करके तथा तीर्थं, केवलज्ञानियों, अतिशायी एवं निरितशायी साधुओं को नमन करके निरितशायी साधुओं के पीछे खड़ी रहती हैं। इसी तरह भवनपित देवियाँ, व्यन्तर देवियाँ और ज्योतिष्क देवियाँ भी दक्षिण द्वार से प्रविष्ट होकर तीर्थंकर प्रभु को तीन वर्षर प्रदक्षिणा व वन्दना करके दक्षिण-पश्चिम दिशा (नैऋत्यकोण) में क्रमशः एक के पीछे दूसरी, तीसरी खड़ी रहती हैं।

तत्पश्चात् पूर्वोक्तः क्रम से तीर्थंकर, तीर्थ, गणधर से लेकर निर्रातशायी साधुओं तक को नमन करती हुई वैमानिक, भवनपति, ज्योतिष्क एवं व्यन्तर देवों की देवियाँ अपने-अपने स्थान पर चली जाती हैं।

तत्पश्चात् पश्चिम द्वार से भवनपति, ज्योतिष्क और व्यन्तरदेव प्रवेश करके भगवान को प्रदक्षिणा और वन्दना करके तीर्थंकर, केवली, अतिशायी और शेप साधुओं को नमस्कार हो, यह कहकर अपने नियत स्थान पर उत्तर-पश्चिम दिशा में (भवनपति ज्योतिष्क और वाणव्यन्तर) क्रम से एक के पीछे एक बैठ जाते हैं तथा उत्तर द्वार से वैमानिक देव, मनुष्य पुरुष और स्त्रियाँ प्रवेश करके भगवान को तीन बार प्रदक्षिणा करके पूर्ववत् तीर्थंकरादि को वन्दन-नमस्कार करके उत्तर-पूर्व दिशा में अपने-अपने नियत स्थान पर क्रमपूर्वक बैठ जाते हैं। आगे वैमानिक देव बैठते हैं, उनके पीछे मनुष्य पुरुष, फिर उनके पीछे स्त्रियाँ। जो परिवार जिसकी निश्राय में आता है, वह उस परिवार के पास ही बैठता है, अन्यत्र नहीं। आशय यह है कि इस प्रकार प्रत्येक दिशा और विदिशा में एक-एक त्रिक् (तीन-तीन का ग्रुप) के लोग बैठते हैं।

वहाँ इस प्रकार बैठने बाले देवों और मनुष्यों की मर्यादा यह है कि यदि अल्पऋखि वाले देव भगवान के समवसरण में पहले बैठे हुए हैं तो वे आने वाले महर्खिक देवों को प्रणाम करते हैं। अगर महर्खिक देव समवसरण में

परिशिष्ट १४ (२२१)

Appendix 14









नमि







ध्वजा



कुम्भ

पद्म सरोवर



समुद्र



विमान-भवन



रत्न राशि



निर्धूम अग्नि



^{9.} देखें, आवश्यक निर्युक्ति मलयगिरि घृत्ति, गा. ५४४ से ५५२।

२. आवश्यक निर्युक्ति मलयगिरि वृत्ति, गा. ५५३ से ५६०।

आकर पहले से बैठे हुए हैं तो बाद में आने वाले अल्पऋदि वाले देव उन्हें प्रणाम करके अपने नियत स्थान पर बैठते हैं। पूर्व आदि चारों द्वारों पर क्रमशः सोम, यम, वरुण और कुबेर ये चार दिग्पाल द्वारपाल के रूप में खड़े रहते हैं।

इस प्रकार बैठे हुए विविध प्रकार और विभिन्न कोटि के देवों और मनुष्यों में न तो परस्पर किसी प्रकार की यंत्रणा होती है, न एक-दूसरे के प्रति मात्सर्य होता है, न ही छोटे-बड़े में उत्कर्षताहीनता का भाव होता है, और न किसी प्रकार की विकथा होती है। भगवान के अतिशय के प्रभाव से परस्पर विरोधी जीवों में भी एक-दूसरे से किसी प्रकार का भय या त्रास नहीं होता। यह सब प्रथम प्राकार (परकोटा) की व्यवस्था है।

द्वितीय व तृतीय प्राकार की व्यवस्था

द्वितीय प्राकार में सभी तियँच (पंचेन्द्रिय) होते हैं और तृतीय प्राकार में सबके यान या वाहन खड़े होते हैं। प्राकार के बाहर खुली जगह में तियँच भी होते हैं, मनुष्य भी और देव भी। ये कभी-कभी तीनों मिलकर समवसरण में प्रवेश करते और निकलते हैं। परन्तु भीड़ अधिक होते हुए भी बड़ी शान्ति से आवागमन जारी रहता है; किसी प्रकार की धक्का-मुक्की या तू-तू-मैं-मैं नहीं होती। र

समवसरण के दर्शन की महिमा

तीर्थंकर भगवान के समवसरण के दर्शन की इतनी महिमा है कि जिस श्रमण ने इस अभूतपूर्व समवसरण को पहले नहीं देखा, वह बारह योजन से पैदल चलकर इस समवसरण में आता है। समवसरण का ऐसा प्रभाव है कि बारह-बारह योजन दूर रहे हुए साधु को वहाँ आना ही चाहिए। यदि अवझावश नहीं आता है तो उसके व्यवहार सम्यग्दर्शन में चल, मल और अगाढ़ दोष की सम्भावना होने से उसकी शुद्धि के लिए चार लघु प्रायश्चित (चार उपवास) का विधान है। ३

समवसरण में विराजमान भगवान का रूप इतना अतिशय सुन्दर होता है कि सभी देव मिलकर वैसा सुन्दर रूप निर्माण करने की सम्पूर्ण वैक्रिय-शक्ति से यदि अंगुष्ठ-प्रमाण रूप का निर्माण करें तो भी तीर्थंकर भगवान के चरण के अँगूठे से बढ़कर शोभायमान नहीं होता।

तीर्थंकर भगवान के रूप से अनन्तगुणाहीन रूप गणधरों का होता है। गणधरों से आहारक शरीरी का रूप अनन्तगुणाहीन होता है। आहारकशरीरी मुनियों से अनुत्तर वैमानिक, नवग्रैवेयक, अच्युत, आरण, प्राणत, आनत. सहस्रार, महाशुक्र, लान्तक, ब्रह्मलोक, माहेन्द्र, सनत्कुमार, ईशान, सौधर्म, भवनवासी, ज्योतिष्क, वाणव्यन्तर देवों का तथा चक्रवर्ती, वासुदेव, बलदेव, माण्डलिक नृपों का रूप अनन्तर-अनन्तर क्रमशः अनन्तगुणाहीन होता है। शेष राजाओं तथा जनपढ के लोगों का रूप क्रमशः षट्स्थानपतित होता है।

समयसरण में भगवान के तीर्थंकर-नाम-कर्म के उदयवश अनुत्तर उत्कृष्ट रूप होने का प्रयोजन आचार्यों के मतानुसार यह है कि पुण्य के उदय से प्रशस्त उत्कृष्ट रूप होता है तो उसे जान/देखकर समवसरण में समागत श्रोता भी धर्माचरण में प्रवृत्त होते हैं तथा श्रोताओं को भी यह बोध प्राप्त होता है कि इतने उत्कृष्ट रूपवान् व्यक्ति भी धर्माचरण करते हैं तो हम जो इतने रूपवान् नहीं हैं, उन्हें तो अवश्य करना चाहिए। रूपवान् के वचन भी उपादेय होते हैं। श्रोताओं में जो रूपमद में आसक्त होते हैं, भगवान का उत्कृष्ट रूप देखकर उनका अहंकार भी गल जाता है। इन सब कारणों से भगवान का रूप प्रशंसनीय है।

- देखें, सम्बंसरणस्तव, गा. १९।
- २. आवश्यक निर्युक्ति मलयगिरि वृत्ति, गा. ५६१ से ५६३।
- ३. वही, गा. ५६८।
- ४. वहीं, गा. ५६९, ५७०। षट्स्थानपतित (छडाणविडया) का अर्थ है-क्रमशः अनन्त भागहीन, असंख्येय भागहीन, संख्येय भागहीन या संख्येय गुणहीन, असंख्येयहीन या अनन्तगुणहीन।
- ५. वहीं, गा. ५७४।

Illustrated Tirthankar Charitra

२२२)

सचित्र तीर्थंकर चरित्र

विमल 🤃 📄











सिंह

गज

वृषभ



लक्ष्मी



पुष्पमाला

चन्द्र

सूर्य













धर्मोपदेश प्रारम्भ करने से पूर्व भगवान ने विनय का आर्दश प्रस्तुत किया

समवसरण में विराजित तीर्यंकर भगवान धर्मीपदेश प्रारम्भ करने से पूर्व 'नमस्तीर्याय प्रवचनरूपाय' इस प्रकार बोलकर तीर्य को प्रणाम करके पंचेन्द्रियसंज्ञी देव-मनुष्य-तियँचादि सभी सर्वसामान्य जीव समझ सके, इस आशय से अर्द्ध-मागधी भाषा के साधारण शब्दों में उपदेश प्रारम्भ करते हैं। वे सर्वप्रथम तीर्थ को इसलिए नमस्कार करते हैं. क्योंकि उनको तीर्यंकरत्व तीर्य के कारण ही प्राप्त हुआ, लोक समूह-पूजित का पूजक होता है। तीर्य सर्वलोकपूजित हो इसलिए त्रिभुवन-पूज्य होते हुए भी भगवान ने तीर्य का बहुमान किया। दूसरी बात-'विनयमूलोधर्मः'-धर्म का मूल विनय है, इस तथ्य को भी भगवान द्वारा सर्वप्रथम स्वयं तीर्थ का विनय करके जगत् के समक्ष आदर्श प्रस्तुत किया गया है।

भगवान की वाणी योजनगामिनी क्यों?

आज तो भौतिक विज्ञान के कारण ध्वनिवर्द्धक यंत्र, फोन, केबल आदि के कारण दूर-सुदूर तक ध्वनि पहुँच जाती है, परन्तु तीर्यंकर भगवानं को वाणी का अतिशय प्राप्त होने से उनकी वाणी सहज ही योजनगामिनी होती है। इसलिए योजन-परिमाण समवसरण में स्थित सभी संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों के कर्ण-कुहरों तक भगवान की वाणी पहुँच जाती है और उसे सुनकर सब अपनी-अपनी जिज्ञासा शान्त कर लेते हैं।

समबसरणस्य तीर्यंकर तो एक ही भाषा (अर्द्ध-मागधी) में धर्मोपदेश देते हैं, किन्तु वहाँ तो देव, मनुष्य और तियाँच सभी कोटि के श्रोता होते हैं, वे उस भाषा में कैसे समझ जाते हैं? इसका समाधान यह है कि-वर्षा का पानी एक ही प्रकार का होता है, किन्तु काली, सफेद, लाल, सुगन्धित आदि जिस-जिस प्रकार की मिट्टी होती है, उस रूप में, उस वर्ण में वह स्वतः परिणत हो जाता है, इसी प्रकार तीर्थंकर भगवान का वागतिशय विशेष से एक भाषा में धर्मोपदेश होते हुए भी सभी प्रकार के श्रोताओं की अपनी-अपनी भाषा में वह परिणत हो जाता है। वर्तमान युग में भी यह आश्चर्यजनक बात नहीं रही। संयुक्त राष्ट्र संघ (U. N. O.) जैसी बड़ी संस्थाओं के कार्यालय में विभिन्न देशों के विभिन्न माषा-माषी प्रतिनिधि आते हैं। उनमें से कोई वक्ता अपनी भाषा में बोलता है, किन्तु विभिन्न राष्ट्री के प्रसिनिधियों के सम्मुख रखे हुए यंत्र के कारण उनकी अपनी-अपनी भाषा में तत्काल अनुवाद हो जाता है।

समबसरण में १२ प्रकार की परिषद होती है। यदि भगवान की वाणी का उन श्रोताओं पर कोई भी प्रभाव न पड़े, वे सर्वीवरति, देशविरति, सम्यक्त्व और श्रुत-सामायिक इन चार प्रकार की सामायिकों में से कोई भी सामायिक ग्रहण न करें तो विविध देवों द्वारा इस प्रकार के समवसरण की रचना का और भीड़ इकड़ी करने का प्रयास निरर्धक ही सिद्ध होगा। इसका समाधान यह है कि समवसरण-रचना किये जाने पर तीर्थंकर भगवान तो अपना धर्मोपदेश करते ही हैं। उनके उपदेश का प्रभाव और संस्कार सबके मन-मस्तिष्क में एक बार तो जम ही जाता है, भले ही वे अभी किसी प्रकार का ब्रत-नियम रूप सामायिक ग्रहण न करें। मिवव्य में करेंगे ही। तीर्यंकरों की भाषा के पवित्र परमाण् शीघ्र प्रभावकारी होते हैं। इसलिए बहुत-सी बार तो उनकी वाणी खाली नहीं जाती। मनुष्य चार प्रकार की पूर्वोक्त सामायिक में से कोई न कोई सामायिक ग्रहण करते हैं। तिर्यंचगण सर्वविरित के सिवाय देशविरित, सम्यक्त्व और श्रुत-सामायिक ग्रहण करते हैं तथा देवगण तो नियमतः सम्यक्त्व सामायिक ग्रहण करते ही हैं।?

समवसरण में तीर्थंकर भगवान पहली पौरुषी (प्रथम प्रहर) तक व्याख्यान देते हैं। फिर अपनी धर्मकथा सम्पन्न करके उत्तर द्वार के प्रथम प्राकार से निकलकर द्वितीय प्राकार के अन्दर पूर्व दिशा में स्थित देवच्छन्दक में यथासुख विराजमान हो जाते हैं।



Appendix 14

















महादीर



ध्वजा



पद्म सरोवर



विमान-भवन



रत्न राशि



आवश्यक निर्युक्ति मलयगिरि वृत्ति, गा. ५६६, ५६७।

वही, गा. ५६४।

(ftig

भगवान का जिस ग्राम, नगर आदि में समवसरण लगता है, भगवान के पदार्पण का प्रतिदिन समाचार सुनाने वाले कुछ वैतिनक और कुछ अवैतिनक सेवाभावी व्यक्तियों की नियुक्ति की जाती है। वे भगवान के पदार्पण की खबर प्रतिदिन देते हैं; अतः चक्रवर्तियों ने साढ़े बारह लाख स्वर्ण-मुद्राएँ वैतिनक लोगों को वृत्तिदान तथा अवैतिनक लोगों को प्रीतिदान के रूप में देने हेतु अपनी ओर से निकाली। इतनीं ही चाँदी की मुद्राएँ उन्हीं नियुक्त-अनियुक्त लोगों को वितिरत करने हेतु माण्डलिक राजाओं ने निकाली। इसी प्रकार कुबेर आदि देवों तथा ग्राम-नगर के जागीरदारों, जमींदारों और इम्य श्रेष्ठियों ने भी अपनी-अपनी श्रद्धा-मिक्त और वैभव के अनुरूप उन्हीं दो प्रकार के लोगों को वृतिदान व प्रीतिदान के रूप में प्रदान की।

मितिमान् देव भी इसका अनुसरण करते हैं। वे इस धन का उपयोग भगवान के समवसरण क्षेत्र में आगमन का समाचार देने वाले व्यक्तियों के अतिरिक्त, समवसरण में सुरक्षा हेतु नियुक्त या स्वयं सेवाभाव से कार्य करने वाले लोगों, नये बने हुए श्रायकों के स्थिरीकरण में तथा अन्य संकटापन्न, विपन्न श्रावकों को प्रीतिदान के रूप में करते हैं। इसे ये भगवान की सेवा-भक्ति और पूजा मानते हैं। इस प्रकार अनेक प्रकार से ये लोग प्राणियों को सुखसाता उपकाकर सातावेदनीय कर्म का उपार्जन तो करते हैं। है, वे प्रीतिदान एवं वृत्तिदान के गुणों से युक्त बनते हैं, तथा ऐसे महानुभाव तीर्थ की प्रभावना भी करते हैं।

प्रथम पौरुषी (प्रहर) पूर्ण होने तक भगवान की धर्मकथा पूर्ण हो जाती है। फिर द्वितीय पौरुषी (प्रहर) में गणधर धर्मकथा करते हैं। दूसरे प्रहर में भगवान धर्मकथा नहीं करते, गणधर करते हैं।

गणधर कहाँ बैठकर धर्मकथा करते हैं ?

साध्वादि समुदाय रूप गण के धारक गणधर या तो राजा के द्वारा समबसरण में भेंट रूप में दिये हुए सिंहासन पर धर्मकथा करते हैं या फिर उसके अभाव में तीर्थंकर भगवान के पादपीठ पर बैठकर करते हैं।

गणधर अपनी धर्मकथा में असंख्यात भवों में जो हुए तथा भविष्य में जो होगा अथवा श्रोताओं में से कोई किसी वस्तुतत्त्व के विषय में पूछे तो उसे यथातय्यरूप में कहते हैं। गणधर इस प्रकार के समस्त प्रश्नों के उत्तर देने में समर्थ होने से किसी को भी यह कहने का अवकाश नहीं रहता है कि यह गणधर अवधिज्ञानादि के अतिशय से रहित है या यह छन्नस्थ (अल्पज्ञ) है।

इस प्रकार तीर्थंकरों के समबसस्या में उनके तथा अन्य महान् आत्माओं के दर्शन, श्रवण, मनन, व्रतादि-ग्रहण, सम्यक्त-पुष्टि-शुद्धि तथा धर्म कुण्य एवं सेवामिक के दुर्लभ अवसरों का महालाभ मिलता है।

(विशेष जानकारी हेतु सन्दर्भित ग्रंय तथा अभिधान राजेन्द्र कोष भाग ७, 'समवसरण' शब्द देखें।)



े देवगण धर्म प्रभावना क्यों और किस रूप में करते हैं ?

गज

वृषभ



लक्ष्मी



पुष्पमाला

चन्द्र

सूर्य

आवश्यक निर्युक्ति मलयगिरि वृत्ति, गा. ५८० से ५८३।

२. वही, गा. ५८२, ५८३।

३. वही, गा. ५८९।

Illustrated Tirthankar Charitra

(२२४)

सचित्र तीर्थंकर चरित्र





















शीतल





वासुपूज्य

APPENDIX 14

THE CONSTRUCTION OF THE DIVINE PAVILION OF TIRTHANKARS

[Like many other branches of science the branch of constructing assembly halls has also amply developed. To construct a large auditorium where thousands of people may arrive, be accommodated, may listen to the lectures and peacefully leave, requires a trained mind with engineering skill. For such an arrangement renowned experts display their skill. Still there are incidents of chaos and stampede in such large congregations. Even the police forces get nervous in trying to control such crowds of thousands of people.

Thousands of years ago the divine pavilions were created for the assembly of a Tirthankar where not only millions of human beings but also innumerable gods and animals used to assemble.

In a large pavilion or assembly hall covering an area of one Yojan (4 sq. kosa or 12 sq. km) used to accommodate innumerable gods, humans and animals. They would arrive and sit in the allotted sections, listen to the discourses of the Tirthankar and go back peacefully. There were adequate traffic and parking arrangements for vehicles. The detailed and scientific description of such arrangements available in the ancient scriptures is truely astonishing. It also reveals the highly developed science and intellect during that period. We give brief description of the structure of these divine pavilions of the Tirthankars.

The beholding of a Tirthankar in his divine pavilion, pondering over his discourses, and following his teachings purifies and strengthens the attitude, faith and realization of spiritual pursuits. Sitting in proximity of the Tirthankar, seeing him, listening to his discourse and coming under the influence of his aura and various unique attributes is spiritually inspiring not only for the gods and humans but also for the animals. Men and animals of contrasting attitudes loose their cruelty and mutual animosity, disease, sorrow, afflictions, fear etc. The Tirthankar's discourse also provides benefits in shape of enhancement of knowledge and science and progress on the path of liberation through stoppage of inflow and acceleration of shedding of Karmas.

The Great Benefits

Knowing about the arrival of Bhagavan Mahavir in the Samavasaran the sages said, "O beloved of gods! This is the source of great benefits for us. When even the hearing of the names of Arihant Bhagavants is a boon, there is no doubt that approaching, greeting, bowing, admiring and worshipping him in person is highly beneficial." It is a great occasion to listen to even one word of the august preaching of the great man. Bowing to

परिशिष्ट १४

२२५)

Appendix 14

















महावीर

ध्वज



कुम्भ

्र पदा

सरोवर

समुद्र



वि**मान-**भवन



स्त्न राशि



निधूम अग्नि

ऋषभ अजित सम्भव अभिनन्दन समिति पदाप्रम

him and offering him reverence is sure to result in attainment of the pure blissful state of liberation besides being source of benefits, happiness and peace during this life and the later incarnations.

What is a Samavasaran? How it is created? Who creates it? When and for how long the Tirthankar gives his discourse in the Samavasaran? All these questions have been dealt in various canons (Agams), and their different commentaries (Niryukti, Vritti and Bhashya) in eloquent style.

The Samavasaran is the religious assembly of Tirthankars. The literal meaning of the term is proper congregation at a specific place or a place where beings with different attitudes assemble in an orderly manner. As such, the assembling of a variety of worthy beings—specially humans, animlas and gods—for the purpose of beholding the Tirthankar and listening to his preachings is called Samavasaran. It is something much larger in dimension, much wider in scope, much numerous in species, and much lofty in purpose as compared to the modern parliament where representatives from various areas of the country meet.

The Special Divine Plan of the Samavasaran

The Mahardhik gods, first of all, inform the Abhiyogya gods about village, town or area where the Samavasaran is to be constructed. These gods, then clear, clean and leyel a 12 sq. km area pneumatically. Fragrant water is aerially sprinkled over that area and than in order to make the atmosphere pleasently perfumed a variety of suitable flowers are showered. The whole area is decorated with various gemstones including moonstone and sapphire. Now the Vyantar gods construct gem studded and gold inlaid gates in all the four directions. These gates are embellished with motiffis like umbrella, human figure, crocodile arch, swastika etc.

After this the kings of gods with their special powers construct three concentric parapet walls with serrated design and embellished with gems and gold. The outermost wall is constructed by the king of the Bhavanpati gods with silver. The middle wall is made of gold by the king of the Jyotishka gods. The innermost wall is full of gemstones and is made by the king of Vaimanik gods. The decorations and embellishments are also done by the gods who construct the walls. The main gate studded with every gem is made by the Bhavanpati gods. Large urns with burning incenses with mixtures of fragrant powder like black Agar and Kundarak are installed all around by the Vyantar gods.

Now Ishan gods arrive and plant a Ashok tree 12 times the height of the Tirthankar exactly at the centre of the innermost circle. Under this tree they make a gem studded platform. At the centre of this platform they make a throne with leg-rest of crystal-quartz. Over this throne there are three canopies, one over the other. On both the flanks of the throne stand the Balindra and Chamar gods with whisks in their hands. The Vyantar gods install the emblem of wheel of religion a little distance away and in front of the throne. After this all the gods hail in loud voice and express their feeling of extreme joy.

Illustrated Tirthankar Charitra

(२२६)

सचित्र तीर्थंकर चरित्र



सिंह

वृषभ

लक्ष्मी

पुष्पमाला

चन्द्र

सूर्य



























वासुपूज्य

As a rule, where all the gods arrive, the construction of the Samavasaran is done jointly by different gods as detailed above. But where kings of gods with special powers arrive, it is they who construct the Samavasaran. However, if such gods do not arrive it is the option of the Bhavanpati and other gods to construct the Samavasaran.

Entry and the Sitting Arrangement

After the construction of the Samavasaran is complete the Tirthankar enters it by the eastern gate during the first hour after the dawn or when the second hour is approaching. He moves stepping on divine lotuses. While walking, seven divine lotuses appear both at the front and back of him. He first circumambulates the Chaitya tree and then approaches the throne and sits on it facing east.

Three replicas of the Tirthankar sitting on the throne are created by gods and installed facing remaining three directions. Thus the Tirthankar is visible to every one sitting anywhere in the assembly.

At the feet of the Tirthankar the senior most principle disciple sits after bowing to the Tirthankar. The senior Ganadhar sits near the feet of the Tirthankar in south-east direction. All the other Ganadhars sit at his side or ahead of him.

Then the omniscient ascetics enter from the eastern gate, circumambulate the Tirthankar, utter—Namastirthaya (salutation to the Tirth), and take their seats at the back of the Ganadhars. After this the remaining highly endowed ascetics (Manahparyav Jnanis, Avadhi Jnanis, Fourteen Purvadhars, other Purvadhars etc.) also enter from the eastern gate, go around the Tirthankars thrice, pay homage to the Tirthankar and other seniors, and take seats behind the Kewal Jnanis.

Now enter the female ascetics and after formally paying homage to all the seniors go and stand behind the Vaimanik gods, they do not sit. Goddesses from the Vaimanik dimension enter from the eastern gate and formally saluting to the Tirthankar and all the ascetics go and stand behind the common ascetics. One after another come the goddesses from Bhavanpati, Vyantar and Jyotishka dimensions, from the southern gate and paying homage to the Tirthankar and all the ascetics go and stand in the southwestern direction one behind the other in the said order.

After all these arrive gods from Bhavanpati, Jyotishka and Vyantar dimensions from the eastern gate and after due formalities take their allotted seats, one group behind the other in the said order in the north-western direction. Then from the northern gate enter the Vaimanik gods followed by men and women and after due formalities take their allotted seats. In front sit Vaimanik gods, behind them are men and then women. The families sit near the gods with whom they are associated and nowhere else.

In every direction and the corners sit these clusters of people in groups of three classes (gods, men and women). As a rule the juniors pay respects to the seniors at the time of their arrival in the assembly, irrespective of the order of arrival. At the four gates—east, west, north and south stand Soma, Yama, Varun and Kuber, respectively as guards of the directions.

परिशिष्ट १४

(२२७)

Appendix 14



















महावीर

A STATE OF THE STA

વ્યળા



कुम्भ



पद्म सरोवर



समुद्र



विमान-भवन



स्त्न राशि



निर्धूम अग्नि Sitting in this fashion there is no feeling of superiority or inferiority, envy, competition, differences or animosity. Due to the miraculous influence of the Tirthankar, even the natural enemies from the animal kingdom loose anger or fear from each other.

This is the arrangement of the first enclosure.

Arrangement of the Second and Third Enclosures

The second enclosure is allotted to all types of animals (the five sensed ones). The third enclosure is allotted for parking of vehicles.

Outside these enclosures there are crowds of animals, humans, as well as gods. Sometimes they come separately and sometimes all together. However, in spite of the crowd the movement is orderly and peaceful. There is hardly any rush or stampede or altercation.

The Importance of Beholding the Samavasaran

To behold the Samavasaran of a Tirthankar is such an important act that an ascetic who has not done so earlier is inspired to walk and come even if he is stationed twelve Yojan (approx. 144 km) away. As it is a rule that any ascetic stationed within a distance of 144 km from the Samavasaran should come and join. One who ignores this for any reason should observe a four days fast as penitence. This is because his right perception is fret with faults of instability, shallowness and dilution.

The appearances of the Tirthankar sitting in the Samavasaran is so breathtakingly beautiful that if all the gods join together and try to create that beauty in the dimension of a toe, it cannot surpass the beauty of the toe of the Tirthankar.

In terms of the beauty of the form the list of people in order of descendence is as follows (The beauty of the earlier being infinitely more than the latter: Tirthankar, Ganadhar, Ascetics with normal human body, Anuttar Vaimanik gods, Navagraiveyak, Achyut, Aaran, Pranat, Anat, Sahasrar, Mahashukra, Lantak, Brahmlok, Mahendra, Sanat Kumar, Ishan, Saudharma, Bhavanvasi, Jyotishka, Vanavyantar (all dimensions of gods), Chakravarti, Vasudev, Baldev and regional kings. The common kings and other people are further down on the scale with much larger gap. (The traditional reduction being—infinitely less in six attributes.)

The Acharyas have explained the purpose of this breathtaking beauty of the Tirth inkar that appears due to the precipitation of the Tirthankar-nam-karma. They say that this divine beauty of the Tirthankar inspires those attending the Samavasaran to indulge in religious or righteous activities. They feel that when such a divinely beautiful person indulges in righteous activity, all those who are earthly, beautiful ought to do so. The utterances of a divinely beautiful person are listened to with attention. The pride of the narcissists also shatters in presence of such an embodiment of pure beauty. These are the reasons that make the divine beauty of a Tirthankar praiseworthy.

Illustrated Tirthankar Charitra

(२२८)

सचित्र तीर्थंकर चरित्र

विभल

सिंह

वृषभ

लक्ष्मी

पुष्पमाला

चन्द

सूर्य

अनन्त















चन्द्रप्रभ 🕞 🔄 सुविधि







वासुपूज्य

The Ideal of Humility

The first words the Tirthankar utters when he starts his discourse are—"Salutations to the ford of religion." After this he begins his discourse in easily understandable words of the common man's language, Ardha-Magadhi, with the specific purpose that every one present may understand and absorb the words and their meaning. As the status of Tirthankar is gained because of the establishment of Tirth (ford of religion), salutation's are first of all offered to the Tirth. The cause of becoming revered is reverential even for the revered one. The religious ford or Tirth is revered in the whole cosmos whereas the Tirthankar is revered only in the inhabited region; the Tirthankar recognises this fact with due reverence. Another reason is that when such a lofty and endowed person as a Tirthankar displays such humility he sets an example for others to follow.

The Volume of the Speech

With the advancement of technology the capacity and scope of transmission of sound with the help of amplifiers, telephones, radios and satellites has increased manifold. However, the Tirthankar's speech is naturally endowed with unique attributes. As such in the Samavasaran the voice of the Tirthankar reaches the eardrums or hearing organs of all five sensed beings. Everyone in the audience thus removes his doubts and ambiguities.

The Tirthankar gives his discourse only in one language, but the assembly has the congregation of gods, humans and animals. How do they all understand this monolingual discourse? It is something like the single colour water turning into a variety of colours depending on the soil it falls on; black, white, red or grey etc. One of the unique attributes of the Tirthankar's speech is this capacity to automatically get translated into the language of the listener. In this age of advanced technology it is nothing to be astonished about. In the United Nations Organisation there are representatives from almost all nations of the world. There is a multiplicity of languages, but the technology has made it possible that any speech in any language is immediately translated into the language of the listener.

There are twelve types of congregations in the Samavasaran. If the preaching of the Tirthankar does not inspire any of the listeners to take a vow of any one of the four Samayiks (a specific spiritual practice), Sarvavirati (total renunciation), Deshvirati (partial renunciation), Samyaktva (right conduct), and Shruti-Samayik (listening to the scriptures), all this effort of construction of the Samavasaran and collecting such a large crowd would go waste. But it is not so. Once the Samavasaran is created, the Tirthankar does give his discourse. For once at least, his preachings make lasting impression on the psyche of the listener even if he does not accept any of the prescribed vows. The pure particles of Tirthankars speech are fast acting. As such, more often than not his speech does not go in vain. Men take at least one of the four types of vows mentioned above. The animals accept one out of three leaving aside the Sarvavirati. The gods as a rule accept the Samyaktva Samayik.

परिशिष्ट १४

(२२९)

Appendix 14

















ध्वजा



कुम्भ



पद्म सरोवर



समुद्र



विमान-भवन

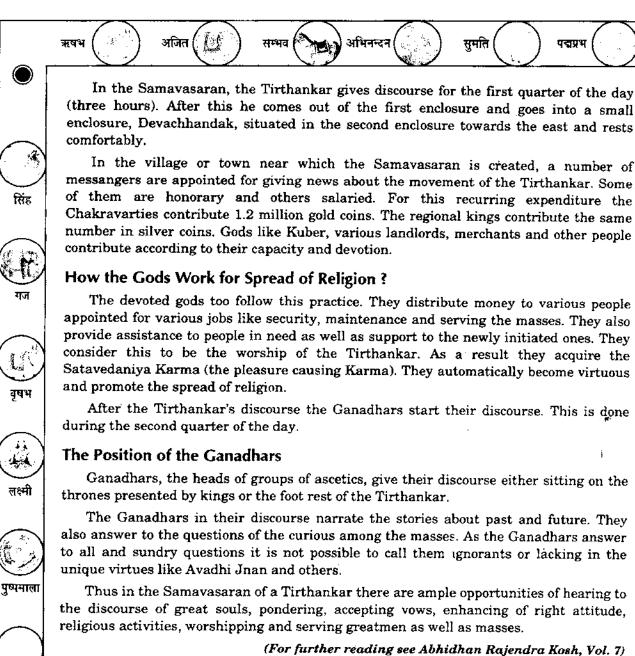


स्त्न राशि



निर्धूम अग्नि







Illustrated Tirthankar Charitra

(२३०)

सचित्र तीर्थंकर चरित्र



चन्द्र

सुर्य





















चन्द्रप्रभ 🔆 🐙











कासुपूज्य

अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति-प्राप्त हमारे महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

9. सचित्र उत्तराध्ययन सूत्र रु. 500 US \$ 40 (भगवान महावीर की अन्तिम वाणी : मूल प्राकृत पाठ हिन्दी-अंग्रेजी अनुवाद सहित तथा ४८ रंगीन चित्र)

२. सचित्र कल्पसूत्र रु. 500 US \$ 40 (मूल प्राकृत पाठ हिन्दी-अंग्रेजी अनुवाद सहित, ११ महत्त्वपूर्ण परिशिष्ट तथा ५२ रंगीन चित्र)

सचित्र कल्पसूत्र (रेग्जीन जिल्द पुस्तकालय संस्करण) रु. 600 US \$ 50

३. सचित्र अन्तकृद्दशा सूत्र रू. 425 US \$ 37 (मूल प्राकृत पाठ हिन्दी-अंग्रेजी अनुवाद सहित तथा ४० रंगीन चित्र)

४. सचित्र तीर्थंकर चरित्र रु. 200 US\$20 (२४ तीर्थंकरों का आदर्श जीवन-वृत्त-हिन्दी-अंग्रेजी भाषा में, १४ महत्त्वपूर्ण परिशिष्ट तथा ५४ रंगीन चित्र)

सचित्र तीर्थंकर चरित्र (रेग्जीन जिल्द पुस्तकालय संस्करण) रु. 300 US\$30 4. सचित्र भक्तामर स्तोत्र रु. 325 US\$30

(मूल संस्कृत पाट : रोमन लिपि में हिन्दी-अंग्रेजी अनुवाद सहित तथा भावों को स्पष्ट करने वाले ५० रंगीन चित्र)

६. सचित्र णमोकार महामंत्र रु. 125 US \$ 10 (हिन्दी एवं अंग्रेजी में स्वतंत्र पुस्तकें)

(महामंत्र नवकार का स्वरूप, साधना विधि और महिमा को प्रकट करने वाले ३२ रंगीन चित्र, विवेचन, ५ परिशिष्ट में नवकार महामंत्र के जीवन उपयोगी विविध मंत्र साधना, आत्म-रक्षा कवच मंत्र)

नोट : सभी पुस्तकों पर पैकिंग, फारवर्डिंग तथा पोस्टेज खर्चा लागत के अनुसार अतिरिक्त देना होगा।

प्राप्ति-स्थान :

भारत में :

दिवाकर प्रकाशन

ए-७, अवागढ़ हाउस, एम. जी. रोड, आगरा-282 002 फोन: (0562) 2851165

विदेशों में :

फेडरेशन ऑफ जैन एसोसियेशन्स इन नॉर्थ अमेरिका (जैना) 9-9 मैडीकल क्लीनिक, 4410, 50वीं स्ट्रीट, लुब्बॉक,

टेक्सास-79414 (यू. एस. ए.). फोन : (806) 793 8555

्री) मिल















महावीर

ध्वजा



कुम्भ

पद्म सरोवर





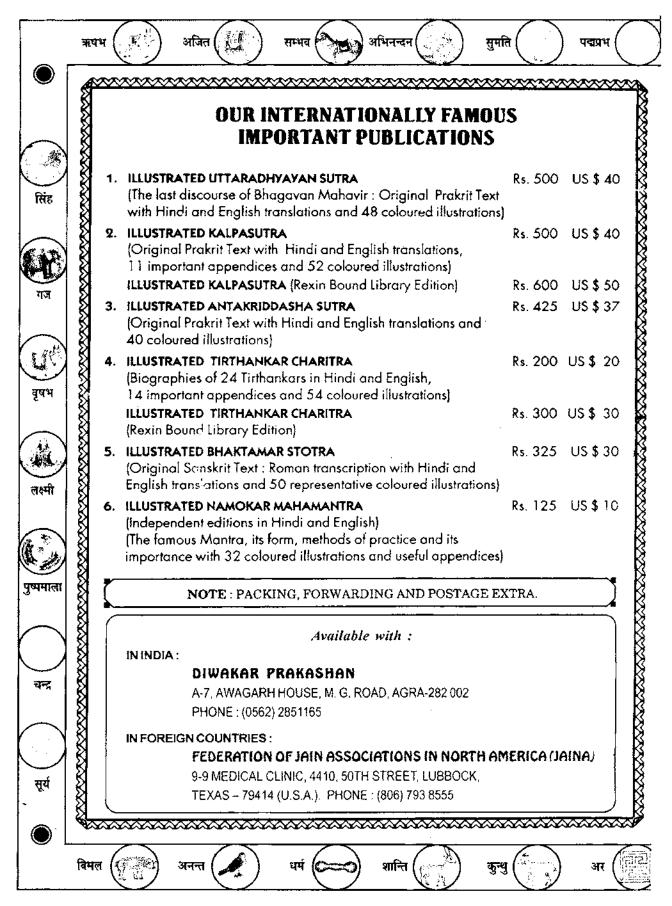
विमान-भवन

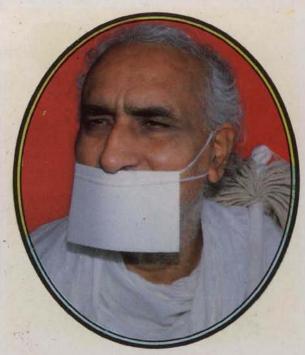


रत्न राशि









श्री अमर मुनि

श्री अमर मुनि जी श्री व. स्था. जैन श्रमणसंघ के एक विद्वान् सन्त हैं। आप ओजस्वी वक्ता, कवि और मधुर गायक भी हैं। आपने भगवती सूत्र (चार भाग), स्थानांग सूत्र (दो भाग) आदि पर विस्तृत विवेचन लिखा है तथा सचित्र जैन आगम प्रकाशन की दिशा में आपने प्रथम साहसिक पहल की है।

अब तक सचित्र उत्तराध्ययन सूत्र (हिन्दी-अंग्रेजी), सचित्र अन्तकृत्दशा सूत्र (हिन्दी-अंग्रेजी) एवं सचित्र कल्पसूत्र छप चुके हैं।

इस सचित्र आगम माला के विद्वान् संपादक हैं-श्रीचन्द सुराना 'सरस'।

SRI AMAR MUNI

Shri Amar Muni is a scholarly ascetic from Shri Shwetambar Sthanakvasi Jain Shraman Sangh. He is an accomplished orator, poet and singer. He has written detailed commentaries on Bhagavati Sutra (four volumes), Sthananga Sutra (two volumes) and many others. He is the one who is responsible for taking the bold initiative to launch the publication of the illustrated Agam literature.

Illustrated Uttaradhyayan Sutra (Hindi-English), illustrated Antakritdasha Sutra (Hindi-English) and illustrated Kalpa Sutra have already been published and received well.

The scholarly editor of this illustrated series is Srichand Surana 'Saras'.

